हिमज्योति

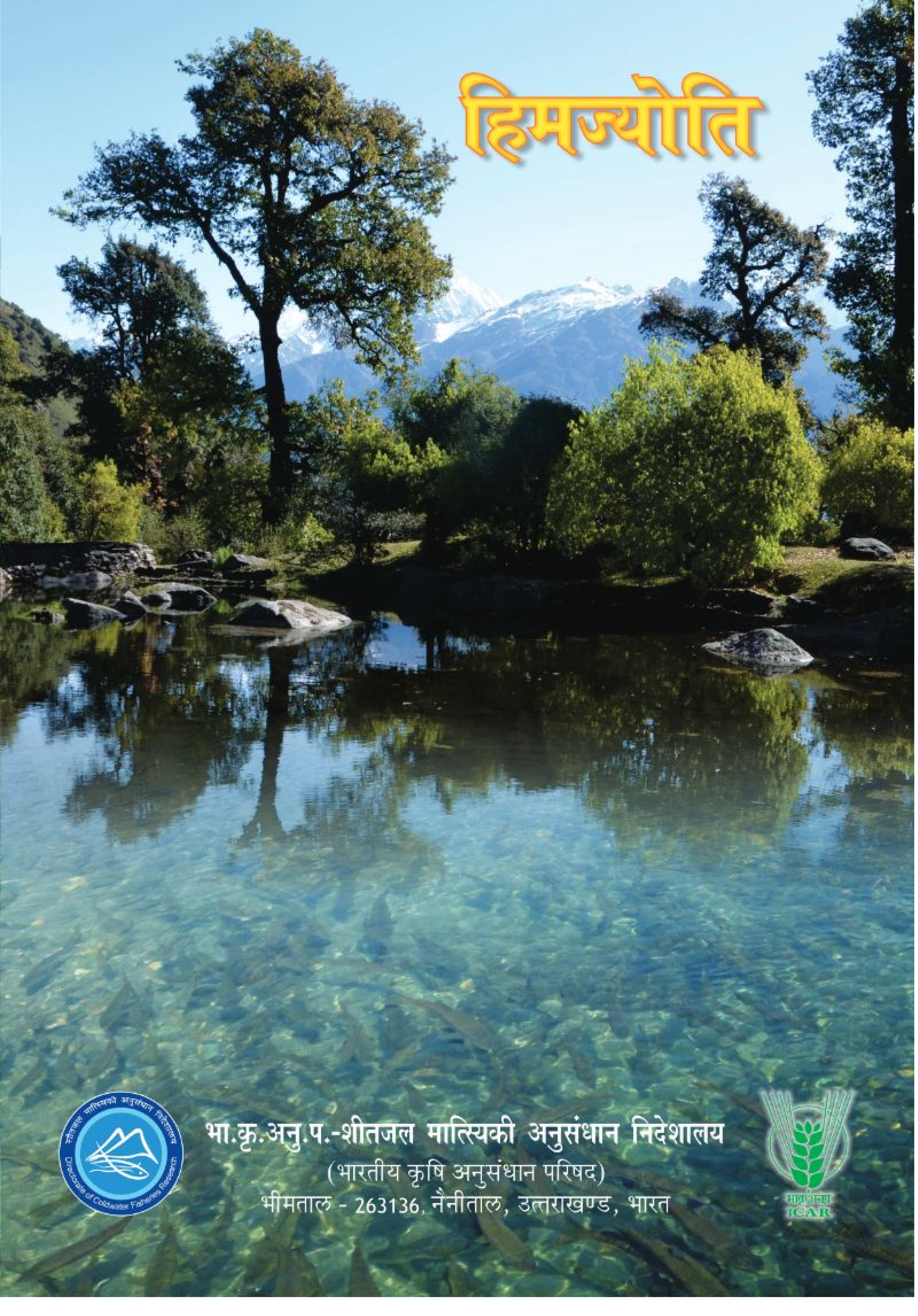

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
भीमताल - 263136, नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

हिमज्योति

2015

भा.कृ.अनु.प.-शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल - 263136, नैनीताल, उत्तराखण्ड, भारत

भा.कृ.अनु.परि.–शी.मा.अनु. निदेशालय

सम्पादन
डा. आर.एस. पतियाल
श्री अमित कुमार जोशी

हिन्दी अनुवाद
श्री अमित कुमार जोशी

सहयोग
श्री अमित कुमार सक्सेना

छायाचित्र एवं रूप सज्जा
डा. आर.एस. पतियाल

प्रकाशक
डा. ए.के. सिंह
निदेशक
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल –263136, जिला–नैनीताल (उत्तराखण्ड)

रूपरेखा एवं मुद्रण
मैसर्स रॉयल ऑफसेट प्रिंटर्स, ए–89/1, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेस–1, नई दिल्ली–110028

अनुक्रमणिका

1. **संसाधन**

उत्तराखण्ड में सजावटी मछलियों की स्थिति, प्रकार, महत्व एवं व्यापार की सम्भावनाऐं 1

शीतजलीय मछली पत्थरचट्टा (गारा गोटाएला गोटाएला): एक संक्षिप्त परिचय 4

भारत के जलाशयों में मात्स्यिकी परिदृश्य 6

उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में शीतजल मात्स्यिकी एवं मात्स्यिकी संसाधन 9

उत्तराखण्ड राज्य के कुमायूं क्षेत्र में मात्स्यिकी का परिदृश्य 14

उत्तराखण्ड में ओक तसर संवर्धन, कीट पालकों की समस्याऐं एवं समाधान 18

2. **मत्स्य पालन**

हिमालय क्षेत्र में रंगीन मछलियों की एक्वा–बागवानी, मनोरंजन एवं आर्थिकिकी के नए आयाम 20

शीतजल मात्स्यिकी में रेनबो ट्राउट मत्स्य पालन 22

व्यावसायिक मत्स्य पालन में बहुपयोगी मत्स्य प्रजाति कामन कार्प (साइप्रिनस–कार्पियों) 25

ऊसर या बंजर भूमि पर मत्स्य पालन सम्भव 28

फ्रांस का एक शीतजलीय मात्स्यिकी फार्म 30

एकीकृत मत्स्य पालन द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में स्वरोजगार 32

मत्स्य–धान की खेती का धरोहरः आपातानी पठार 34

3. **प्रबन्धन**

सह–फसलीय मत्स्य पालन द्वारा गाँवों के संसाधनों का उपयोग 36

जल–जीव के लिए स्थानिक निर्णय समर्थन प्रणाली 39

भू–सूचना प्रणाली द्वारा मत्स्य संसाधन प्रबंधन 40

तालाब की मछलियों को हानि पहुँचाने वाले कारकों से बचाव के उपाय 42

घर में सजाएँ मछलियों का आशियाना 45

अनुक्रमणिका

4. प्रजनन

मध्य हिमालय क्षेत्र में सजावटी मछलियां गोल्ड फिश का सफल प्रजनन एवं पालन पोषण 50

हिल ट्राउट (बेरिलयस बेंडेलिसिज) का प्रजनन एवं भ्रूणीय विकास का अध्ययन 53

पर्वतीय क्षेत्रों में कामन कार्प (साइप्रिनस कार्पियो) का प्रजनन एवं बीज उत्पादन 56

5. सहभागिता

मीठे पानी की मछलियों के उत्पादन में महिलाओं की भूमिका 58

शीतजल मात्स्यिकी द्वारा जीविकोपार्जन एवं महिलाओं की सहभागिता 60

6. संरक्षण

नल–दमयन्ती ताल (भीमताल) में महाशीर संरक्षण: आस्था एवं परंपरा 63

मत्स्य जननद्रव्य संरक्षण: एक आवश्यक कदम 65

मध्य हिमालय में पादप जननद्रव्य के शोध गतिविधियों से आशायें, अपेक्षाएं एवं क्षरण रोकने के उपाय 68

7. मत्स्य स्वास्थ्य

मत्स्य पालन रेसवे में रेनबो ट्राउट (ओंकोरिकस माइकिस) की संक्रामक बीमारियों का अध्ययन 75

स्वस्थ्य जीवन में प्रोटीन का उपयोग 80

रेनबो ट्राउट (ओंकोरिकस माइकिस) में पालन के दौरान वातावरण तनाव जनित स्वास्थ्य समस्यायें 82

स्वास्थ्य वर्धक–मोटे अनाज 86

शीतजल मात्स्यिकी के महत्वपूर्ण विषाणु जनित रोग 87

निदेशक की कलम से

राजभाषा के रूप में प्रयोग में लायी जाने वाली हिन्दी के अस्तित्व एवं महत्व से हम सभी लोग भली–भांति परिचित हैं। हमारे बहुभाषी देश में सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी एक समृद्ध भाषा है और इसकी सम्प्रेषणीयता भी उच्चकोटि की है। भारत को समृद्ध बनाने के लिए राष्ट्रव्यापी भाषा का होना उतना ही आवश्यक है जितना की नवीन प्रोद्योगीकियों का।

हिमज्योति का प्रस्तुत अंक शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय द्वारा अनुसंधान के क्षेत्रों में हिन्दी को बढ़ावा देने हेतु एक सानूहिक प्रयास है। इसमें वैज्ञानिकों, लेखकों ने अपने अनुसंधान कार्यों, अनुभवों आदि को सरल एवं सुबोध तरीके से हिन्दी में प्रस्तुत किया है। पूर्व की भांति यह अंक भी पाठकों विशेष रूप से मत्स्य पालन से जुड़े लोगों का ज्ञान वर्धन करने में सहायक होगा। अनुसंधान प्रयासों को प्रयोगशालाओं से आम कृषकों तक पहुंचाने के लिए यह आवश्यक है कि वैज्ञानिकों द्वारा विकसित उन्नत तकनीकियों जैसे आहार प्रबन्धन,मिश्रित मत्स्य पालन, सजावटी मत्स्य पालन, मत्स्य पालन में भू–स्थैतिकी द्वारा जल संसाधनों का प्रबन्धन, मत्स्य रोग एवं उनका प्रबन्धन, मत्स्य आनुवंशिकी एवं तद्सम्बन्धी जानकारी एक जगह सुलभ हो। इसके साथ–साथ विभिन्न विधाओं का प्रशिक्षण, प्रदर्शन एवं जागरूकता सम्बन्धी प्रशिक्षण व नवीन अनुसंधानों की जानकारी आदि कृषकों तक सहज भाषा में पहुंच सके यह हमारा प्रयास है।

हिमालय क्षेत्र की नदियों और उनकी सहायक नदियों में पायी जाने वाली मत्स्य सम्पदा, जैव विविधता, उत्पादन क्षमता, पारिस्थितिकी आदि विषयों का गहन अध्ययन तथा संरक्षण निदेशालय की एक महत्वपूर्ण गतिविधि रही है। गत वर्षों में संरक्षण कार्यक्रम के अर्न्तगत कोसी नदी व नौंगमाहेर झील सहित अन्य महत्त्वपूर्ण नदियों एवं तालाबों में महाशीर का संचयन, उन्नत कामन कार्प, बेरिलियस एवं पंगुसिया आदि मछलियों का प्रजनन, रंगीन मछलियों एवं महाशीर का बीज उतपादन, मत्स्य पालन से सम्बन्धित जल–संसाधनों का समुचित उपयोग हेतु भू–स्थैतिकी प्रणाली, उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ट्राउट पालन, मध्य हिमालय में कार्प तथा रंगीन मछलियां और हिमालय की तलहटी में देशी–विदेशी कार्प पालन से सम्बन्धित जानकारियां इस अंक के प्रमुख आकर्षण हैं। अतः यह अंक मत्स्य पालन की दृष्टि से सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र के लोगों के लिए समग्र जानकारी सुलभ करा रहा है। विभिन्न प्रशिक्षण एवं जागरूकता अभियान के माध्यम से किसानों, महिला उद्यमियों एवं मात्स्यिकी अधिकारियों के लिए समय–समय पर किए गये कार्यक्रम जैसे मछली का प्रजनन, आहार तथा मत्स्य उत्पाद से जीविकोपार्जन आदि विभिन्न जानकारियां भी प्रदान कर रहा है।

'हिमज्योति' पुस्तिका के इस प्रकाशन में वैज्ञानिकों, लेखकों एवं सहयोगियों के सहयोग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए मै संस्थान के हिन्दी अनुभाग, लेखकों एवं सम्पादक मण्डल को बधाई देता हू और आशा करता हू कि यह संस्थान भविष्य में भी वैज्ञानिक उपलब्धियों को राजभाषा के माध्यम से जनमानष तक पहुंचाते रहेंगे।

शुभकामनाओं सहित !

ए.के. सिंह
निदेशक

उत्तराखण्ड में सजावटी मछलियों की स्थिति, प्रकार, महत्व एवं व्यापार की सम्भावनाऐं

आर.एस. पतियाल, प्रेम कुमार, सुरेश चन्द्र एवं राजेश एम.
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

विश्व में विभिन्न जलीय पर्यावरण से अब तक लगभग 800 अलंकारिक मछलियों की प्रजातियाँ पहचानी गयी है, जिनमें से भारत में लगभग 250 अलंकारिक मत्स्य प्रजातियों के होने का उल्लेख है। भारत के हिमालय क्षेत्रों में 255 मछलियों की प्रजातियां उपलब्ध हैं जिनमें से 187 मछलियां अपनी सजावटी आकृति व रंगरूप के कारण प्रसिद्ध हैं। सजावटी मछलियों को उनके सुन्दर रंग, आकृति और स्वभाव के अनुसार "जीवित जेवर" कहा जाता हैं हालाकि सभी मछलियां जिनका आकार विचित्र होता है उनको को भी सजावटी मछलियों की तरह ही पाला जाता है। आजकल सजावटी मछलियों का पालन फोटोग्राफी के बाद दूसरा महत्वपूर्ण शौक बन गया है। प्राचीन काल से ही इन सजावटी मछलियों को पालना एक शौक माना जाता है। ये हमारे सामाजिक व धार्मिक जीवन में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

वास्तुशास्त्र के अनुसार भी मछलियों को घर में पालने से सुख, धन, स्वास्थ्य व भाग्य में बृद्धि होती है तथा घर के सदस्यों के बीच धनात्मक ऊर्जा का संचार होता है। धार्मिक ग्रन्थों से पता चलता है कि सभी धर्मो में मछलियां एक विशिष्ट स्थान रखती है। हिन्दुओं में महत्वपूर्ण देवता विष्णु के 10 अवतारों में से पहला अवतार मत्स्य रूप ही था। बंगाली समाज में इसे प्रजनन का प्रतीक माना जाता है तथा इसाई व बौद्धा समाज में भी इसका धार्मिक महत्व है।

सजावटी मछलियों के विशेष गुण

- कृत्रिम आहार की स्वीकृति
- आकर्षक रंग
- विदेशागत / स्थानिकता
- छोटा आकार
- शरीर का विशिष्ट आकार–प्रकार
- मजबूत प्रकृति
- अन्य प्रजातियों के साथ संगत

इतिहास

प्राचीन काल से मछलियों का आखेट एवं पालन मनोरंजन का एक प्रमुख साधन रहा है। आधुनिक युग में मत्स्य आखेट, रंगीन मछलियो का पालन–पोषण जीविका का प्रमुख स्रोत बन गया हैं। 1853 में लंदन मे पहली बार सार्वजनिक मछलीघर को एक प्राणी उद्यान में बनाया गया था। चीन ने सबसे पहले सीसे के एक्वेरियम में सजावटी मछली रखने का प्रचलन शुरू किया गया था।

सजावटी मछलियों का वाणिज्य व्यापार

दूसरे विश्व युद्ध के बाद से ही मछली पालन को एक वैश्विक उद्योग के रूप में जाना जाता है। सर्वप्रथम शीशे के एक्वेरियम में सजावटी मछली रखने का प्रचलन शुरू किया गया था। सजावटी मछली के पालन ने एक व्यापार का रूप ले लिया है। विश्व में अमेरिका (500 मिलियन डालर प्रति वर्ष) जापान, यूरोप मछली पालन उद्योग में अपना अग्रणी स्थान बनाये हुए है। अब तक 140 से अधिक देश सजावटी मछली के व्यापार में सम्मिलित हो चुके हैं। सजावटी मछलियों के अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार में 1984 के बाद 14 प्रतिशत की दर से लगातार वृद्धि हुई है। FAO की रिपोर्ट के अनुसार 350–400 मछली की प्रजातियों का अर्न्तराष्ट्रीय क्षेत्र में प्रति वर्ष कारोबार हो रहा है। अमेरिका में लगभग 7.2 मिलियन तथा यूरोप में 3.2 मिलियन घरों में एक्वेरियम रखे जाते हैं जिनकी संख्या विश्व में दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। भारतवर्ष की जलवायु, श्रमिक की प्रचुरता तथा विविधा में धनी होने के कारण यहां सजावटी मछली के उत्पादन की अपार सम्भावनायें हैं परन्तु भारतवर्ष में विश्व की अलंकृत मछलियों का कुल 1 प्रतिशत व्यापार होता है जो नगण्य है। एमपीड़ा के अनुसार 2001–2002 से देश में रू. 228 करोड़ के सजावटी मछलियों का निर्यात विभिन्न देशों जैसे जापान (24.1 प्रतिशत), सिंगापुर (20.2 प्रतिशत), अमेरिका (19.7 प्रतिशत), चीन (10.5 प्रतिशत), जर्मनी (6.1 प्रतिशत), यू.के. (4.4 प्रतिशत), ताईवान (6.4 प्रतिशत), थाइलैण्ड (2.6 प्रतिशत), हागकोंग (2.6 प्रतिशत), श्रीलंका (1.3 प्रतिशत), नीदरलैण्ड (1.2 प्रतिशत), फ्रांस (0.8 प्रतिशत), बंगलादेश (0.8 प्रतिशत), बैल्जियम (0.7 प्रतिशत), मलेशिया (0.7 प्रतिशत), नेपाल (0.6 प्रतिशत),

स्विजरलैण्ड (0.2 प्रतिशत), मालद्वीप (0.1 प्रतिशत), फिनलैण्ड (0.2 प्रतिशत), के साथ हो रहा है। भारतवर्ष से सबसे बड़ी संख्या में अंलकारिक मछलियां उत्तरी, पूर्वी भाग (नोर्थ ईस्ट रिजन) तथा वेस्टन घाट (85 प्रतिशत) से निर्यात होती है। भारतवर्ष में लगभग 80 प्रतिशत सजावटी मछलियों का विदेशी बाजार में निर्यात कोलकाता, मुम्बई तथा चेन्नई से होता है। नाबार्ड के अनुसार मछली का व्यापार वैश्विक स्तर में 2 मिलियन डालर तक वृद्धि हो सकती है।

उत्तराखण्ड की नदियों में मिलने वाली सजावटी मछलियां

अब तक उत्तराखण्ड की नदियों में किये गये सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत का ऊपरी भूभाग सजावटी मछलियों से परिपूर्ण है। उत्तराखण्ड में मिलने वाली कुछ सजावटी मछलियों की सूची निम्नलिखित है :

नजीरीटोर चिलिनॉयडिस
पुन्टियस कौंकोनियस
पुन्टियस डुकाय
पुन्टियस टिक्टो
पुन्टियस गैलियस
बैरिलियस बरना
बैरिलियस बेंडेलिसिज
राइमस बोला
ब्रैकी डेरियो रिरियो
गारा गोट्यला
गारा इरांटा
निमैचिलस बिवानी
एन. बोटिया
एन. कोरिका
एन. रूपिकोला
ग्लैप्टोथोरैक्स पैक्टिनोप्टेरस

विदेशी मछलियां

गोल्ड फिश,
कोई कार्प,
सिएम्से फाइटिंग फिश,
पेंगुइन फिश,
मोनो एंजेल
गप्पी,
गम्बूसिया,
सोर्डटेल,
औस्कर,
पिराना,
गोल्ड फिश,
अरोवाना,
ऐलिगेटर गार

विविधता और व्यापार की दृष्टि से उत्तराखण्ड में सजावटी मछलियों की स्थिति

उत्तराखंड में सजावटी मछलियो के व्यापार की सम्भावनाये

- विभिन्न संसाधनों, विविध जलवायु, अनुकूल जलवायु की स्थिति, उपलब्ध जल संसाधन

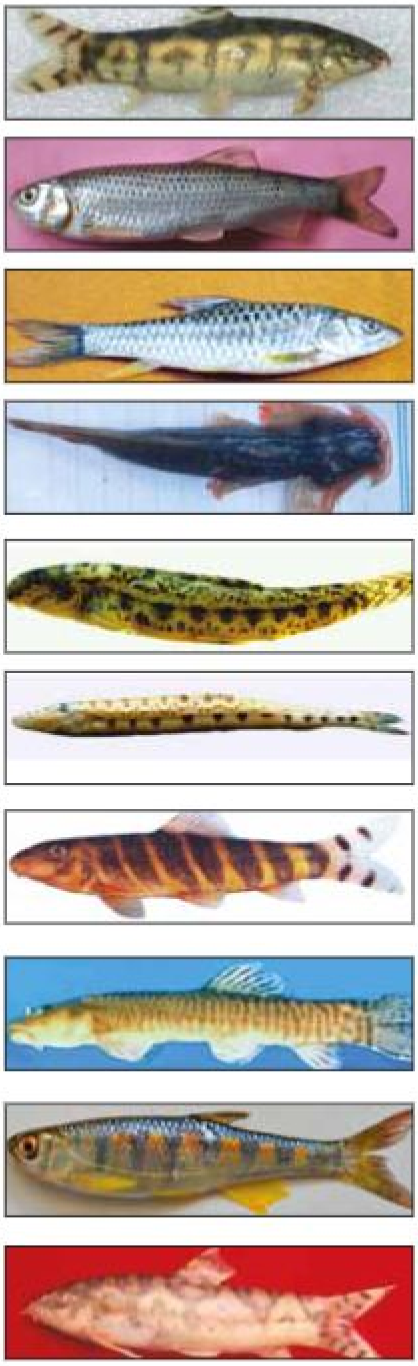

उत्तराखंड में पाई जाने वाली प्रमुख मछलिया

- पर्यटन
- होटल व्यवसाय
- घर में रखे जाने वाले, क्वेरियम
- रिसार्ट / बंग्ला में गार्डन एक्वेरिया
- बडे एक्वेरियम घर

उत्तराखण्ड में रंगीन मछलियों का प्रजनन एवं बीज उत्पादन का कार्य आरम्भ हो चुका है तथा किसान मत्स्य पालन को अपनाने लगे हैं। अतः यहां की प्रजाति विविधता, अनुकूल वातावरण एवं अच्छे बाजार का होना इसके लिए महत्वपूर्ण कारक हैं जो असीम सम्भावनाओं को जन्म देती है।

विविधता	व्यापार स्थिति
आंकड़ों का अभाव	बीज उत्पादन का कोई आकडा न होना
सजावटी मछली के विशिष्ट अध्ययन का अभाव	प्राकृतिक क्षेत्रों से पकड़ी गयी सजावटी मछलियों का रिकार्ड न होना
200 सजावटी मछली (हिमालय क्षेत्र) में से अब तक उत्तराखंड में अब तक केवल 30 सजावटी मछलियो का ही चिन्हिकरण किया गया है	सजावटी मछलियों का कोई थोक विक्रेता का न होना

विविधता	व्यापार स्थिति
	मात्र छोटी दुकानों में उपलब्ध हैं
	केवल एक मछलीघर (एक्वेरियम) की स्थापना की है
	प्रशिक्षित मानव संसाधनों का अभाव

रेन्बो ट्राउट फार्मिंग : नीतिगत विकास हेतु चुनौतियां एवं सम्भावनाऐं' पर राष्ट्रीय परामर्श

दिनाँक 20–21 सितम्बर, 2015 को भीमताल में शी.ज.मा.अनु. निदेशालय द्वारा जैव प्रौद्योगिकी विभाग नई दिल्ली एवं राष्ट्रीय मात्स्यिकी विकास बोर्ड, हैदराबाद के साथ मिलकर ''रेन्बो ट्राउट फार्मिंगः नीतिगत विकास हेतु चुनौतियां एवं सम्भावनाऐं'' पर दो दिवसीय राष्ट्रीय परामर्श कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य देश में रेन्बो ट्राउट (ओन्कोटिकस माइकिस) की कृषि में आने वाली चुनौतियों एवं समस्याओं के बारे में जानकारी देना था। रेन्बो ट्राउट ठण्डे पानी में पाली जाने वाली एक प्रमुख प्रजाति है तथा इसके विस्तार की अपार सम्भावनाऐं हैं। घरेलू खपत के साथ–साथ विदेशी निर्यात में भी इस प्रजाति में काफी क्षमता है। हालांकि उच्च उत्पादन एवं उत्पादकता के लिए बेहतर प्रशासन व कुशल प्रबनधन के तरीकों में महत्वपूर्ण सुधार करने की आवश्यकता है।

श्री आदित्य कुमार जोशी, संयुक्त सचिव, पशुपालन, डेयरी एवं मात्स्यिकी विभाग, कृषि एवं कृषक कल्याण मंत्रालय की अध्यक्षता में दो दिवसीय परिचर्चा की गयी। इस राष्ट्रीय परामर्श कार्यक्रम में ट्राउट उत्पादक राज्य जैसे– हिमांचल प्रदेश, सिक्किम, अरूणांचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम में विभिन्न राज्यों के ट्राउट उत्पादकों, विभिन्न संस्थानों के वैज्ञानिकों व राज्य कृषि विश्वविद्यालयों आदि ने भी भाग लिया। अपने भाषण में निदेशालय के निदेशक, डॉ. ए.के.सिंह, ने ठण्डे पानी की एक प्रमुख प्रजाति रेन्बो ट्राउट की वैश्विक एवं राष्ट्रीय महत्ता पर प्रकाश डाला। उन्होंने प्रौद्योगिकी–अन्तराल (गैप) और इस दिशा में निदेशालय द्वारा किए जा रहे कार्यों पर भी प्रकाश डाला। उन्होने इस बात को भी पुनः दोहराया कि एक व्यावसायिक खेती के रूप में योजनाकारों व अनुसंधान कर्ताओं एवं विकास संगठनों द्वारा इस प्रजाति के बेहतर फार्म प्रबन्धन, पालन विधि, उत्पादन आदि की दिशा में प्रर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय परामर्श के इस कार्यक्रम में भारतवर्ष में ट्राउट की खेती के विस्तार हेतु राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण एवं नीतियों, योजनाओं व अनुसंधान से सम्बन्धित मुद्दों को रखा गया। उत्पादन लक्ष्य को प्रापत करने के लिए कम मूल्य पर ट्राउट आहार, रोग–निगरानी, भौगोलिक सूचना प्रणाली के आधार पर योजनाऐं एवं बीज तथा प्रजनक बैंक की स्थापना आदि इस कार्यक्रम के मुख्य मुद्दों पर चर्चा हुयी।

इस दौरान राज्य मत्स्य विभागों जैसे हिमांचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम तथा अरूणांचल प्रदेश के निदेशक/ प्रतिनिधियों ने अपने– अपने राजय में ट्राउट उत्पादन के वर्तमान स्तर तथा इससे जुड़ी चुनौतियों के बारे में बताया। सभी हितधारकों के साथ विस्तृत विचार– विमर्श के पश्चात अगले पांच वर्षों के लिए हिमालय राज्यों में ट्राउट की उत्पादकता एवं उत्पादन को बढ़ाने हेतु आधारभूत नक्शा तैयार किया गया।

शीतजलीय मछली पत्थरचट्टा (गारा गोटाएला गोटाएला):-एक संक्षिप्त परिचय

एस. के. गुप्ता, एस. चन्द्रा, डी. शर्मा एवं आर.एस. पतियाल
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

गारा गोटएला हिमालय क्षेत्र की नदियों में पायी जाने वाली एक प्रमुख मत्स्य प्रजाति है। यह मछली हिमालय क्षेत्र में जम्मू कश्मीर से आसाम, सिक्किम, मणिपुर, मेघालय, नागालैंड प्रदेश की नदियों में पायी जाती है। हमारे पड़ोसी देश, वर्मा, बंग्लादेश और पकिस्तान में भी पायी जाती है, लेकिन यह नेपाल एवं भूटान में मुख्य रूप से पायी जाने वाली प्रजाति है। अलग–अलग जगहों में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। उत्तराखण्ड में इसे पत्थर चट्टा के नाम से जाना जाता है। अन्य हिमालयी क्षेत्र की मछलियों की तुलना में यह विस्तृत जलीय वातावरण सहन कर आसानी से जीवित रहती हैं, अतः इसे कठोर प्रजाति की मछली माना जाता है। गारा के लिए अनुकूल तापमान 15–25°C है, जिस पर इनका शारीरिक वृद्धि एवं प्रजनन क्रियायें सम्पन्न होती है। यह मछली खाने में स्वादिष्ट होती है। नेपाल में इसे मुख्यतः खाने के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके साथ साथ, इनको सजावटी मछलियों वाले ऐक्वेरियम में भी रखा जाता है। शीतजल ऐक्वेरियम में यह पनपने वाले शैवालों को खाकर ऐक्वेरियम की सुन्दरता को बढ़ाने में बहुत सहायक होती है। यद्यपि हिमालयी क्षेत्र में संगठित मत्स्य बाजारों की उपलब्धता नहीं है, फिर भी यह स्थानीय लोगों तक पहुँचती है।

गारा गोटाएला गोटाएला का आकार

यह मछली आकार में लम्बी एवं चपटी होती है। इसका निचला होंठ चपटा होता है, जिसमें पैपिली बनी रहती है जो एक चूषक का रूप लिये होती है, इसलिए इसे चूसक मछली भी कहा जाता है।

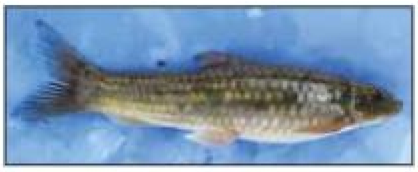

गारा गोटाएला गोटाएला

निचले होंठ का चूसक भाग

मछली का रंग उपर से भूरा एवं नीचे की ओर सफेद होता है। पेट का रंग सफेद होता है। इसका डोरसलफिन तथा कौडल फिन भूरे होते हैं। शल्क छोटे छोटे एवं वृत्ताकार होते हैं। पिछले भाग के शल्क अपेक्षाकृत बडे होते हैं। शल्क का आगे का भाग नुकीला और काले रंग का होता है जबकि शल्क का आधार पारदर्शीय होता हैं। शरीर के दोनों पृष्ठीय भाग में आवरण के आधार के नीचे हरे रंगत का एक छोटा सा गोल निशान होता है एंव दोनों पृष्ठीय भाग में एक जोड़ी नथुना भी होता है।

प्राकृतिक आहार

इसकी आँत की लम्बाई, शारीरिक लम्बाई की तुलना में काफी अधिक होती हैं। आंत विश्लेशण साम्रगी से देखा गया कि यह मछली मुख्य रूप से शाकाहारी प्रकृति की होती है निचला होठ चूसक की तरह रूपांतरित होने के कारण यह (डेट्राइटस) चटटानों, पत्थरों तथा नदियों के किनारे स्थित ठोस वस्तुओं पर एकत्रित जैविक आवरण पर भोजन करती है। जिसमें मुख्यतः विभिन्न प्रजाति के शैवाल होते हैं। इसके अलावा गले पदार्थो एंव विभिन्न तरह के सूक्ष्म जीवाणुओं का भी सेवन करती है।

नर एवं मादा लिंग विभेदन

प्रौढ़ नर तथा मादा मछली में लिंग का विभेदन बड़ी ही आसानी से किया जा सकता है। प्रजनन काल के दौरान मादा मछली का पेट अण्डों से भरे होने के

नर एंव मादा गारा गोटाएला गोटाएला

कारण फुला हुआ दिखता है। जबकि नर मछली का शरीर सामान्य होता है। नर मछली में पैक्टरल फिन का आधार अपेक्षाकृत खुरदुरा होता है और मादा में यह भाग मुलायम होता है। प्रौढ़ नर के पेट को हल्का दबाने से उजले रंग का शुक्राणु बड़ी आसानी से निकल जाता है।

वृद्धि

अन्य पर्वतीय मत्स्य प्रजातियों की भांति गारा गोटाएला गोटाएला की शारीरिक वृद्धि बहुत धीमी गति से होती है। इस मछली की अधिकतम लम्बाई 18 सें0मी0 तक होती है। सामान्यतः नदीयों में पायी जाने वाली इस प्रजाति की लम्बाई 8–12 सें.मी. एंव वजन 14–17 ग्राम होता है।

प्रजनन

प्रजातियों के अंडे देने का समय पूर्व मानसून सत्र से शुरू होता है और शरद ऋतु की शुरूवात तक जारी रहता है। सामान्यतः इनका प्रजनन जुलाई से अक्टूबर माह में होता है। नर एंव मादा में जनन दैहिक सूचकांक (Gonadosomatic Index) जुलाई माह में सर्वाधिक देखा गया है। प्रजनन काल के दौरान नदियों के निचले भाग से पर्वतीय भागों की ओर पलायन करती हैं और अनुकूलित वातावरण मिलने

पर प्रजनन करती है। नर, मादा मछली की तुलना में एक ही वातावरण में रहते हुये जल्द परिपक्व होती है। नर मछली में शुक्राशय (टैस्टीज) लम्बे आकार का एंव सफेद होता है, जो दो भागों में बँटा होता है। मादा में अण्डों का रंग हल्का सफेद होता हैं एंव प्रतिग्राम मछली से लगभग 820–910 अण्डें प्राप्त होते है। औसतन 1 प्रौढ़ मादा के अण्डाशय से 5700–6100 तक अण्डे प्राप्त किये जा सकते है।

गारा गोटाएला गोटाएला पकड़ने के उपकरण

अधिकतर ठण्डी मछलियों की तुलना में इस प्रजाति की मछलियों को सामान्य मत्स्य उपकरण से पकड़ना जटिल कार्य है। इस मछली का मुख पत्थरों से चिपकने के लिए विशेष रूप से रूपांतरित होते है, जिसे चूसक भाग कहा जाता है और प्राकृतिक वातावरण में पत्थरों के नीचे तुरंत चिपक जाती है। अतः इनको नदियों से पकड़ने के लिए सबसे उपयोगी उपकरण इलैक्ट्रिक फिसिंग है। इसके अलावा ट्रेप, बैगनैट, घेरने वाला जाल, फेंका जाल इत्यादि उपकरण पकड़ने के काम में उपयोग किया जाता है।

प्रमुख रोग

हाल में चम्पावत प्रक्षेत्र फार्म के तालाब में तापमान में 6 डिग्री सेल्सियस के नीचे गिरावट में फफूंद संक्रमण होने से मृत्यु पायी गयी।

गारा गोटाएला गोटाएला की विशेषताऐं

- यह उत्तराखंड की विभिन्न नदियों में व्यापक रूप से प्रचलित है।
- यह मछली बहुत ही कठोर स्वभाव की होती है। जलीय वातावरण में बदलाव को आसानी से सहन कर लेती है। यह तेज बहते हुए, कम बहाव वाले एंव स्थिर पानी में भी रह सकती है।
- प्रजनन काल के दौरान नर मादा की पहचान आसानी से की जा सकती है।
- शाकाहारी प्रकृति होने के कारण यह प्रायः निम्नपोशी तल में रहती है। जलीय प्राकृतिक आहार के अलावा प्रतिपूरक आहार भी ग्रहण कर लेती है।
- यह सर्वाहारी प्रजाति की मछली है जो मुख्यतः शैवालों को खाकर अपना जीवन निर्वाह करती है।
- इस प्रजाति को एक्वेरियम में रखना लाभप्रद होता है, क्योंकि यह कॉच की दीवार में उत्पन्न होने वाले विभिन्न शैवालों को चाट कर खाती हैं, और विभिन्न तरह के सड़े गले पदार्थो का सेवन भी करती है, जिससे एक्वेरियम के स्वतः सफाई हो जाती है।

संरक्षण स्थानीय लोगो के द्वारा आज–कल उत्तराखंड की नदियों में विभिन्न प्रकार के विनाशकारी विधि एंव उपकरणों के प्रयोग जैसे ब्लैचिंग पाउडर डालना, किटनाशक दवायें डालना, डायनामाइट का प्रयोग करना, बॉध बनाना, और बिजली से प्रताड़ित करना इत्या से इनकी संख्या में लगातार गिरावट आती जा रही है। अतः भविष्य में इन्हें विलुप्त होने से बचाने के लिए उचित मत्स्य प्रबंध्य योजना एंव व्यस्था बनाना बहुत ही निर्णनायक होगा। आने वाले समय में जलवायु परिर्वतन के दुष्प्रभाव के कारण इस प्रजाति को विलुप्त होने से बचाने के लिए शुक्राणु एंव अण्डांणु का शीत संरक्षण करना एक लाभदायक प्रयास है।

निदेशालय के केजों में पाले गये महाशीर अंगुलिकाओं का नौंगमाहीर झील में संचयन

भीमताल स्थित निदेशालय की महाशीर हैचरी में पालित सुनहरी महाशीर की 10 हजार अगुंलिकाओं को नौंगमाहीर झील, मेघालय में संचायित किया गया साथ ही इस झील को महाशीर के लिए उपयुक्त मानते हुए इसे महाशीर ईको–पार्क के रुप में विकसित करने का प्रयास किया गया है। यह झील चौकलेट महाशीर के लिए भी उपयुक्त पायी गयी है। अतः इसमें 2000 चौकलेट महाशीर की अंगुलिकाओं को भी संचयित किया गया है। इस अवसर निदेशालय ने स्थानीय खारी भाषा में एक प्रदर्शनी भी लगायी, जिसमें लगभग 200 मत्स्य पालकों ने भाग लिया।

भारत के जलाशयों में मात्स्यिकी परिदृश्य

अनिल प्रकाश शर्मा एवं गणेश चन्द्र
गो. ब. पन्त कृषि एवं प्रौद्यो. विश्वविद्यालय पन्तनगर, (उत्तराखण्ड)

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में बहुत सारे जलाशयों का निर्माण सिंचाई एवं विद्युत उत्पादन के उद्देश्य पूर्ति हेतु किया गया। इन जलाशयों में मात्स्यिकी की अपार संभावनायें हैं। इन जलाशयों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है– छोटे जलाशय (1000 हे. से कम), मध्यम जलाशय (1000–5000 हे. तक) तथा बड़े जलाशय (5000 हे. से अधिक)। वर्तमान में छोटे जलाशयों के तहत 1,485,557 हे., मध्यम 527,541 हे. तथा बड़े जलाशयों के अंतर्गत 1,40,268 हे. जल क्षेत्र आते हैं।

हमारे देश के जलाशयों की भौगोलिक बनावट, जल रसायनिक गुण एवं जैविक गुणों में अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है एवं सारे जलाशयों पर एक ही प्रकार का तकनीकी पैकेज देना लगभग असंभव है। केन्द्रीय अर्न्तस्थली मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर द्वारा पिछले कुछ दशकों में किये गये अनुसंधान के आधार पर जलाशयों के लिये कई दिशा–निर्देश जारी किये गये हैं जिसके अनुसार जलाशय मत्स्य प्रबंधक स्थानीय आधार पर प्रबंधकीय प्रणाली का विकास कर सकते हैं। यह दिशा निर्देश छोटे जलाशयों यथा 1000 हे. तक के जलाशयों पर विशेष रूप से प्रभावी है क्योंकि यह देखा गया है कि प्रबंधन एवं उपज वृद्धि में अधिक सार्थक संबंध रहता है जबकि मध्यम एवं बड़े जलाशयों में यह सम्बंध थोड़ा कम पाया गया है। देश के विभिन्न जलाशयों में मत्स्य दोहन की प्रणाली में अत्यधिक विभिन्नता पाई जाती है। सरकार एवं इसकी विभिन्न एजेन्सियां ही विभिन्न राज्यों में इन जलाशयों पर अधिकार रखती हैं लेकिन मत्स्य अधिकार का निर्धारण एवं इसकी दोहन प्रणाली अलग–अलग है।

मत्स्य अधिकार के आधार पर इन जलाशयों को चार भागों में वर्णित कर सकते हैं, यथा, निजी अधिकार एवं प्रबंधन अंतर्गत जलाशय, लोक जलाशय,

सामुदायिक जलाशय एवं सरकार के द्वारा प्रबंधित जलाशय। सही प्रबंधन के द्वारा जलाशय के मत्स्य संसाधनों को टिकाउ तथा पर्यावरणीय संतुलन के साथ रख सकते हैं। लेकिन इन जलाशयों के बनने के कारण नदीय मत्स्य उत्पादन में जो कमी पाई गई है, उसकी पूर्ति हेतु जलाशयों में सघन मात्स्यिकी प्रबंधन की अवाश्यकता है।

भारतीय जलाशयों से वर्तमान मत्स्य उत्पादन एवं भविष्य की संभावनायें

विभिन्न जलाशयों से प्राप्त उपज एवं मत्स्य उत्पादन को सहजता से स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसके बहुत से कारण हैं – जैसे, बहुत सारी एजेन्सियों के पास मत्स्य अधिकार का होना, विपणन स्रोत का अव्यवस्थित एवं फैला होना, राहकारी समितियों को अप्रभावी होना, अनेक प्रकार की लाइसेंसिंग प्रणालियों का होना तथा राज्य सरकारों एवं सरकारी संस्थाओं के कर्मचारियों को डाटा एकत्रित करने का प्रशिक्षण ना होना।

वर्तमान मत्स्य उत्पादन एवं अप्रयुक्त अंतराल

जलाशयों की वर्तमान मत्स्य उत्पादन उसकी संभावनाओं से अत्यधिक कम है जो प्रलक्षित करती है कि इसमें उत्पादन वृद्धि की असीम संभावनायें हैं (तालिका 1)। छोटे जलाशयों में मत्स्य वर्तमान में 74200 टन है जबकि यहाँ संभावनायें दस गुणा अधिक 7.42 लाख टन मत्स्य उत्पादन की हैं। तीनों प्रकार के जलाशयों को मिलाकर संभावनायें वर्तमान मत्स्य उपज से बढ़कर नौ गुणा करने की है।

तालिका – 1 : भारतीय जलाशयों का संभावित उत्पादन

वर्ग	क्षेत्र (मिलियन हे.)	वर्तमान उपज (टन)	संभावित उपज (टन)	अंतराल (टन)	बढ़वार (फोल्ड की संख्या)
छोटे जलाशय	1.48	74,200	742,000	667,800	9.00
मध्यम जलाशय	0.53	6,500	139,000	132,500	20,38
बड़े जलाशय	1.14	13,000	93,000	80,000	6.15

हम अपने जलाशयों से उत्पादन को लगभग नौ गुणा बढ़ा सकते हैं।

वर्तमान मत्स्य उत्पादकता एवं अप्रयुक्त अंतराल

विभिन्न राज्यों में मत्स्य उत्पादकता अलग–अलग आकार के जलाशयों के आकार में वृद्धि के साथ घटता हुआ दिखाई देता है। छोटे जलाशयों को कुल औसत उपज 50 कि.ग्रा./ हे. पाया गया है। सबसे अधिक आंध्र प्रदेश में 188 कि. ग्रा./हे. और उसके बाद केरल में 53.5 कि.ग्रा./हे. पाया गया है।

सबसे न्युनतम उत्तर प्रदेश राज्य में जहां उत्पादकता 15 कि.ग्रा./हे. तथा इसके ऊपर बिहार जहां उत्पादकता 25 कि.ग्रा./हे. है। बड़े जलाशयों में अधिकतम उपज हिमाचल प्रदेश में तथा मध्यम आकार के जलाशयों में अधिकतम उत्पादकता राजस्थान में है।

मौजुदा एवं संभावित उत्पादन के अनुमानों के अनुसार, मत्स्य उपज की कमी छोटे जलाशयों में 450 कि.ग्रा./हे., मध्यम आकार के जलाशयों में 251 कि.ग्रा./हे. तथा विशाल जलाशयों में 70 कि.ग्रा./हे. है। जलाशयों की मौजूदा उपज संभावित उत्पादकता वृद्धि से नौ गुणा कम है।

भारतीय जलाशयों में कम उत्पादकता का कारण

भारतीय जलाशयों में मत्स्य उत्पादन को भौतिक, जैविक, सामाजिक–आर्थिक तथा संस्थानिक कारक प्रभावित करते हैं। जलाशय एक प्राकृतिक या कृत्रिम पारिस्थितिकी तंत्र है जो बहुत उपयोगी होते हैं। इन कारकों में वृद्धि, प्राकृतिक मृत्यु, संघन घनत्व, संघन आमाप, पकड़ने के समय का आमाप, दोहन समय, मालिकाना हक, मात्स्यिकी एवं प्रबंधन स्तर, मछुआरे की सामाजिक–आर्थिक अवस्था।

विभिन्न प्रकार के जलाशयों में मात्स्यिकी प्रबंधन का मूल्यांकन यह इंगित करता है कि महत्वपूर्ण पहलुओं पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है, मुख्य रूप से वैज्ञानिक प्रबंधन के तरीकों के कार्यान्वयन में कमी के कारण जलाशयों की उत्पादकता कम रही है। राज्य सरकार द्वारा स्पष्ट नीति का अभाव, संग्रहण के दिशा निर्देशों तथा अन्य प्रबंधन के तरीकों को प्रभावी रूप से ना लागू करना भी अन्य कारक हो सकते हैं। गत् तीन दशकों में मत्स्य बीज उत्पादन भारत में तीन गुणा बढ़ा है। लेकिन इनका पालन जलाशयों में संघनन में प्रयुक्त 10 सें.मी. के अंगुलिकाओं तक नहीं हो सका है। मुख्य रूप से हैचरिज से प्राप्त बीज, मत्स्य बीज पालन के क्षेत्र में जा रहे हैं।

विभिन्न प्रकार के जलाशयों में मात्स्यिकी के विकल्प

जलाशयों में मात्स्यिकी प्रबंधन का चुनाव पर्यावरणीय मानकों तथा मत्स्य भण्डार की उपलब्धता तथा इनका इस तरीके से प्रयोग की यह मत्स्य उत्पादकता में वृद्धि तथा मछुआरों की आजीविका की संभावनाओं को बढ़ाने में कारक का काम करे।

भारत में वृहद या बड़े एवं मध्यम आकार के जलाशयों को प्रग्रहण मात्स्यिकी के आधार पर विकसित करते हैं। छोटे आकार के जलाशयों में जीव पालन आधारित मात्स्यिकी प्रबंधन अधिक प्रचलित है।

छोटे आकार के जलाशयों में जीव पालन प्रग्रहण आधारित मात्स्यिकी

1. सिस्टम में उपलब्ध खाद्य संसाधनों के आधार पर सही प्रजाति का चयन।
2. संघन घनत्व (Stocking density) का निर्धारण उत्पादन क्षमता, विकास एवं मृत्युदर के आधार पर।
3. उचित संघन, मत्स्य पकड़ने का समय इस आधार पर निर्धारित करते हैं कि मछलियों को बढ़ने का अधिक समय मिले।

जलाशय मात्स्यिकी विकास में केन्द्रीय अन्तर्स्थली मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान (सिफरी) का योगदान

पिछले कुछ दशकों में केन्द्रीय अन्तर्स्थली मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर ने अपने वैज्ञानिकों द्वारा किये गये अनुसंधान के आधार पर जलाशयों की जैव विविधता, मात्स्यिकी एवं पारिस्थितिकी पर एक आख्या तैयार कर ली है। विकसित किये गये डेटाबेस के आधार पर बड़े एवं मध्यम आकार के जलाशयों के लिये मत्स्य पालन प्रबंधन प्रोटोकोल विकसित किये गये है। इस प्रोटोकोल ने अनेक जलाशयों में मत्स्य उपज वृद्धि में सहयोग दिया यथा नागार्जुन सागर, गोविन्द सागर, गेतालसुद, हिराकुंड, पौंग आदि।

छोटे जलाशयों की मत्स्य उत्पादकता वृद्धि हेतु मत्स्य संवर्धन तकनीक का विकास किया गया। इस तकनीक का प्रयोग देश के विभिन्न छोटे जलाशयों में किया गया यथा, उत्तर प्रदेश में गुलरिया, बघला एवं बछरा; केरल में मीनकरा; कर्नाटक में मार्कनहल्ली और तमिलनाडु में अलीयार एवं त्रिमूर्ति। इन सभी जलाशयों में वैज्ञानिक मात्स्यिकी प्रबंधन के द्वारा तीन गुणा अधिक उपज प्राप्त की गई।

जलाशयों में मत्स्य उत्पादन वृद्धि के लिये पेन एवं केज पालन प्रविधियों का प्रयोग कर अंगुलिकाओं एवं बड़ी मछलियों का उत्पादन किया गया है। इन प्रविधियों का प्रयोग कर हम आवश्यक अंगुलिकाओं की मात्रा की कमी को भी पूरा कर सकते हैं।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के तहत भारत सरकार ने एन. एफ. डी. बी. के सहयोग से विभिन्न राज्यों के जलाशयों में केज पालन के द्वारा अंगुलिकाओं के उत्पादन पर विशेष जार दिया है। सिफरी इस कार्यक्रम में एक बड़ा साझीदार है। इन जलाशयों में मत्स्य उपज बढ़कर 110 कि. ग्रा./हे. हो गया है।

जलाशयों में उत्पादकता वृद्धि हेतु महत्वपूर्ण सुझाव

- राज्य के मत्स्य विभाग एवं जमीनी स्तर पर मछुआरों या मछुआ संगठनों को गहन तकनीकों को हस्तांतरण।
- जलाशयों में अच्छे मात्स्यिकी प्रबंधन के लिये राज्य सरकार की वर्तमान मत्स्य स्वामित्व मत्स्याधिकार, मत्स्य प्रबंधन, पट्टे इत्यादि की नीतियों का मूल्यांकन।
- प्रजनन के मौसम में मत्स्य आखेट पर रोक।
- प्रग्रहण मत्स्य आमाप का निर्धारण एवं अंगुलिकाओं एवं छोटे आमाप के मछलियों के पकड़ने पर पाबंदी।
- प्रजनन के मौसम में जलाशयों के लोटिक क्षेत्र को अत्यधिक संवेदनशील एवं संरक्षित क्षेत्र के रूप में घोषित किया जाना।
- मत्स्य पालन को जलाशयों के एक अनिवार्य गतिविधि के रूप में मान्यता।
- जलाशयों में विदेशी मछलियों के पालन पर निषेध।
- उपर्युक्त गुण के मत्स्य बीजों एवं अंगुलिकाओं की उपलब्धता हेतु आवश्यक बुनियादी सुविधाओं का निर्माण।
- आकार एवं जाल के आमाप पर प्रभावी नियंत्रण।
- विपणन एवं पकड़ने के उपरांत मछलियों के संरक्षण के लिये ढाँचागत निर्माण एवं आर्थिक सहायता।
- बाँधों एवं जलाशयों के निर्माण के समय विभिन्न समितियों में मत्स्य विशेषज्ञों को भी रखा जाय।
- राज्य मत्स्य पालन, जलाशय मात्स्यिकी प्रबंधक, गैर सरकारी संगठनों को समय–समय पर प्रशिक्षण दिलाया जाय।

चम्पावत में मत्स्य स्वास्थ्य प्रबन्धन पर जन जागरण अभियान

12 जून 2016 को चम्पावत के पाटी विकास खण्ड में मत्स्य पालकों के लिए राष्ट्रीय रोग निगरानी कार्यक्रम के अन्तर्गत मत्स्य स्वास्थ्य प्रबन्धन पर एक जन–जागरण अभियान आयोजित किया जिसमें चम्पावत के ग्रामों से 15 कृषकों सहित 79 अन्य मत्स्य पालकों ने भाग लिया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य मत्स्य पालकों को मछलियों के रोगों की रोकथाम और उसके नियंत्रण के लिए बेहतर जल प्रबन्धन के प्रति जागरुक करना था। इस दौरान उनको हानिकारक रसायनों, तालाब में जल की गुणवन्ता को बनाये रखना, तालाबों में जल के बेहतर तापक्रम आदि के बारे में विस्तार से जानकारी दी गयी।

उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में शीतजल मात्स्यिकी एवं मात्स्यिकी संसाधन

*मदन मोहन, आर. एस. पतियाल, ममता जोशी एन.एन. पाण्डेय एवं सुमंत कुमार मलिक
*पंजाब मत्स्य विभाग, पंजाब एवं भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

पृष्ठ भूमि

भारतीय उपमहद्वीप के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के (अशांश 21.570 – 29.300 उत्तर; अक्षांश 84.460 – 97.300 पूर्वाद्ध में असम, मेघालय, मणीपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैण्ड व सिक्किम राज्य है। जहां पर मत्स्य जैव विविधता एंव मात्स्यिकी गतिविधियों की अपार सम्भावनाएं है। असम में ब्रहमपुत्र के मैदान से लेकर बराक घाटी तक व मणीपुर में इम्फाल घाटी की समतल भूमि से लेकर मिजोरम के पर्वतीय क्षेत्र व मेघालय के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र की अपनी भूगार्भिक भिन्नता, भौगोलिक, सामाजिक जलवायु एंव जैविकीय विशेषताएं है। सम्पूर्ण उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के लगभग 65 प्रतिशत भाग पर अधिकांशतः पर्वत एंव पहाड़िया विद्यमान है।

इस क्षेत्र के सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्र का फैलाव लगभग 43% 30% व 27% है। जिसकी उच्च सीमा 7300मी. 7300–1200 मी. व 71200 मी. है जो क्रमशः उपोष्णी, उप ऊपोष्णीय व तापीय क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। अरूणांचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में तापीय सीमा शून्य से नीचे रहती है तथा असम व मणीपुर में 360 सें. ग्रे. के लगभग रहती है। इन क्षेत्रों की जैव विविधता भी पर्याप्त शक्तिशाली है।

जल संसाधन

इस क्षेत्र में नदियों, धाराओं, झीलों, बाढ़ के मैदानों, जलाशयों तालाब, छोटे–छोटे बांधों आदि के रूप में बहते हुए और रूके हुए असंख्य जल संसाधन विद्यमान है। इसके अतिरिक्त यहां निचले क्षेत्र भी है जो धान की खेती के साथ–साथ मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त है। उत्तर–पूर्वी राज्यों में कुल मात्स्यिकी जल संसाधन है।:–

नदियां	–	19150
झीलें/वील्स	–	143740
जलाशय	–	23792
तालाब /छोटे बांध	–	40808
धान के साथ मत्स्य पालन	–	2780

विभिन्न उत्तर–पूर्वी राज्यों की महत्वपूर्ण नदी प्रणालियां

राज्य	महत्वपूर्ण नदी प्रणालियां
असम	ब्रहमपुत्र, बराक
अरूणाचल प्रदेश	कमेंग सुबनसिरि, डिबंग, सिआंग, लोहित, तिराप
मेघालय	उत्तर में ब्रहमपुत्र, दक्षिण में बराक
त्रिपुरा	मउ, धालाई, बुरीगंग, खोवाई, गुमती, मुहारी, जूरी, डियू, हाओरा
मनीपुर	इम्फाल, थोबाल, नाम्बुल
नागालैण्ड	धान्सिसी, दोयांग, दिकु, झान्जी
मिजोरम	धालेश्वारी, सोनाई, कोल्डोनी, कर्नाफुली
सिक्किम	तीस्ता, रांगित

विभिन्न उंचाईयों (समुद्र तल से) पर उत्तर–पूर्वी राज्यों की भूमि क्षेत्रफल (km²) का प्रतिशत के आधार पर विवरण

राज्य	अधिकतम ऊंचाई	150 मी. से कम	150–300 मी.	300–600 मी.	600–1200 मी.	1200 मी. अधिक
असम	1361	63179 (80-6)	7300-68 (9-3)	4632-86 (5-9)	3030-99 (3-9)	259-17 (0-30)
अरूणाचल प्रदेश	7089	1395-75 (1-7)	6017 (7-2)	8942-89 (10-7)	13731-87 (16-4)	53489-92 (64-0)
मनीपुर	2994	1182-63 (5-3)	308-15 (1-4)	2792-26 (12-5)	11952-75 (53-5)	6118-84 (27-3)
मेघालय	1961	3719-61 (16-5)	3622-98 (16-1)	4284-15 (19-0)	6962-59 (31-1)	3899-59 (17-3)
मिजोरम	2159	3749-27 (17-8)	5248-55 (24-9)	5225-36 (24-8)	6863-82 (32-5)	–
नागालेण्ड	3016	685-87 (4-1)	953-49 (11-3)	2921-97 (17-7)	5053-96 (30-6)	5911-71 (35-8)
त्रिपुरा	700	8766-11 (83-7)	1629-17 (15-5)	81-72 (0-8)	–	–

श्रोत– रिपोर्ट आफ द ग्रुप फार 'एग्रो–क्लाइमेटिक प्लानिंग–ईस्टर्न हिमालयन रिजन' आफटर सिन्हा (2002)

उत्तर–पूर्वी राज्यों से मत्स्य प्रजातियां

राज्य	असम	अरूणाचल प्रदेश	मेघालय	त्रिपुरा	मनीपुर	नागालैण्ड	मिजोरम	सिक्किम
प्रजातियां	218	167	165	134	121	68	48	28

उत्तर–पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र से मत्स्य उत्पादन का आंकलन

राज्य	1999–2000	2000–2001	2001–2002	2002–2003	2003–2004
असम	159768	158620	161450	165521	181000
अरूणाचल प्रदेश	2395	2500	2600	2600	2652
मनीपुर	15506	16050	16450	16600	17600
मेघालय	4676	6179	4968	5372	5147
मिजोरम	2890	2860	3147	3250	3380
नगालैण्ड	5000	5500	5200	5500	5560
सिक्किम	–	140	140	140	140
त्रिपुरा	29340	29420	29450	16155	17980

सुगनन (2003) एवं फिसिंग चाइम्स (2004)

मत्स्य संसाधन

ताजे पानी की मत्स्य जैव विविधता एकमात्र महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध है। अभी तक इस क्षेत्र से 267 मत्स्य प्रजातियों का 38 परिवार समूह के अन्तर्गत पता लगाया गया है जो 38 समूह के अन्तर्गत 114 वंश से सम्बन्धित है। ये सम्पूर्ण भारत के ताजे पानी के मत्स्य समूह का 1/3 भाग है (सेन, 2000 सरकार एंव पुनैया 2000) ने आखेट सजावटी व खाद्य की दृष्टि से 172 मत्स्य प्रजातियों का मूल्यांकन किया है। इस क्षेत्र में इनका अनुपात 45%, 45% व 10% है।

यद्यपि अभी तक विशेष मत्स्य केन्द्रों की कमी कठिन पर्वतीय रास्तों, निम्नतापी स्तर, मछली पकड़ने के दोषपूर्ण तरीके, बार–बार आने वाली बाढ़ आदि के कारण शीतजल संसाधनों का पूर्ण रूप से पता नहीं लग पाया है। भारत के उत्तर पश्चिम पर्वतीय राज्यों से लेकर उत्तर–पूर्वी राज्यों के पिछले पांच वर्षो (1999–2000) के आकड़ों के आधार पर कुल मत्स्य उत्पादन का अनुमान लगभग 253692 टन लगाया गया है। केवल 40 प्रतिशत क्षेत्र शीतजल क्षेत्र के अन्तर्गत है जिसका कुल मत्स्य उत्पादन लगभग 101476 टन है जिसका देश में कुल अर्न्तस्थली मत्स्य उत्पादन में 3 प्रतिशत योगदान है। इस दिशा में एकमात्र ध्यान उत्तर–पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में दिया गया है जहां कुल वार्षिक मत्स्य उत्पादन 222598 टन अनुमानित किया गया है। इसी प्रकार पर्वतीय क्षेत्रों में भी लगभग 90.000 टन मत्स्य उत्पादन अनुमानित किया गया है।

इन असंख्य जल संसाधनो के अतिरिक्त मछली की खपत लगभग 6 किग्रा/प्रतिव्यक्ति वार्षिक है। यद्यपि इस क्षेत्र के अधिकांश जन मत्स्य प्रेमी है। सुगनन(2003) के अनुसार मत्स्य क्षेत्र अपनी आवश्यकता का 56 प्रतिशत मत्स्य उत्पादन करता है तथा इन संसाधनों में मत्स्य उत्पादन की अलग सम्भावनाएं है। मात्स्यिकी विकास एंव पूर्ण संरक्षण के द्वारा स्थानीय जनता की आवश्यकताओं को लगभग 85 प्रतिशत तक पूर्ण किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त जल की कमी, प्राकृतिक आवासों में बदलाव, मानव हस्तक्षेप तथा उचित प्रबन्धन के अभाव के कारण इन क्षेत्रों में मत्स्य उत्पादन एंव मात्स्यिकी

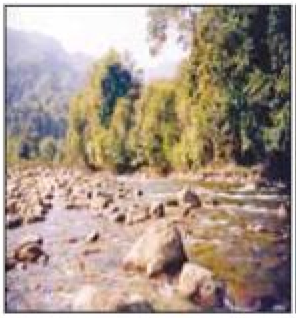

में काफी कमी आयी है तथा कुछ मत्स्य प्रजातियों को लुप्तप्रायः व संकटग्रस्त माना गया है। महासीर जिसे प्रमुख आखेट योग्य एंव खाद्य मत्स्य प्रजाति के रूप में जाना जाता है इन क्षेत्रों में अपने विभिन्न जल स्रोतों में अपने आवासो को शीघ्रता से खोते जा रही है। अन्य शीतजल मत्स्य प्रजातियों जैसे–स्नो ट्राउट के भी प्रग्रहण, आकार व भार आदि में निरंतर कमी आयी है।

मछली के साथ–साथ धान की खेती

सिन्हा (2002) के अनुसार मणीपुर, असम, मेघालय,मिजोरम के कुछ क्षेत्रों में पारम्परिक धान की खेती के अतिरिक्त अरूणांचल प्रदेश व नागालैण्ड में धान के साथ–साथ मछली पालन का भी कार्य किया जाता है। धान के साथ मछली पालन के अन्तर्गत कामनकार्प प्रजाति की मछली के साथ धान की खेती की जाती है। यह आपटानी, मध्यवर्ती क्षेत्र के निचले सुबनसीरी में जीरो के साथ–साथ कुछ उंचे क्षेत्रों जैसे– उपरी सुबनसीरी, उत्तरी–पूर्वी व पश्चिम सियांग तथा अरूणांचल प्रदेश के तबांग व पश्चिम किमांग जिले में काफी प्रसिद्व है तथा यहां इसकी एक तंत्र (प्रणाली) स्थापित हो गयी है। जिसमें 15–250 किग्रा/हेक्टेयर/100–120 दिन बिना उर्वरक व मत्स्य आकार के मत्स्य उत्पादन किया जाता है। इस कार्यक्रम को आगे मत्स्य क्षेत्रों में भी फैलाया गया है। यद्यपि और अधिक मत्स्य उत्पादन हेतु इस कार्यक्रम में वैज्ञानिक हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

सजावटी मत्स्य उत्पादन

यद्यपि उत्त्र–पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र सजावटी मछलियों की उत्तम कोटि की प्रजातियों के लिये अभियन्त्रित है किंतु यहां अभी मत्स्य व्यवसाय वित्तीय सहायता अभिसंरचनात्मक व तकनीकी अभाव के कारण संगठित नहीं हो पाया है। डे. एंव सरमाह (2003) ने 189 मत्स्य प्रजातियों का पता लगाया है। जिनकी विश्व बाजार में अच्छी कीमत है साथ ही सुझाव दिया कि आयोजकों, नीतिनिर्धारकों, अनुसंधानकर्ताओं व मत्स्य संगठनों को इन प्राकृतिक स्रोतों से अक्षुण्ण रखने के लिये सम्मिलित प्रयास करने होंगे ताकि इस क्षेत्र का सम्मिलित आर्थिक विकास हो सके। साथ ही बाजार की व्यवस्था, समुचित वित्तीय योजनाओं, मत्स्य पालकों के लिये सहयोगी संस्थाओं, उत्पादन, तकनीकियों के लिये बहुमूल्य पैकेज, मानव शक्ति के विकास तथा सजावटी मत्स्य संसाधनों के मूल्यांकन हेतु तथा बड़े पैमाने पर मत्स्य पालन–पोषण व इन मात्स्यिकी गतिविधियों को बढ़ाने के लिये लोगों को इसमें सम्मिलित होना होगा। पालनि सामी (2003) के अनुसार वर्तमान में 6 प्रतिशत वार्षिक दर वाली सजावटी मछलियों का विश्व बाजार में मूल्य 5.26 अरब यूस. डालर 23,670 करोड़ रू.) आंका गया है। जिसमें कुल आपूर्ति का 50 प्रतिशत योगदान एशियाई देशों का है। सजावटी मछलियो की स्थिर वृद्वि के बावजूद भी मत्स्य आकार में भारत का योगदान नगण्य है। (00.2%) निर्यात की तुलना में सजावटी मछलियों की घरेलु मांग का अनुमान लगभग 10 करोड़ टन प्रतिवर्ष है जिसमें 20% की वार्षिक वृद्वि हो रही है (विजय कुमार 2001)। अतः व्यापक पैमाने पर सजावटी मछलियों के पालन–पोषण व प्रजनन के निकाय हेतु पर्याप्त गुजांइश है।

आखेट मात्स्यिकी

उत्तर–पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों की नदियों, झीलों, जलाशयों आदि में मत्स्य पालन की पर्याप्त सम्भावनाएं है किन्तु ये सभी इस क्षेत्र में बेहतरीन इधर–उधर अव्यवस्थित रूप में फैले हुए है। इस क्षेत्र में केवल कुछ स्थानों को छोड़कर मत्स्य आखेट को तो प्रोत्साहित नहीं किया गया है। और न ही ये अच्छी तरह से संगठित है। यह पूर्णतः सत्य है कि मत्स्य आखेट/शिकारमाही पूर्णतः आखेट–पर्यटन एंव इस क्षेत्र की आर्थिक समृद्वि से सम्बद्व है। यद्यपि भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे शक्तिशाली और सर्वप्रिय आखेट योग्य देशी प्रजाति की मछली महासीर इस क्षेत्र में उपलब्ध है तथापि इसको प्रचारित करने के लिये राष्ट्रीय परिदृश्य पर कुछ प्रचलन करको होंगे इसलिये इस दिशा में सम्पूर्ण सर्वेक्षण तथा उत्तर–पूर्वी पर्वतीय क्षेत्र में महासीर के लिये उपयुक्त जल स्रोतों के मूल्यांकन की आवश्कता है ताकि इन स्थानों को एकमात्र महासीर आखेट स्तर के रूप में जाना जा सके। इन क्षेत्रों में महासीर के प्राकृतिक संसाधन पहले से ही विद्यमान है। इन क्षेत्रों में शिकारमाही और मत्स्य आखेट को बढ़ावा देने के लिये राज्य ईकाईयों के साथ–साथ अन्य गैर सरकारी संगठनो व आखेटक संगठनो की निर्णायक कार्य योजना भी अति आवश्यक है।

एक अन्य विश्व प्रसिद्व आखेट योग्य मछली–विदेशी ब्राउन ट्राउट को अंग्रेजों ने शताब्दी पूर्व कश्मीर घाटी में प्रवेशित कराया था। यहां से उसे भारत के पर्वतीय जलस्रोतो में तथा उत्तर–पूर्वी पर्वतीय राज्यों के कुछ प्रदेशों में प्रत्यारोपित किया गया लेकिन उत्तर–पूर्वी राज्यों में इसके उत्पादन तथा नदियों में डालकर इसके आखेट के लिए अधिक प्रयास नही किए गए हैं।

ट्राउट गतिविधियां

अरूणांचल प्रदेश में राज्य मत्स्य विभाग द्वारा सेरागांव, नूरान्नांग व तवांग में 3 ट्राउट मत्स्य अण्डजननशाला हैचारिया स्थापित की गयी है। नूरान्गांग में लगभग 15.000–20.000 आइड ओवा तैयार होता है। जबकि सेरागांव हैचरी की क्षमता 40.000–50.000 आइड ओवा के पालन की है। इनके जीरों को उचित जलस्रोतों में छोड़ा जाता है। फार्म में इन छोटी मछलियों को पालने हेतु गोलाकार टेंक एंव रेसवेज की भी व्यवस्था है। राज्य में ट्राउट आखेट को प्रोत्साहन देने के लिये वर्ष 1993व1994 में दो बार अन्तर्राष्ट्रीय आखेट प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। नागालैंण्ड व मेघालय ने अरूणांचल प्रदेश से कई बार ट्राउट बीज का आयात किया किंतु उसका परिणाम क्या हुआ इसका कोई पता नहीं।

सिक्किम में, बर्फीली नदियां एंव उच्च स्थली झीलें शीतजल मात्स्यिकी के प्रमुख क्षेत्र है। ब्राउन ट्राउट (साल्मो ट्रूटा फारियो) के लगभग 5 लाख बीजों को मैन्मोइत्सो, लाचुंग, मैनीपोंग, लाचेन तथा योकसुम के 5 ट्राउट फार्मो में डाला गया। ततपश्चात् उन्हें उच्चस्थली झीलों

व नदियों में शिकारमाही के उददेश्य से छोड़ा गया। ब्राउन ट्राउट को 50 के मध्य दशक में डाला गया। और यह इस राज्य के अधिकांश क्षेत्रों में स्थापित हो चुकी है। मेनमोइत्सो, चांगू एंव कुपअप झीलें ट्राउट के लिये प्रसिद्व है। ट्राउट जल संसाधनों में नदियां लगभग 400 कि.मी. तथा झीलें 83 वर्ग कि. मी. है। इनमें लगभग 5 टन ट्राउट मछलियों का उत्पादन होता है। (प्रोधान, 2006)। वर्ष 2002 में हिमाचल प्रदेश से रेम्बो ट्राउट को लाकर मनीपोंग एंव लाचुंग के ट्राउट फार्मो में रखा गया। यह राज्य भविष्य में लोगों को ब्राउन ट्राउट के पालन–पोषण उसके अनुवंशिक परिस्करण के लिये प्रशिक्षित करने पर विचार कर रहा है ताकि इसकी वृद्वि पर ट्राउट फार्मो में सुधार, आहार यंत्रों के संस्थापन आदि में सुधार लाया जा सके। मणीपुर में उखरूल जिले में सिरोई ग्राम में एक शीतजल मत्स्य फार्म स्थापित किया गया है। जिसका मुख्य उददेश्य फार्म में पानी की आपूर्ति की समस्या के कारण ट्राउट पालन में प्राप्त असफलता को दूर करना था। यद्यपि बाद में पानी आपूर्ति की समस्या में सुधार हो जाने के कारण रैम्बो ट्राउट और ब्राउन ट्राउट के सम्बर्धन में सफलता प्राप्त कर ली गयी।

इस राज्य में पहले से विद्यमान विदेशी ट्राउट के प्रसार एंव विकास तथा नवीन क्षेत्रों के चयन की ओर विशेष ध्यान देते हुए साकार प्रयत्न करने होंगे जिससे ऊंची कीमत वाली मछली के साथ–साथ अच्छी आय तो होगी ही साथ ही देश एंव विदेश के पर्यटक भी इस ओर आकृष्ट होंगे। ये दोनों आर्थिक पर्यटन से जुड़ेगे। राज्य की हैचरियों व नदियों में पहले से ही ट्राउट विद्यमान है किन्तु उनका रख रखाव उचित नहीं है। उनकी ट्राउट नदियों व झीलों में संख्या व फार्म में उनका उत्पादन स्तर भी अस्पष्ट है इन राज्यों में अधिकतर ट्राउट पालन की सुविधा या तो बहुत प्राचीन है या फिर व्यवस्थित नहीं है। इनका कारण गलत निर्गाण कार्यो, ताप के स्तर में परिवर्तन, पानी के आपूर्ति के बाद की वृद्वि, समुचित पोशक आहार की मात्रा में कमी, मत्स्य स्वास्थ्य तथा वैज्ञानिक ज्ञान की कमी इत्यादि है। जिससे फार्म में इनकी उत्तर जीवितता व वृद्वि दर में काफी कमी आयी है। पुरानी ट्राउट हैचरियों/फार्मो में सुधार व जीर्णो द्वार की आवश्यकता है तथा नवीन हैचरियों को आधुनिक तरीके से बनाया जाये। शीघ्रता से बढ़ने वाली प्रजाति–स्नो ट्राउट (ओन्कोरिकस माइकिस) जम्मू–कश्मीर व हिमाचल प्रदेश में उपलब्ध है जिनको वहां से लाकर उत्पादन बढ़ाने व लाभ प्राप्ति के लिये कुछ समय के लिये यहां लाया जा सकता है।

उत्तर–पूर्वी पर्वतीय राज्य के क्षेत्रों की विभिन्न नदियों व झीलों में आखेट के उददेश्य से पहले ही इनका संचय किया जा चुका है। जिनका अब उनकी संख्या, नियोजन व आखेटकों द्वारा पकड़ी गयी मछली के भार के आधार पर पुर्न मूल्यांकन की आवश्यकता है ट्राउट जलस्रोतों के प्रबन्धन का मुख्य उददेश्य यह है कि आखेटकों को निरन्तर मछलियां उपलब्ध होती रहें। दूसरे शब्दों में, ट्राउट जल स्रोतों के प्रबन्धन से आखेटकों को पर्याप्त मात्रा में अच्छी आकार की मछलियां निरन्तर मिलती रहें। यह प्रत्येक ट्राउट नदी में संचयन नीति के लिये अति आवश्यक है साथ ही आखेटकों द्वारा पकड़ी गयी मछलियों के आकार, उसके भार, मछली पकड़ने वाले कांटों का आकार, मछली पकड़ने की तिथि, स्थल, मछली पकड़ने हेतु दिये गये चारे, मछली को पकड़कर पुनः जल स्रोत आदि में छोड़ना आदि का विस्तृत विवरण एक अभिलेख रजिस्टर में नोट कर लेने से यह मात्स्यिकी गतिविधियों के संचालन के लिये बहुत लाभकारी होगा। वैज्ञानिक अन्वेषणों के आधार पर और अधिक नवीन जल स्रोतों की पहचान करनी होगी तथा शिकारमाही को प्रोत्साहित करने के लिये वर्ष में वांछित भागों में ट्राउट बीजों को प्रत्यारोपित करना होगा।

ट्राउट आखेट को बढ़ावा देने के लिये पर्वतीय क्षेत्रों के उचित जलस्रोतों में ब्राउन ट्राउट (साल्मो ट्रूटा फेरियो) की बेहतर प्रजाति को संचयित करने की आवश्यकता है। जिससे इस क्षेत्र में भारत सहित विदेश से भी अनेक आखेट प्रेमी इस क्षेत्र की ओर आकर्षित होंगे और आर्थिक पर्यटन के साथ राजस्व में भी वृद्वि होगी।

आगे की ओर

उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में उपलब्ध बहुतायत जल संसाधन, विभिन्न प्रकार की जैव विविधता, संरक्षण, प्रबन्धन तथा विस्तार गतिविधियों द्वारा मत्स्य सम्पदा को बढ़ाया जा सकता है।

भलीभांति परखी जा चुकी वैज्ञानिक जल सम्बर्धन तकनीकों द्वारा मछली का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है जिससे मांग और पूर्ति को पूरा किया जा सकता है तथा इसके अतिरिक्त धान के साथ–साथ मत्स्य पालन व आखेट पर्यटन को बढ़ावा दिया जा सकता है जिससे स्थानीय जनता को रोजगार के साधन व उनकी प्रोटीन युक्त आहार आसानी से सुलभ हो सकता है अन्ततः इसका प्रभाव राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिदृष्य पर प्रतिबिम्बित हो सकता है राज्य मत्स्य विभागों को प्रभावित बहुमूल्य मत्स्य प्रजातियों को पुर्न स्थापित करने के लिये बीज उत्पादन ईकाईयों की स्थापना करने की आवश्यकता है ताकि प्राकृतिक जल स्रोतों में बीजों का संचयन किया जा सके और कृत्रिम विधि के पालन–पोषण किया जा सके। इन सभी गतिविधियों के लिये स्थानीय जनता जिसमें महिलाएं भी सम्मिलित हो। उनका योगदान बहुत महत्वपूर्ण होगा।

इस विषय में यह कहना उचित होगा कि विशेषकर उत्तर–पूर्वी राज्यों में जिनके 65 प्रतिशत पर्वतीय क्षेत्र सम्मिलित है इनमें विशेषतः देशी महासीर, स्नो ट्राउट और विदेशी ट्राउट मछलियों का पूर्णरूपेण विकास करना अति आवश्यक है तथा जिसके लिये उचित उपाय करने अति आवश्यक है।

रेन्बो ट्राउट फार्मिंगः नीतिगत विकास हेतु चुनौतियां एवं सम्भावनाऐं' पर राष्ट्रीय परामर्श

दिनाँक 20–21 सितम्बर, 2015 को भीमताल में शी.ज.मा.अनु. निदेशालय द्वारा जैव प्रौद्योगिकी विभाग नई दिल्ली एवं राष्ट्रीय मात्स्यिकी विकास बोर्ड, हैदराबाद के साथ मिलकर ''रेन्बो ट्राउट फार्मिंगः नीतिगत विकास हेतु चुनौतियां एवं सम्भावनाऐं'' पर दो दिवसीय राष्ट्रीय

परामर्श कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य देश में रेन्बो ट्राउट (ओन्कोटिकस माइकिस) की कृषि में आने वाली चुनौतियों एवं समस्याओं के बारे में जानकारी देना था। रेन्बो ट्राउट ठण्डे पानी में पाली जाने वाली एक प्रमुख प्रजाति है तथा इसके विस्तार की अपार सम्भावनाऐं हैं। घरेलू खपत के साथ–साथ विदेशी निर्यात में भी इस प्रजाति में काफी क्षमता है। हालांकि उच्च उत्पादन एवं उत्पादकता के लिए बेहतर प्रशासन व कुशल प्रबनधन के तरीकों में महत्वपूर्ण सुधार करने की आवश्यकता है।

श्री आदित्य कुमार जोशी, संयुक्त सचिव, पशुपालन, डेयरी एवं मात्स्यिकी विभाग, कृषि एवं कृषक कल्याण मंत्रालय की अध्यक्षता में दो दिवसीय परिचर्चा की गयी। इस राष्ट्रीय परामर्श कार्यक्रम में ट्राउट उत्पादक राज्य जैसे– हिमांचल प्रदेश, सिक्किम, अरूणांचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम में विभिन्न राज्यों के ट्राउट उत्पादकों, विभिन्न संस्थानों के वैज्ञानिकों व राज्य कृषि विश्वविद्यालयों आदि ने भी भाग लिया। अपने भाषण में निदेशालय के निदेशक, डॉ. ए.के. सिंह, ने ठण्डे पानी की एक प्रमुख प्रजाति रेन्बो ट्राउट की वैश्विक एवं राष्ट्रीय महत्ता पर प्रकाश डाला। उन्होंने प्रौद्योगिकी–अन्तराल (गैप) और इस दिशा में निदेशालय द्वारा किए जा रहे कार्यों पर भी प्रकाश डाला। उन्होने इस बात को भी पुनः दोहराया कि एक व्यावसायिक खेती के रूप में योजनाकारों व अनुसंधान कर्ताओं एवं विकास संगठनों द्वारा इस प्रजाति के बेहतर फार्म प्रबन्धन, पालन विधि, उत्पादन आदि की दिशा में प्रर्याप्त ध्यान देने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय परामर्श के इस कार्यक्रम में भारतवर्ष में ट्राउट की खेती के विस्तार हेतु राष्ट्रीय योजनाओं के निर्माण एवं नीतियों, योजनाओं व अनुसंधान से सम्बन्धित मुद्दों को रखा गया। उत्पादन लक्ष्य को प्रापत करने के लिए कम मूल्य पर ट्राउट आहार, रोग–निगरानी, भौगोलिक सूचना प्रणाली के आधार पर योजनाऐं एवं बीज तथा प्रजनक बैंक की स्थापना आदि इस कार्यक्रम के मुख्य मुद्दों पर चर्चा हुयी।

इस दौरान राज्य मत्स्य विभागों जैसे हिमांचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, सिक्किम तथा अरूणांचल प्रदेश के निदेशक/ प्रतिनिधियों ने अपने– अपने राजय में ट्राउट उत्पादन के वर्तमान स्तर तथा इससे जुड़ी चुनौतियों के बारे में बताया। सभी हितधारकों के साथ विस्तृत विचार–विमर्श के पश्चात अगले पांच वर्षों के लिए हिमालय राज्यों में ट्राउट की उत्पादकता एवं उत्पादन को बढ़ाने हेतु आधारभूत नक्शा तैयार किया गया।

उपलब्ध साहित्य

डे, एस.सी. एवं एस. सरमाह, 2003 – औरनामेंटल फिश बायोडाइवर्सिटी bug नार्थ–ईस्टर्न रिजन, इन पार्टिसिपेटरी एप्रोच फार फिश बायोडाइवर्सिटी कन्जरवेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया' एड पी.सी. महंता एवं एल. के. त्यागी, एन.बी. एफ.जी.आर., लखनउ : 47–55

पालनी, सामी, के. 2003. एक्सटैंडिंग फाइनैन्सियल सपोर्ट फार इस्टाबिलिसिंग औरनामैंटल फिश इन्डस्ट्री इन नार्थ ईस्टर्न रिजन, इन पार्टिसिपेटरी एप्रोच फार फिश बायोडाइवर्सिटी कन्जरवेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया' एड पी.सी. महंता एवं एल. के. त्यागी, एन.बी.एफ.जी.आर., लखनउ : 233–46

प्रधान, डी.के. 2006, स्टेटस औफ सिक्किम फिशरीज एण्ड फयूचर स्ट्रेटिजीस. इन प्रोसिडिंग एण्ड रिकमन्डेशन्स औफ द स्टेट लिवल सेमिनार ओन 'प्रौसपैक्टस एण्ड पोटैन्शियलिटिज औफ कोल्डवाटर फिशरीज इन वैस्ट बंगाल'. एम. एस. एस.।

सेन, एन., 2000. औक्यूरैंस, डिरिट्रीव्यूसन एण्ड स्टेटस और डाइवर्सिफाइड फिश फोना औफ नार्थ ईस्ट इण्डिया इनः 'फिश बायोडावर्सिटी औफ नार्थ –ईस्ट इण्डिया' (एड, ए.जी. पूनैया एवं यू.के. सरकार) एन.बी.एफ.जी.आर.–एन.ए.टी.पी. पब्लि. 2:31–48.

सुगनन, वी.वी. 2003. फिशरीज रिसोर्सेज पोटैन्शियल आफ द नार्थ ईस्टर्न रिजन, इन इन पार्टिसिपेटरी एप्रोच फार फिश बायोडाइवर्सिटी कन्जरवेशन इन नार्थ ईस्ट इण्डिया' एड पी.सी. महंता एवं एल. के. त्यागी, एन.बी.एफ.जी.आर., लखनउ : 21–23.

सरकार, यू.के. एण्ड ए.जी. पूनैया. 2000. इवैल्यूएशन आफ नार्थ ईस्ट इण्डियन फिशेज फार दिअर पोटैन्शियल एस कल्टिवेबल, स्पोर्ट एण्ड औरनामैंटल फिशेज एलोंगविद दिअर कन्जरवेशन एण्ड एण्डिनिक स्टेटस. इन 'वर्कशाप आन नार्थ ईस्ट इण्डिया फिश जर्म प्लाज्म इन्वैन्ट्री एण्ड कन्जरवेशन' (एड, ए.जी. पूनैया एवं यू.के. सरकार) एन.बी.एफ.जी.आर लखनउ एवं एन.ई.सी. शिलांग : 1–17.

सिन्हा, एम. 2002, स्टेटस एण्ड फयूचर स्ट्रेटिजिस फार फिशरी डिवलपमैंट आफ नार्थ ईस्ट स्टेट, इन 'हाईलैण्ड फिशरीज एण्ड एक्वेटिक रिसोर्स मैनेजमैंट' (एड, के. के.वास एवं एच. एस. रैना) एन.आर.सी.सी. डब्लू.एफ., भीमताल : 42–56.

उत्तराखण्ड राज्य के कुमायूं क्षेत्र में मात्स्यिकी का परिदृश्य

आर.एस. पतियाल, अमित कुमार जोशी एवं बीजू सैम कमलम
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

राज्य में मत्स्य पालन के शुभारम्भ का श्रेय टेहरी के शासकों को जाता है जिन्होने वर्ष 1910 में कल्डियानी, उत्तरकाशी में ट्राउट फार्म का निर्माण किया था तथा इसी वर्ष ब्राउन ट्राउट के 10,000 जीवित अण्डे कश्मीर से मंगाकर निषेचित करने का प्रयास किया गया। वर्ष 1910 में ही समान मात्रा में जीवित ट्राउट अण्डे भवाली अण्डजननशाला में भी लाए गए थे। इस तरह राज्य के पर्वतीय क्षेत्र में मत्स्य पालन के प्रयास आरम्भ हुए 101 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं किन्तु फिर भी क्षेत्र में मत्स्य पालन का उचित विकास एवं प्रसार अभी तक वांछित स्तर तक नहीं हो पाया है। प्राकृतिक तालाबों का अभाव, तालाब निर्माण योग्य भूमि की कमी, निर्माण में अधिक लागत, अत्यधिक जल रिसाव, उचित बीज का अभाव, स्थान विशेष के अनुरूप पालन तकनीक सम्बन्धित वैज्ञानिक जानकारी का अभाव तथा कम उत्पादकता अल्प विकास के प्रमुख कारण हैं। यह व्यवसाय अभी शैशव अवस्था में ही है क्योंकि इस राज्य के पर्वतीय क्षेत्र के मछुवारों द्वारा जो भी थोड़ी बहुत मछलियां पकड़ी जाती हैं उनके लिए बाजार उपलब्ध नही हैं। छिछली नदियां, मछलियों के उत्पादन में कम वृद्धि दर, मछली पकड़ने के अपर्याप्त साधन तथा मछली पकड़ने वाले क्षेत्रों तक पहुंचने में असमर्थता आदि कुछ ऐसे अन्य कारण हैं जिसकी वजह से मत्स्य संग्रहण को अधिक प्रोत्साहन नही मिल पाया है। स्थानीय मछुवारे समीप के मछली बेचकर अपनी आजीविका चलाने को बाध्य हैं। यही कारण है कि पर्वतीय संसाधनों में मछली पकड़ने के आंकड़े उपलब्ध नही है तथा जो भी उपलब्ध जानकारी है वह बिखरी हुयी है तथा जो भी आंकड़े उपलब्ध हैं वह मछली बाजार तथा स्थानीय मत्स्य विभाग जो कि थोड़े से जलाशयों व झीलों का आंकड़ा रखते हैं की सूचनाओं पर आधारित हैं। किंतु छोटी नदियों में मछली पकड़ने की जानकारी प्रयोग के आधार पर या व्यक्तिगत मछुवारों द्वारा जो समय समय पर मछली पकड़ते हैं द्वारा दी गयी जानकारी पर आधारित है। विगत वर्षों में किऐ गए सर्वेक्षणों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि इन पर्वतीय जल स्रोतों में स्वदेशी स्नोट्राउट, महासीर तथा ट्राउट (ब्राउन एवं रेन्बो) दोनों की पैदावार में कमी आयी है। यह अत्यन्त चौंकाने वाला तथ्य है जो कि प्राकृतिक जल स्रोतों में पकड़ी जाने वाली मछली की संख्या में ही तेजी से कमी नही आयी है बल्कि उनके आकार में भी कमी पायी गयी है। शिकारमाही की दृष्टि से प्राप्त मछली की स्थिति भी वर्तमान में उत्साहजनक नहीं है। मछली रखने की टोकरियों की गणना के आधार पर हिमालय की नदियों में भूरी ट्राउट की पैदावार में पिछले तीन दशकों में काफी कमी आयी है। ऐसी ही स्थिति महासीर के विषय में भी दर्ज की गयी है जो कि व्यासवसायिक तौर पर तथा कांटे द्वारा पकड़ी जाती है। कई स्थानों पर जहां ये पर्याप्त मात्रा में पकड़ी जाती थी वहां पर इनकी पैदावार में कई गुना तक की कमी आंकी गयी है।

उत्तराखण्ड में मात्स्यिकी परिदृश्य : विभिन्न प्रकार के तालाब

उत्तराखण्ड के प्राकृतिक जल स्रोतों में मात्स्यिकी का वर्तमान परिदृश्य

उत्तराखण्ड के प्राकृतिक जल संसाधनों में उपलब्ध मत्स्य सम्पदा तथा आवास क्षेत्रों में प्रतिकूल परिवर्तनों अन्धाधुंध व अवैज्ञानिक दोहन के कारण निरन्तर ह्रास हो रहा हैं इस कारण यहां की बड़ी नदियों तथा झीलों में पायी जाने वाली बड़े आकार की सुनहरी माहसीर तथा अन्य प्रजातियां अब अपना स्वरूप खो रही हैं। 20 वीं शताब्दी के मध्य तक इनमें से 23 से 28 कि. ग्रा. तक भार की सुनहरी माहसीर पकड़े जाने के पुष्ट प्रमाण मिलते हैं। अब इन जल स्रोतों से 5–10 कि.ग्रा. तक आकार

उत्तराखण्ड के जल संसाधन

की सुनहरी माहसीर भी दुर्लभ होती जा रही है। क्षेत्र की प्रमुख प्रजातियों के साथ विध्वंसक दोहन के कारण छोटी–छोटी, कम महत्वपूर्ण प्रजातियां भी नष्ट होती जा रही हैं। क्षेत्र में मात्स्यिकी विनाश के प्रमुख कारण निम्न हैं :

आवासों में प्रतिकूल परिवर्तन

जल संसाधनों के पर्यावरण में प्रतिकूल परिवर्तनों के कई कारक हैं। पर्वतीय ढ़लानों में वनों का कटान, सड़क एवं भवन निर्माण गतिविधियां, नदियों से बालू एवं पत्थरों की निकासी, अवैज्ञानिक कृषि, बांधो का निर्माण आदि इसके प्रमुख कारण हैं। प्राकृतिक जल स्रोतों का सिंचाई अथवा पेयजल या उद्योगों हेतु अत्यधिक निकासी स्रोतों को दुष्प्रभावित करने का एक अन्य प्रमुख कारण है। एक सर्वेक्षण के अनुसार

हिमालयी क्षेत्र में एक कि.मी. सड़क का निर्माण करने पर 40–80 हजार घन मीटर भूमि का अपरदन होता है तथा कुमायूं मण्डल में भूमि कटाव की अनुमानित दर 1 मि.मी. प्रतिवर्ष आंकी गई है। इस प्रकार अपरदित मिटटी, कंकड़, पत्थर आदि जल स्रोतों की तलहटी में एकत्रित हो जाती है जिससे झील तथा जलाशयों में जल संग्रहण सीमा कम हो जाती है। नैनीताल झील में इस तरह विगत 5 दशकों में 6 मी. मिटटी, कंकड़ एकत्र हो चुके हैं। इसके कारण जल स्रोतों में उपलब्ध मछलियों के आवास, भोजन तथा प्रजनन स्थलों में विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

अत्यधिक मत्स्य दोहन

वर्तमान समय में आबादी के निकट बहने वाले जल स्रोतों तथा झीलों में उपलब्ध मत्स्य सम्पदा का अंधाधुंध दोहन हो रहा है। मछली पकड़ने के उपकरणों तथा विधियों में कोई प्रभावी नियन्त्रण न होने के कारण सभी आकार तथा प्रकार की मछलियों का विनाश हो रहा है। परम्परागत मछली पकड़ने की विधियों के साथ साथ अब विध्वंसक डाइनामाइट, ब्लीचिंग पाउडर, विषैले पादपों तथा रसायनों का भी मछली मारने में दुरूप्योग किया जा रहा है। इस प्रकार मछलियों की प्राकृतिक प्रजनन क्षमता से अधिक इनका दोहन किया जा रहा है जिससे इनके लुप्त होने की प्रबल आशंका है।

उत्तराखण्ड में मछली पकड़ने की विधियां

उत्तराखण्ड क्षेत्र में मछली पकड़ने एवं मछली खाने की गतिविधियां मुख्यतः नदियों, नालों एवं झीलों आदि के किनारे वास करने वाले लोगों तक ही सीमित

रही है। प्राचीन काल से जल स्रोतों के निकटस्थ निवासी परम्परागत विधियों से मछली पकड़ते थे। इन विधियों का समय के साथ साथ विकास भी होता रहा है। ब्रिटिश काल तक मछली पकड़ने वाले जालों एवं फंदों के आकार को नियन्त्रित करने के लिए समय समय पर जांच होती थी। तत्कालीन सिक्कों को आधार मानकर नियन्त्रण रखा जाता था जिससे छोटे आकार की मछलियां न पकड़ी जाये। मछली पकड़ने की प्रमुख विधियां जो विभिन्न स्थानों में प्रचलन मे हैं वे निम्नवत हैं :

- भारी वजन के घन द्वारा नालों के बीच के पत्थरों में मारकर छोटी मछलियों का शिकार
- भारी वर्षा के पश्चात जब नदियों व नालों का स्तर अधिकतम तथा जल कीचड़युक्त रहता है, मछलियां किनारे की ओर जाने की चेष्टा करती हैं तो उस समय डण्डों अथवा भालों से मछलियां मारी जाती हैं। यह कार्य अंधेरी रात्रि में नदी के किनारे मशाल जलाकर भी किया जाता है।
- रस्सी एवं कांटे द्वारा मछली पकड़ने का कार्य प्राचीन समय से किया जाता रहा है। लोहे के नुकीले कांटे में चारा फंसाकर महासीर, कालाबांस, बाम, भारतीय ट्राउट एवं बर्फानी ट्राउट (असेला) मछलियों का शिकार किया जाता है। वर्तमान समय में अधिक प्रभावकारी आधुनिक 'फिशिंग रौड' का प्रयोग भी किया जाता है।
- पर्वतीय क्षेत्रों में विभिन्न आकार–प्रकार के जालों का प्रयोग मछली पकड़ने के लिए किया जाता है। छोटी नदियों एवं नालों में फटियाला जाल एवं घघरिया जाल का प्रयोग होता है जबकि अपेक्षाकृत बड़ी नदियों के घघरिया एवं सुरमा जाल (गिलनेट) का प्रयोग किया जाता है। नदियों तथा नालों के जलागम क्षेत्रों में रहने वाले कुछ लोग जाल बुनने में प्रवीण हैं जो सूती तथा नायलोन के धागों से जाल बुनते हैं।

उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में कुछ विध्वंसक मछली पकड़ने की विधियां प्रचलन में हैं जिनके द्वारा मत्स्य सम्पदा का सम्पूर्ण विनाश हो रहा है। ये हैं –

डाइनामाइट का प्रयोग, विषैले रसायनों जैसे–ब्लीचिंग पाउडर, रामबांस, च्युरा वनस्पति आदि का प्रयोग, विद्युत करंट का प्रवाह आदि। मछली पकड़ने के इन दोषपूर्ण तरीकों से समस्त मछलियां, छोटी अंगुलिकाऐं, अण्डे आदि पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं जिसक कारण कुछ महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियां या तो पूर्णतः नष्ट हो चुकी है या फिर वे विलुप्त होने के कगार पर हैं।

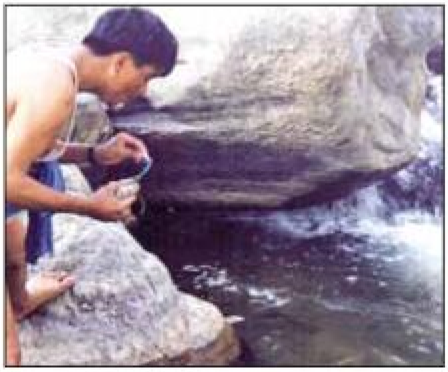

उत्तराखण्ड के जलाशयों में मत्स्य–प्रग्रहण की विधियां

उत्तराखण्ड में मात्स्यिकी विकास

कुमायूं क्षेत्र में मत्स्य पालन अभी प्रारम्भिक चरण में है। लेकिन विभागीय मत्स्य पालन गतिविधियों तथा प्रशासन से मिल रहे प्रोत्साहनों के कारण कुछ काश्तकार मत्स्य पालन प्रारम्भ कर चुके हैं तथा अन्य कुछ इस व्यवसाय में रूचि रखने लगे है। सम्पूर्ण उत्तराखण्ड क्षेत्र में मत्स्य पालन का विकास, प्रचार एवं प्रसार करने के लिए सूक्ष्म जलवायु आधारित मत्स्य पालन योजनाऐं लागू की जा सकती है। इसके अर्न्तगत स्थान विशेष की सूक्ष्म जलवायु के अनुरूप मत्स्य पालन किया जा सकता है। इस योजना के अर्न्तगत विभिन्न क्षेत्रों में मत्स्य पालन योग्य स्थानों को चिन्हित कर यह कार्य किया जा सकता है।

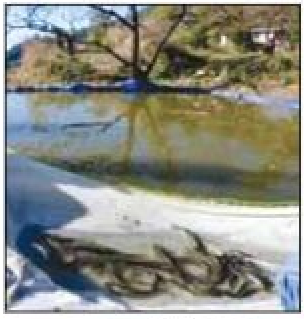

उत्तराखण्ड में ट्राउट पालन, कार्प पालन तथा रंगीन मछलीयों का पालन

निदेशालय के चम्पावत स्थित केन्द्र में मत्स्य कृषक दिवस का आयोजन

दिनांक 10 जुलाई, 2015 को चम्पावत जिले के कटेहर ग्राम में मत्स्य कृषक दिवस का आयोजन किया गया। इस अवसर वैज्ञानिकों एवं कृषकों के मध्य आपसी परिचर्चा हुयी और कृषकों को मत्स्य बीज वितरित किये गये। कार्यक्रम में स्थानीय प्रगतिशील मत्स्य पालक श्री लक्ष्मण सिंह ने बताया कि किस तरह से मत्स्य पालन के द्वारा उसने अपनी आय में वृद्धि की, साथ ही निदेशालय द्वारा मत्स्य पालको को दी जा रही तकनीकी जानकारियाँ आदि के बारे मे भी बताया। इस अवसर पर निदेशालय ने 09 चयनित मत्स्य पालको को इंगेरियन कामन कार्प के बच्चे प्रदान किये साथ ही उनको रेन्बो ट्राउट की 300 अंगुलिकाऐ व कामन कार्प की 600 परिष्कृत अंगुलिकाऐ भी प्रदान की गयी।

उत्तराखण्ड में ओक तसर संवर्धन, कीट पालकों की समस्याऐं एवं समाधान

एम. सी. जोशी
क्षेत्रीय तसर अनुसंधान केन्द्र भीमताल (नैनीताल) उत्तराखण्ड – 263136

उत्तराखण्ड में ओक तसर रेशम उत्पादन, ग्रामीण कुटीर उद्योग हैं। ओक तसर कीट (एन्थेरिया प्रायली जे) स्वभावतः कमजोर द्विपज होता है। यह कीट ओक की पत्तियों को खाकर कोसा निर्माण करता है। सामान्यतः यह वर्ष में दो जीवन चक्र पूरा करता है। यह कीट प्यूपा अवस्था में शीत निष्क्रिय रहता है प्यूपा जाड़े के मौसम प्रारम्भ होते ही शीतनिष्क्रिय हो जाता है। इसका पहला जीवनचक्र बसन्त ऋतु की फसल का कुछ भाग बहुपज हो जाता है। तापमान आद्रता व दीप्तिकाल बढ़ाकर इसके बढ़वार की गति को बढ़ाया जा सकता है।

उत्तराखण्ड में ओक वन सम्पदा की स्थिति

इस राज्य में ओक वन सम्पदा करीब 3.05 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र में फैला है। इस क्षेत्र में ओक की कई किस्में उपलब्ध हैं। जैसे क्वेर्कस ओलीगोट्राईकोफोरा (बांज) क्वेर्कस हिमालयाना (मोरु) क्वेर्कस सेमीकर्पिफोलिया (खरुस) क्वेर्कस ग्लाका व क्वेर्कस सिराटा (मनीपुरी बांज) आदि ओक की भिन्न – भिन्न किस्मों के पौधें अलग – अलग समय पर प्रस्फुटित होते हैं। यहां तक की कई बार एक ही जाति के पौधें भिन्न – भिन्न अवधियों में भिन्न – भिन्न उंचाईयों पर प्रस्फुटित होते हैं। इनमें से सबसे अधिक क्वेर्कस हिमालयाना (मोरु) क्वेर्कस सेमीकर्पिफोलिया (खरसू) क्वेर्कस ग्लाका व क्वेर्कस सिराटा (मनीपुरी बाज) आदि। ओक की भिन्न – भिन्न किस्मों के पौधे अलग – अलग समय पर प्रस्फुटित होते हैं। यहां तक की कई बार एक ही जाति के पौधे भिन्न – भिन्न अवधियों में भिन्न – भिन्न ऊंचाईयों पर प्रस्फुटित होते हैं। इनमें से सबसे अधिक क्वेर्कस ओलीगोटाईकोफोरा (बांज) समुद्र तल से 1800 फिट से 7000 फिट तक की ऊंचाई पर पाया जाता है। इस प्रजाति के पौधों पर पत्तियां जल्दी प्रस्फुटित होकर जल्दी ही परिपक्व हो जाते हैं। प्रयोगों के आधार पर कटाई – छंटाई से इसमें जल्दी ही नई पत्तियां निकल आती हैं तथा पुराने पत्तों को काटने के बाद करीब 15 से 20 दिनों में नये पत्ते आ जाते हैं। क्वेर्कस हिमालयाना (मोरु) समुद्र तल से 5000 फिट से 7000 फिट तक की उचांई पर पाया जाता है। इस प्रजाति की पत्तियां धीरे – धीरे परिपक्व होती हैं। क्वेर्कस सेमीकर्पिफोलिया (खरुस) उच्च उंचाई पर करीब – करीब स्नो जोन तक (समुद्र तल से 7000 फिट से 9000 फिट) पर उगता है। उत्तराखण्ड में इसके विशालकाय वृक्ष प्राकृतिक रुप से उगते हैं। इसके अतिरिक्त क्वेर्कस सिरेटा प्रजाति को समुद्र तल से 1000 फिट से उपर कहीं पर भी उगाया जा सकता है। इस पौधे की बढ़वार अन्य प्रजाति से काफी अधिक है। तथा इस पर बसन्त व हेमन्त ऋतु की कीटपालन फसलों को आसानी से लिया जा सकता है।

उत्तराखण्ड में ओक तसर कीटपालकों की स्थिति

उत्तराखण्ड की कुल जनसंख्या में से लगभग 70 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्र में रहते हैं। ये लोग मुख्य रुप से कृषि एवं कृषि सहयोगी कार्यों पर आश्रित है। ऊंचाई पर रहने वाले किसानों को वर्षा पर आधारित खेती करनी पड़ती है जिनमें से रवी फसल में गेंहु, जौं, चना व खरीफ में धान, मक्का व अन्य मोटे अनाजों की खेती करते हैं। अधिकतर किसान खाली समय में जंगल से लकड़ी व माइनर उत्पाद (जैसे झूला मौस घास इत्यादि) एकत्र कर बाजार में बेच कर अपनी आजीविका चलाते हैं। ऊंचाई पर स्थित गांवों से कीटपालकों को चयनित कर मई – जून माह में तसर कीटों की आपूर्ति की जाती है। ये किसान समूह बनाकर पालीहाउस में तसर कीटों का कीटपालन का कार्य सम्पादित करते हैं। इसमें प्रत्येक किसान को 500 ग्राम अण्डे (तसर बीज) की आपूर्ति की जाती है। इस आपूर्तित तसर बीज से 60 से 65 दिनों में 18000 के करीब कोसों का निर्माण आसानी से प्राप्त किया जाता है। जिसका बाजार भाव करीब 9000 रुपये होता है। इस तरह प्रति किसान को 60 से 65 दिनों में उसके परिश्रम के अनुसार 9000 रुपये तक की आमदनी बहुत कम लागत पर हो जाती है। वर्तमान में प्रदेश में 500 से 600 के करीब किसान इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इस तरह किसान की आय के साथ – साथ वन सम्पदा का बेहतर उपयोग हो रहा है।

ओक तसर कीटपालकों की समस्यायें

ओक तसर रेशम को बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमे कुछ निम्न प्रकार से हैं–

1. कीटपालकों को उनके गांव के आस – पास 60 से 65 दिनों तक ही रोजगार उपलब्ध हो पाता है।
2. विपरित भौगोलिक परिस्थितियों के कारण कीटपालकों को खाद्य पौंधों तक पहुचने में अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।
3. कीट पालकों के पास उचित कीटपालन सामग्री एवं गृहों का अभाव है।
4. कीटपालकों को अच्छा व रोगमुक्त बीज चकत्तों की आपूर्ति समय से न हो पाना भी मुख्य समस्या है।
5. रोग मुक्त बीज की आपूर्ति मांग के अनुरुप न होना।
6. बीमारियों से फसल का नुकसान।
7. कीटपालन क्षेत्रों का काफी लम्बी दूरी व सदूर होने के कारण कर्मचारियों व तकनीकी स्टाफ द्वारा समय – समय पर मार्गदर्शन नहीं हो पाने के कारण कीट पालकों द्वारा किसी न किसी स्तर पर गलती अवश्य हो जाती है।
8. ओक तसर के लिए बाजार का अभाव होना भी प्रमुख समस्या है। जिसके

कारण कीटपालक को उसके उत्पाद का उचित दाम नहीं मिल पाता है।

समाधान

1. कीटपालन के उपरान्त कोसों से धागाकरण व कताई – बुनाई का प्रशिक्षण देकर कार्य दिवसों की संख्या को आगे बढ़ाया जा सकता है।
2. ओक की विभिन्न प्रजातियों में से सबसे अधिक बढ़वार वाली प्रजाति क्वेर्कस सेराटा को गांव के आस – पास खाली पड़ी जमीनों में लगाकर तसर भोज्य पौंधों की सम्पदा को बढ़ाया जा सकता है।
3. भारत सरकार द्वारा प्रायोजित, ग्रामीण योजनाओं से कीटपालकों के लिए गृह निर्माण व कीटपालन सामग्री की व्यवस्था की जाती है।
4. तसर उद्योग से जुड़े विभिन्न स्वयं सेवी संस्थाओं व सरकार के विभागों द्वारा तसर के रोगमुक्त किटाण्डों की आपूर्ति समय से सुनिश्चित करनी चाहिए तथा उसी प्रकार अपनी कार्ययोजना बनानी चाहिए।
5. कीटपालकों को उनकी क्षमता अनुसार कीटाण्ड उपलब्ध कराना आवश्यक है। ताकि उनसे अधिक से अधिक कोसों का निर्माण हो जाय व उसी अनुपात में किसान की आमदनी है।
6. तसर कीटों पर लगने वाली बिमारियों (माइक्रो स्पोरिडियन, फंगस, बैक्टिरिया व वायरस) की पूर्ण जानकारी समय से उपलब्ध करायी जाय तथा इन बीमारियों से बचाव की जानकारी / दवाओं को कीटपालकों को उपलब्ध कराया जाय।
7. किसानों के मार्गदर्शन हेतु स्वस्थ, चरित्रवान ग्रामीण युवकों का चुनाव कर उन्हें प्रशिक्षित किया जाय इन युवकों (रेशम साथी) को निश्चित मानदेय पर कीटपालकों के मार्गदर्शन सहायता हेतु लगाया जाय।
8. कीटपालकों के लिए बाजार उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसके लिए सरकारी स्तर पर कच्चा माल बैंक की सीपना का प्रयास अच्छा रहेगा। ताकि कीटपालक को बिचौलियों के प्रभाव से बचाया जा सके।

यदि उपयुक्त प्रयास किये जाय तो उत्तराखण्ड में ओक तसर कीटपालकों की समस्याओं के समाधान के साथ – साथ ओक तसर रेशम उत्पादन में आशातीत बढोत्तरी होगी। ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नये आवास खुलेंगे तो दूसरी ओर वृक्षारोपण से जंगलों की अभिवृद्वि एवं अन्य पारिस्थितिकी को बनाये रखने में आशातीत सफलता मिलेगी।

निदेशालय द्वारा जनजाति महिलाओं के लिए मूल्यवर्धित एवं मत्स्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण कार्यक्रम

उत्तराखण्ड के पिथौरागढ़ जिले के अन्तर्गत धारचूला तहसील एक जनजाति बाहुल क्षेत्र है। निदेशालय ने जनजातीय उपयोजना के अन्तर्गत इस सुदूरवर्ती इलाके में मुख्य रुप से कमजोर वर्ग की महिलाओं के पोषण एंव जीविका हेतु प्रयास आरम्भ किये हैं। इस दिशा में निदेशालय ने सीफेट, कोचीन के साथ मिलकर दिनांक 3–4 मई 2014 को मत्स्य पालन के पश्चात मछलियों के रख–रखाव एवं उसके मूल्य सवंर्द्वन हेतु एक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया। जिसमें 45 जनजाति समुदाय की महिलाओं सहित 25 युवा एवं मत्स्य पालकों ने भाग लिया। वैज्ञानिकों ने स्वयं प्रयोगिक तौर पर मत्स्य पालन के पश्चात मछलियों के रखरखाव, आहार गोलिका निर्माण, फिश–फिंगर, फिश–बौल, फिश कटलेट, फिश करी, फिश आचार आदि का निर्माण करना सिखाया।

मत्स्य पालन

हिमालय क्षेत्र में रंगीन मछलियों की एक्वा-बागवानी-मनोरंजन एवं आर्थिकिकी के नए आयाम

आर.एस. पतियाल, सुरेश चन्द्रा एवं प्रेम कुमार
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

आज कल सजावटी मछलियां घरों, होटलों तथा कार्यालयों में अपनी मुग्धता, मनोरंजन तथा सौंदर्य मूल्य के कारण पाली जा रही है। प्राचीन काल से ही इन सजावटी मछलियों को पालना एक शौक माना जाता है। भारतवर्ष की जलवायु विविधा में धनी होने के कारण यहां सजावटी मछली के उत्पादन की अपार सम्भावनायें हैं परन्तु भारतवर्ष में विश्व की अंलकृत मछलियों का कुल 1 प्रतिशत व्यापार होता है जो नगण्य है। भारतवर्ष से सबसे बड़ी संख्या में अंलकारिक मछलियां उत्तरी, पूर्वी भाग (नोर्थ ईस्ट रिजन) से निर्यात होती है। जिस प्रकार छोटे छोटे बगीचो में रंग बिरंगे फूल लगाये जाते है उसी प्रकार छोटे छोटे तालाबों में रंग बिरंगी मछलिया पाली जा सकती है। छोटे व सस्ते एक्वा बागवानी सजावटी मछलियो के उत्पादन को नया दृष्टिकोण तथा आयाम दे सकते है इनका लाभ निम्न है:

एक्वा बागवानी 9′x3′=27 वर्गफिट से उत्पादन

सजावटी मछलियो के सफलतापूर्वक पालन हेतु कुछ जानकारियां

सजावटी मछलियों का पालन आज दुनिया में सबसे लोकप्रिय रूचियों में से एक है। विश्व स्तर पर एक्वेरियम में मछलियों को पालना तथा मछलियों में बढ़ती रूचि के कारण सजावटी मछलियों के व्यापार में लगातार वृद्धि हो रही है।

उत्तराखण्ड में सजावटी मछलियों के व्यवसाय से किसानों के अर्थिक स्थिति में सुधार की अपार सम्भावनाएं है। यह महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। इसकी सहायता से बेरोजगारी की समस्या को कम किया जा सकता है तथा राज्य एवं किसानों की आय बृद्धि का महत्वपूर्ण स्रोत हो सकता है। प्रजनन एवं संवर्द्धन इकाई। यदि इकाई बहते हुए जल के पास हो काफी अच्छा रहता है, क्योंकि इकाई के संवर्द्धन एवं प्रजनन हेतु अच्छा बहता जल

रंगीन मछलियां पालन की आर्थिकिकी			
तालाब का प्रकार	आकार	संचयन दर	निामर्ण की लागत
आंगन में निर्मित एक्वा बागवानी	9′x3′=27 वर्ग फिट	300	मजदूरी 300/-+ सिलपोलाइन, 700/+ बीज, 300/+ आहार=300/ =1600/-
प्रथम वर्ष	s.4350-1600=	रू. 2750/	प्रथम वर्ष
द्वितीय वर्ष	रू. 4350-600=	रू. 3750/-	द्वितीय वर्ष
दस माह में आय	रू.101/- वर्ग फिट (प्रथम वर्ष)	रू. 138/ वर्ग फिट (द्वितीय वर्ष)	दस माह में आय

प्राप्त हो जाता है। कृषि आधारित उत्पादों द्वारा धरेलू स्तर पर मछलियों का आहार निमार्ण किया जा सकता है। प्रजनन हेतु प्रजनक स्वस्थ्य एवं उच्च गुणवत्ता के होने चाहिऐ जिससे विक्रय हेतु अच्छें मत्स्य बीज पैदा किये जा सकें। प्रजनन एवं संचय इकाईयाँ ऐसी जगह पर स्थापित करनी चाहिऐं जहाँ यातयात के उचित साधन हों।

सजावटी मछली की खेती में मुख्य रूप से एक –दो प्रजाति के उत्पादन एवं विक्रय पर केन्द्रीत रहने से प्रबंधन सहजता के साथ –साथ अधिक लाभकारी होता है। बाजार में उपभोगता की मांग एवं आस पास में उपलब्ध लाभप्रद जानकारियों का समुचित अनुप्रयोग करना चाहिए।

उपलब्ध संसाधन एवं वातावरण के अनुकूल रंगीन मछलियों से आर्थिक लाभ प्राप्त करने हेतु डी.सी.एफ.आर. भीमताल द्वारा घर के आंगन तथा बागवानी में छोटी तालाब की क्यारियाँ बनाकर मछली का पालन एवं व्यवसाय हेतु मॉडल विकास किया है। इसका प्रबन्धन बहुत सरल और सस्ता है और इसकी विक्रय भी आसानी से स्थानीय बाजार में किया जा सकता है। इस विधि से रंगीन मछली पालन में प्रति वर्ग फिट रु. 101/वर्ग फिट जो कि दूसरे वर्ष रु. 138/वर्ग फिट तक प्राप्त किया जा सकता है।

शीतजल मात्स्यिकी में रेन्बो ट्राउट मत्स्य पालन

सुरेश.चन्द्रा, अमय कुमार गिरि, आर एस.. पतियाल, टंडेल रितेशकुमार,, रविन्द्र कुमार, हंसा दत्त
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय चम्पावत केन्द्र उत्तराखण्ड–262523

पहाड़ी क्षेत्रों में जहाँ पर साफ ठंडा एवं बहते पानी की बहुतायत मात्रा में उपलब्धता होती है। ऐसे क्षेत्रों में रेन्बो ट्राउट मछली जो कि एक विदेशी एवं मूल्यवान, उपयोगी मत्स्य प्रजाती है, को पालना श्रेयस्कर होता है। हमारे देश में रेन्बो ट्राउट सर्वप्रथम नीलगिरि एवं तमिलनाडु के कोडई पहाड़ी, केरल के त्रावणकोर क्षेत्र में, उत्तराखण्ड के कुमाऊँ क्षेत्र में, कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश में लाई गयी। वर्तमान में यह मुख्यतः भारत के राज्यों जैसे– जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, सिक्किम, तमिलनाडु, केरल एवं उत्तराखण्ड में पाली जाती है। यह मुख्यतः बहते पानी में 0°सेन्टिग्रेट से 20° सेन्टिग्रेट तापमान तक में जीवित रह सकती है। भारत में जम्मू कश्मीर एवं हिमाचल प्रदेश ट्राउट मछली के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं।

रेन्बो ट्राउट मछली

रेन्बो ट्राउट मछली का उत्पादन–

विश्व में उत्पादन 5,00,000 टन/वर्ष

भारत में उत्पादन 500टन/वर्ष

राज्यवार उत्पादन– लगभग

1.	जम्मू कश्मीर	250 टन/वर्ष
2.	हिमाचल प्रदेश	150 टन/वर्ष
3.	अन्य राज्य	100 टन/वर्ष

रेन्बो ट्राउट पालन के लिए निम्नलिखित विशेषतायें हैं।

1. ठंडे पानी में तीव्र बढ़वार में सक्षम है।
2. आसानी से घरेलू वातावरण में ढ़ल जाती है।
3. कृत्रिम आहार लेने में सक्षम है।
4. न्यूनतम तापमान सहने की क्षमता।
5. कृत्रिम प्रजनन में आसानी।
6. मूल्यवान एवं स्वादिष्ट।
7. पालने में सुविधाजनक।

भारत में रेन्बो ट्राउट मछली का पालन

भारत में रेन्बो ट्राउट मछली का पालन मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है।

1. पूर्ण रूपेण ट्राउट पालन– जिसमें अण्डोत्पादन से लेकर पूर्ण वयस्क मत्स्य पालन।
2. आंशिक रूप से ट्राउट पालन– जिसमें हैचरी से अंगुलिकायें लाकर वयस्क होने तक का पालन।

पूर्ण रूपेण ट्राउट पालन में मुख्यतः निम्न चरण होते हैं:

1. वयस्क नर मादा का अनुरक्षण
2. अण्डों का निषेचन एवं उष्मायन
3. आइड ओवा का उष्मायन
4. नवजात बच्चों का पालन
5. खाद्य–योग्य ट्राउट का उत्पादन करना
6. प्रजनन हेतु वयस्क नर मादा का उत्पादन करना

व्यवसायिक रूप से ट्राउट मत्स्य पालन हेतु रेसवे तालाब बनाने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान रखना चाहिए:

1 स्थाई रूप से पानी का स्रोत होना चाहिए।

2 पानी स्वच्छ एवं भारी धातुओं से मुक्त होना चाहिए।

3 पानी प्रचुर मात्रा में होना चाहिए।

4 पानी का तापमान पूरे वर्ष भर 20° सेन्टिग्रेट से कम होना चाहिए।

5 पानी में घुलनशील ऑक्सीजन 7 मिग्रा/लीटर से अधिक होना चाहिए।

6 पानी का पी. एच. 6.5 से 8.0 के नीचे होना चाहिए।

7 तालाब 1–3 है. प्रतिशत ढ़ालान पर हो ताकि पानी का बहाव सुचारू रूप से हो सके।

8 स्थान सड़क के आस–पास होने से बाजार की उपलब्धता आसान होगी।

तालाब रेसवे का निर्माण

टेबल साईज ट्राउट मत्स्य के उत्पादन हेतु लगभग 1 हजार मीटर^2 क्षेत्र में लगभग 10 तालाबों / रेसवे का निर्माण किया जा सकता है। जिसमें प्रत्येक तालाब में अलग से पानी की आपूर्ति की सुविधा होनी चाहिए तालाब की गहराई 1–1.5 मीटर होनी चाहिए।

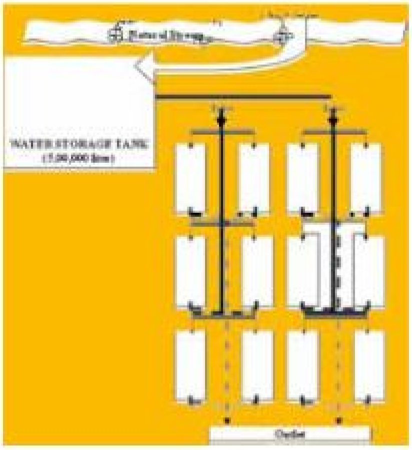

दस हजार अण्डों के इनक्यूबेशन से विकासशील फ्राई के लिए पानी की आपूर्ति के लिए 0.25–2.0 लीटर प्रति मिनट की दर से आवश्यकता होती है और एक हजार फ्राई के लिए 3.5–4.5 लीटर प्रति मिनट, एक हजार अंगुलिकाओं के लिए 10–14 लीटर प्रति मिनट एवं एक हजार टेबल साईज मछली के पालन के लिए 67–95 लीटर प्रति मिनट की दर से आवश्यकता होती है।

रेन्बो ट्राउट का आहार

ट्राउट मांसाहारी मछली है। अतः इसके भोजन में प्रोटीन की प्रचुर मात्रा का होना आवश्यक है।

क्र. सं.	मछली का वजन	प्रोटीन मात्रा	प्रतिशत शरीर का वजन	भोजन देने का समय (प्रतिदिन)
1.	<10gm	40%	5-10%	7-8 बार
2.	<50gm	35%	5-6%	3-4 बार
3.	>50gm	30%	2-3%	2-3 बार

शुरूवाती मत्स्य आहार

वयस्क के लिए आहार

फ्राई के लिए आहार

भोजन बनाने में मुख्य अवयव फिशमील, सोयाबीन, गेहूँ का आटा, स्टार्च, ईस्ट, फिश आयल, मिनरल मिक्सचर, विटामिन प्रमुख हैं। इसको एक निश्चित अनुपात में मिलाकर पैलेट बना लिया जाता है। यह अनुपात एवं पैलेट का आकार मछली के आयु के अनुसार भिन्न होता है।

अंगुलिकाओं के लिए आहार

फिशमील

सोयाबीन, गेहूँ का आटा

फिश आयल

मिनरल मिक्सचर

विटामिन

वृद्धि प्रदर्शन

इस प्रकार यदि हम सुचारू रूप से आहार दें एवं प्रचुर मात्रा में पानी उपलब्ध हो तो 200–300 ग्राम मछली की बढ़त 14–15 महिने में हो जाती है। यदि 5–10 ग्राम की अंगुलिकाओं को पालन शुरू करें तो यह बढ़त 10 महिने में भी हो सकती है।

रोगों का उपचार

कभी–कभी होने वाली बीमारियों के उपचार के लिए 2% नमक का घोल में रोगी मछली को 5 मिनट तक डालकर वाहय परजीवी बीमारी से बचाया जा सकता है। समय–समय पर गन्दे पानी को बदलने से बीमारी को दूर किया जा सकता है। अत्यधिक बीमारी की अवस्था में मछली को अलग तालाब में रखना चाहिए एवं उसको दूसरी स्वस्थ मछली के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए।

तालिकाः कंक्रीट तालाब में गहन ट्राउट उत्पादन हेतु सारणी

ट्राउट एवं पानी की मात्रा	फाई				अंगुलिका		वृद्धिशील मछली		खाद्य योग्य मछली			
	2 ग्राम/मछली		5 ग्राम/मछली		25 ग्राम/मछली		100 ग्राम/ मछली		250 ग्राम/ मछली		500 ग्राम/ मछली	
	से	तक	से	तक	से	तक	से	तक	से	तक	से	तक
मछली का वजन (–किग्रा/मी.^{3}	2.5	5	5	10	10	20	10	25	15	25	15	25
मछली की मात्रा (मछली/मी.^{3}	1 250	2 500	1 000	2 000	400	800	100	250	60	100	30	50
अधिकतम पानी की मात्रा 50 से. (ली./मी./मी.^{3}	3	6	4	7	4	8	3	8	3	6	2	3
अधिकतम पानी की मात्रा 20^0 से. (ली./मी./मी.^{3}	4	8	5	10	6	11	5	11	5	8	3	5

व्यावसायिक मत्स्य पालन में बहुपयोगी मत्स्य प्रजाति कामन कार्प (साइप्रिनस कार्पियों)

कृपाल दत्त जोशी
क्षेत्रीय केन्द्र, केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, इलाहाबाद–211 002

यह कार्प वर्ग की एक प्रमुख मत्स्य प्रजाति है जो व्यावसायिक मत्स्य पालन में बहुत उपयोगी रही है। कामन कार्प मूलतः पूर्वी यूरोप (काला सागर, कैस्पियन सागर एवं इनके जलागम क्षेत्रों) की प्रमुख मछली हैं। यह प्रारम्भिक समय से एशिया महाद्वीप के अरब सागर, चीन तथा अमूर बेसिन में पायी जाती है। यह मुख्यतः गर्म वातावरण की मछली है।

कामन कार्प मछली प्राचीन काल से मध्य तथा पश्चिमी यूरोप तक पहुँचायी जा चुकी थी तथा जर्मनी, पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, यूगोस्लाविया तथा फ्राँस में इसका प्रमुखता से पालन किया जाता रहा है। भारतवर्ष में वर्ष 1939 में सर्वप्रथम कामन कार्प की मिरर कार्प उप्र प्रजाति को श्रीलंका से नीलगिरी पर्वतीय भाग में पालन हेतु लाया गया। श्रीलंका में यह किस्म वर्ष 1914 में प्रशिया से लायी गयी थी। इसके पश्चात् वर्ष 1947 में इस उप प्रजाति को मध्य हिमालय स्थित भवाली हैचरी (जनपद नैनीताल) में प्रतिस्थापित किया गया। भवाली हैचरी से कामन कार्प बीज तैयार कर वर्ष 1952–53 में नैनीताल जनपद स्थित झीलों में डाला गया। भवाली हैचरी से कार्प बीज हिमांचल प्रदेश तथा वहां से जम्मू कश्मीर तक पहुँचा। 1957 में कश्मीर की झीलों भी कामन कार्प बीज स्थापित किया गया तत्पश्चात् इस प्रजाति का उत्तर पूर्वी पर्वतीय क्षेत्रों तक पहुँचाया गया। भारतवर्ष में अब यह प्रजाति पूरे पर्वतीय क्षेत्रों में पायी जाती है। अरुणाचल प्रदेश तथा मेघालय के पर्वतीय भागों में स्थित सीढ़ीदार खेतों में घास के साथ कामन कार्प पालन किया जाता है। कामन कार्प वर्ष 1800 से अमेरिका में पाली जा रही है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व ही यह पालन हेतु अमेरिका, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका तथा मेडागास्कर तक पहुँचायी गयी थी, वर्तमान समय में यह विश्व भर में फैल चुकी है। यह मछली विभिन्न जल संसाधनों, विस्तृत तापमान सहन क्षमता, सरल प्रजनन प्रक्रिया के कारण व्यापक रूप से फैलकर स्थापित हो चुकी है। यह मुख्यतः अर्न्तस्थलीय मृदु जल में कार्य रहती है। लेकिन नदमुखीय खारे जल में भी रह सकती है। चीन में कामन कार्प पालन प्राचीनकाल से प्रचलन में आ गया था। चीनी लेखक फान ली द्वारा ईसा से पांचवी शताब्दी पूर्व कामन कार्य पालन हेतु तालाब, मछलियों का चयन, प्रजननकाल लैंगिक औसत तथा वृद्धि दर आदि विधाओं तक कामन कार्प पालन कार्प और विकसित हुआ। इसके बाद तानवंश (700–1000) में कामन कार्प के साथ अन्य कार्य प्रजातियों के पालन की शुरुआत हुई जिनके ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प, विग हेड तथा टलैक कार्प सम्मिलित थी। वर्ष 1000–1200 के बीच चारों चीनी कार्प प्रजातियों के पालन सम्बन्धित विविध आयामों में काफी कार्य हुए हैं। वर्ष 1950 में कार्य प्रजातियों के कृत्रिम प्रजनन में सफलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् कामन कार्प सहित चारों कार्प प्रजातियों के पालन में सराहनीय सफलता प्राप्त हुई है।

कामन कार्प मछली ने मत्स्य पालन व्यवसाय को नया स्वरूप दिया है। यह एकल पालन तथा बहुप्रजाति पालन में भी उपयोग में आती है तथा प्रग्रहण मात्स्यिकी में भी उत्पादन वृद्धि में इस प्रजाति की बहुत बड़ी भूमिका रही है। यद्यपि इस पर स्वदेशी प्रजातियों के लिए बहुत बड़े संकट का आरोप भी लगा है। इस प्रकार इस प्रजाति में एक वन्य प्रजाति से पालन योग्य प्रजाति में परिवर्तन किये हुए बहुत समय व्यतीत हो चुका है।

आकार एवं रंग

कामन कार्प मछली अपने विशिष्ट आकार के कारण आसानी से पहचानी जाती है। इसका शरीर सुदृढ़ तथा आंशिक रूप से चपटा होता हैं। मछली का सिर औसत आकार का तथा त्रिकोण आकार लिये हुए होता है, जिसमें मुंह की तरफ का भाग कुछ गोलाकृति लिया होता है। मुंह छोटा होता है तथा होंठ मोटे तथा मांसल बाहर की ओर उभरे हुए होते हैं। इसके ऊपरी होंठ में चार मोटे मूंछ तन्तु (बारवला) होते हैं। इसका पृष्ठ भाग भूरे–हरे रंग का होता है तथा निचला भाग पीला– सफेद रहता है, लेकिन कामन कार्प मछली की मूल प्रजाति जो कैस्पियन सागर तथा काला सागर में पायी जाती थी उसका स्वरूप इसके वर्तमान में पायी जाने वाली उप प्रजातियों से काफी भिन्न था। मूल प्रजाति आकार में लम्बी तथा शरीर गोलाकार होता है तथा पूरे शरीर में शल्क रहते हैं। इनका सिर अपेक्षाकृत बड़ा होता है। इसके इस मूल वन्य स्वरूप को लम्बी आनुवंशिक चयन प्रणालियों के पश्चात् एक पालतू प्रजाति के रूप में विकसित किया गया है। वन्य प्रजाति में सामूहिक चयन (मास सलेक्सन) यूरोप में किये गये, इनके फलस्वरूप अब इसकी निम्नलिखित चार उप प्रजातियां/ किस्में तैयार की गयी है।

1. **सेल कामन कार्प (साइप्रिनस कार्पियो कम्युनिस)**
   इसके पूरे शरीर में लगभग समान आकार के शल्क होते हैं।
2. **मिरर कार्प (साइप्रिनस कार्पियो स्पीकुलेरिस)**

इसमें मछली के शरीर में शल्क तो होते हैं, लेकिन पृष्ठ भाग में एक पंक्ति बड़े आकार के शल्कों की होती है तथा इसके अतिरिक्त भी शरीर में कुछ बड़े आकार के शल्क होते हैं।

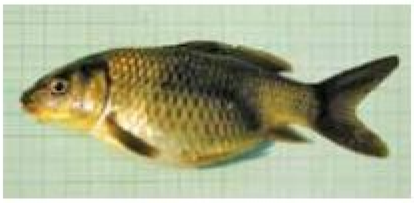

3. **एकल शल्क पंक्तियुक्त कार्प**

   इस किस्म में एक ही आकार के शल्कों की एक पंक्ति मछली के शरीर में होती है तथा साथ ही इसके पृष्ठ भाग के ऊपर एवं पक्षों की जड़ों में भी शल्क पाये जाते हैं

4. **लेदर कार्प (साइप्रिनस कार्पियो नूडस)**

   इस मछली में पंखों की जड़ के पास कुछ छितरे हुए शल्क होते हैं। इनमें स्केल कार्प तथा मिरर कार्प उप प्रजातियां पालन हेतु उपयुक्त मानी जाती है। इसकी शिकारमाही के रूप में भी बड़ी भूमिका है।

आवास स्थल

यह एक मृदुजलीय प्रजाति है, जो नदमुखीय आंशिक खारे जल में भी रह सकती है। यह गर्म वातावरण की प्रजाति है, लेकिन 3^0 से. से 32^0 से. तथा इससे भी उच्च तापमान पर रह सकती है। इस कारण गर्म मैदानी भागों के साथ ही पर्वतीय क्षेत्रों में भी रह सकती है तथा वृद्धि करती है। इसके प्रजनन तथा वृद्धि के लिए 20^0 से. अधिक तापमान उपयुक्त रहता है।

जलीय तापमान 13^0 से. से कम होने पर इसकी वृद्धि न्यूनतम हो जाती है तथा तापमान ज्यों–ज्यों और कम होता है उसी अनुपात में यह भोजन लेना कम कर देती है। तापमान 5^0 से. तक पहुँचने पर इनकी शारीरिक क्रियाएं न्यूनतम हो जाती है तथा तालाब के गहरे भाग में चली जाती है। चम्पावत मत्स्य फार्म में यह मछली 4.5^0–27.0^0 से. तक तापमान में सुगमता से रहती है लेकिन न्यूनतम तापमान 8^0 से कम होने पर यह आहार लेना छोड़ देती है।

यह नदियों सदाबहार नालों, झीलों, तालाबों तथा सभी प्रकार के अन्तर्स्थलीय जल संसाधनों में पायी जाती है। इन जल संसाधनों मे जलीय पादपों की उपलब्धता इसके प्रजनन तथा स्थापित होने की प्रक्रिया में सहायक होते है। यह मछली विभिन्न जलीय वातावरण में जीवित रहने तथा वृद्धि करने की क्षमता रखती है, जिस वजह से यह विश्व के सभी भागों में पायी जाती है। अनेक जल संसाधनों में स्वदेशी महत्वपूर्ण प्रजातियों के अस्तित्व के लिए बहुत बड़ा संकट बन रही है।

यह अपने भोजन की तलाश में जलीय पादपों की जड़े खोद देती है एवं नदियों अथवा झीलों व तालाबों की तलहटी में हलचल करती रहती है तथा मछली के अण्डों को भी खा जाती है, जिस कारण यह स्थानीय परिस्थितिकीय तंत्रा को असंतुलित करने का काम भी करती है।

प्राकृतिक एवं कृत्रिम आहार

यह सर्वभक्षी प्रकृति की मछली है तथा अपने आवास क्षेत्रों में उपलब्ध क्षेत्र में उपलब्ध छोटे जलीय पादपों के साथ–साथ जन्तुओं तथा मछली के अण्डों को भी खा जाती है। इसी सर्वभक्षी गुण के कारण यह भिन्न–भिन्न जलीय वातावरण में अपने आपको सुगमता से स्थापित कर लेती है। सामान्यतः इसके प्राकृतिक भोजन में शैवाल, रोटीफर, मछली के अण्डे तथा तल पर उपलबध अपघटित कार्बनिक पदार्थ सम्मिलित हैं।

यह मछली तल आहारी (बौटम फीडर) है तथा जल साधनों के तल पर मिट्टी जीन–जन्तु आदि पदार्थों को मुंह से चूसती है तथा वांछित भोज्य पदार्थों को ग्रहण कर अवांछित पदार्थों को बाहर थूक देती है।

परम्परागत भारतीय कार्प पालन प्रणाली में कामन कार्प पांच अन्य कार्प प्रजातियों (रोहू, कतला, मृगल, ग्रास कार्प एवं सिल्वर कार्प) के साथ पाली जाती है तथा इसमें इन्हें प्रतिपूरक आहार के रूप में चावल की भूसी तथा सरसों की खली (बराबर मात्रा) में दी जाती है। यह मछलीयां इस आहार को ग्रहण करती है। फैक्टरी उत्पादित टुकड़ा आहार (पेलेट फीड) को भी यह खाती है। जापान आदि देशों में इसको सघन एकल पालन प्रणालियों में इसको उच्च पोषकीय तत्वों युक्त परम्परागत आहार दिया जाता है जिसमें मांस पावडर, मत्स्य पावडर, जानवरों का रक्त, मदिरा आसवन फैक्टरी अवशिष्ट, जौ, मक्का, गेहूँ, जई सम्मिलित होते हैं। रेशम के कीड़े के मरे हुए प्यूपा भी आहार स्वरूप दिये जाते हैं।

वृद्धि दर

कामन कार्प की शारीरिक वृद्धि जलीय वातावरण के तापमान तथा उपयुक्त भोजन की उपलब्धता पर निर्भर करती है। 200 से. 320 से. तक के तापमान पर इसकी शारीरिक वृद्धि अधिकतम स्वर पर होती है, जबकि 130 से0 से कम तापमान पर वृद्धि रूक जाती है। तापमान 100 से. से नीचे हो जाने पर इसका वजन धीरे–धीरे कम होने लगता है। उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार कामन कार्प की अधिकतम शारीरिक लम्बाई 1.2 मी0 तथा अधिकतम वजन 37.3 किग्रा अंकित है तथा इसकी अधिकतम आयु 20 वर्ष तक मानी गयी है। मैदानी भागों में मिश्रित मत्स्य पालन के अन्तर्गत कामन कार्प की औसत वृद्धि 1.0 किग्रा/वर्ष होती है।

लैंगिक परिपक्वता एवं प्रजनन काल

कामन कार्प अपने जलीय वातावरण के तापमान के अनुसार लैंगिक परिपक्वता ग्रहण करती है। पर्वतीय शीत जल में 2 वर्ष की आयु पर इनमें लैंगिक परिपक्वता दृष्टिगोचर होने लगती है जबकि गर्म घाटियों में एक वर्ष में ही परिपक्व हो जाते हैं। इस प्रजाति की परिपक्व मादा अपने प्रति किग्रा भार के 100000 से 300000 अण्डे तक देने की क्षमता रखती है। कामन कार्प मछली के अण्डों का व्यास 1.24 से

1.42 मिमी. तक होता है तथा ये चिपचिपे होते हैं एवं जलीय पादपों अथवा अन्य उपलब्ध ठोस पदार्थों से चिपक जाते हैं।

यूरोपीय देशों में इसका प्रजनन बसन्त तथा ग्रीष्म ऋतु में होता है। हमारे देश के पर्वतीय भागों में यह 19–23° से. तापमान पर अप्रैल–मई के बीच प्रजनन करती है, जबकि मैदानी भागों में फरवरी तथा पुनः अक्टूबर–नवम्बर में प्रजनन करती है।

मत्स्य पालन हेतु उपयोगिता

व्यापक तापमान, आवास तथा आहार क्षमता के कारण कामन कार्प मछली विश्व भर में फैल चुकी है तथा इसका मत्स्य पालन में अधिकतम उपयोग किया जा रहा है। यह एक प्रजाति पालन, बहुप्रजाति पालन, सघन मत्स्य पालन, धान सह कामन कार्प पालन, संग्रहण आदि विभिन्न प्रणालियों में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुकी है। आखेट योग्य मछली के रुप में भी कामन कार्प की उपयोगिता जानी जाती है। कामन कार्प निम्नलिखित विशिष्ट पालन योग्य गुणों के कारण व्यापक स्तर पर उपयोग में लायी जा रही है :

1. विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में सुगमता से रह सकती है
2. उचित तापमान पर वृद्धि दर अच्छी है
3. सुगमता से प्रजनन करती है
4. सर्वभक्षी प्रकृति के कारण व्यापक आहार ग्रहण करती है
5. उपभोक्ताओं को पसन्द आती है
6. तालाबों में अनेक तरह से पाली जा सकती है
7. पर्याप्त रोग निरोधक क्षमता युक्त है

विभिन्न जलीय परिस्थितियों में सुगमता से स्थापित होने की क्षमता के कारण अनेक पारिस्थितिक तंत्रों को इनकी उपस्थिति से असंतुलित होने का खतरा रहता है।

उत्तर–पूर्वी भारत की पर्वतीय नदियों की देशी मत्स्य प्रजाति– लेबियो पगुंसिया का तालाबों में प्रजनन

लेबियों पंगुसिया उत्तरी–पूर्वी भारत की महत्वपूर्ण प्रजाति है, जिसका विस्तार इस क्षेत्र की पर्वतीय नदियों में बहुत अधिक है, किन्तु मानवीय गतिविधियों और विभिन्न प्राकृतिक कारकों से इस की संख्या में कमी आ गयी है तथा आई0 यू0 सी0 एन0 (IUCN) की लाल सूची में इस प्रजाति को संकटग्रस्त घोषित किया गया है। इस प्रजाति को संरक्षित करने के लिए यह निदेशालय, अबाका, नामेरी, असम की हैचरी मे वर्ष 2012 से लगातार तीन वर्षो से तालाबों में इस प्रजाति का पालन–पोषण कर रहा है। असम की जिया–भारेली नदी से मत्स्य जीरा को संग्रहित कर 21X12X15 मी0 आकार वाले सीमेंट के तालाबों में पाला गया है। जुलाई 2015 में नर तथा मादा दोनों में तीन वर्शो में ही लिंग परिपक्वता देखी गयी और उनका उत्प्रेरित प्रजनन सफलतापूर्वक किया गया। कुल 3.75–4.0 लाख अण्डों से 1.9 लाख जीरा उत्पादित किया गया है।

ऊसर या बंजर भूमि पर मत्स्य पालन सम्भव

आर0 एस0 पतियाल एवं ब्रह्मा नन्द शुक्ला
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

हमारे भारत देश में लगभग 72 लाख हेक्टेयर भूमि ऊसर है। रासायनिक संरचना के अनुसार ऊसर भूमि तीन प्रकार की होती है। **क्षारीय भूमि** अधिकांशता शुष्क और अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में पायी जाती है। इस प्रकार की अधिकांश मृदा उत्तर प्रदेश व उत्तराखण्ड (14.95 लाख हे0), पंजाब (06.88 लाख हे0) एवं हरियाणा (05.26 लाख हे0) में पायी जाती है। **लवणीय भूमि** अधिकतर समुद्र तटीय क्षेत्रों में मिलती है, इसमें से अधिकतम क्षेत्र पश्चिम बंगाल (05.50 लाख हे0) में है। **लवणयुक्त–क्षारीय भूमि** पूरे देश में फैली हुई है। ऊसर समस्या से ग्रस्त मृदाओं को अलग–अलग स्थानों में अलग–अलग नामों से जैसे उ0प्र0 में रेह, ऊसर या रेहाला तथा पंजाब, हरियाणा में कल्लर जैसे नामों से जाना जाता है।

निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या की मूलभूत आवश्कताओं की पूर्ति के लिए खाद्यान्न, फल, मछली आदि के अधिक से अधिक उत्पादन की आवश्यकता है। आने वाले वर्षों में इसके लिए प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ाना, व्यर्थ बंजर तथा ऊसर पड़ी भूमि को कृषि, मत्स्य पालन, बागवानी के अधीन लाना मुख्य उपाय हो सकते हैं। यहाँ पर ऊसर भूमि से सम्बन्धित आवश्यक ज्ञान तथा इसको मत्स्य पालन योग्य बनाने की विधि दी गयी है–

ऊसर भूमि का प्रकार

ऊसर भूमि की संरचना एवं उपस्थित लवण पदार्थों के रासायनिक गुणों के आधार पर मृदा को तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

1. **लवणीय**– इस प्रकार की भूमि की ऊपरी सतह पर घुलनशील लवणों की श्वेत परत एकत्रित हो जाती है, इसी लिए इसे सफेद ऊसर भी कहते हैं। इसमें कैल्शियम, मैग्नेशियम के क्लोराइड एवं सल्फेट लवणों की अधिकता होती है। इन लवणों के उदासीन होने के कारण इस प्रकार की मृदा का पी–एच मान 8.3 या कम तथा सोडियम 16ः से कम होता है।
2. **क्षारीय**– मृदा में उपस्थित क्षारीय लवण एवं जैविक पदार्थ विलयशील होने के कारण बाद में ऊपरी सतह पर काले भूरे रंग की परत के रूप में जमा हो जाती है, इसलिए इसे काली ऊसर भूमि भी कहते हैं। इसमें सोडियम कैल्शियम के कार्बोनेट्स अधिक मात्रा में मिलते हैं। इसका पी–एच मान 9–10.5 या अधिक एवं सोडियम 16% से अधिक होता है।
3. **लवणीय क्षारीय**– इसमें दोनो प्रकार के ऊसर मृदाओं के मिले जुले गुण पाये जाते हैं। इस प्रकार के ऊसर में सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम के कार्बोनेट्स व सल्फेट्स पाये जाते हैं। इसका पी–एच मान 8.5–10.6 या अधिक व विनिमय शील सोडियम 16ः से अधिक होता है।

ऊसर मृदा बनने के कारण

1. **शुष्क जलवायु**– ऐसे क्षेत्रों में जहां वर्षा कम होती है तथा तापमान अधिक होता है विलयशील लवण मृदा के ऊपरी सतह पर एकत्रित होते रहते हैं।
2. **लवणीय जल से सिचाई**– यदि लवण युक्त क्षारीण जल से अधिक समय तक सिचाई की जाय तो बाद में सींचित भूमि ऊसर हो जाती है।
3. **जल निकासी की कमी**– जल निकास की कमी होने के कारण आसपास का जल निचले स्थानों पर एकत्रित हो जाता है तथा सींचने के बाद अपने साथ लाये विलयशील लवणों को वहीं छोड़ जाता है इस प्रक्रम के चलते लवणों की अधिता हो जाती है।
4. **उच्च भूमि–जल स्तर**– भूमि के अन्दर जल स्तर ऊँचा तथा भूमि के निकट होने के कारण समुचित जल निकासी नही हो पाती है एवं घुलनशील लवणीय भूमि की ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाते हैं। इस प्रकार के क्षेत्र नदी नहर या जलाशय के समीप पाये जाते हैं।
5. **अन्दर में कड़ी परत का होना**– भूमि के अन्दर कड़ी परत होने के कारण जल निचली तहों तक नही पहुंच पाता है, इस कारण घुलनशील लवण मृदा की ऊपरी सतह पर एकत्र हो जाते हैं।

ऊसर भूमि में मत्स्य पालन की विधि

ऊसर मृदा का पी.एच. मान एवं लवण की मात्रा अधिक होने के कारण इस प्रकार की भूमि मत्स्य पालन के लिए उपयुक्त नही होती है। साथ ही साथ इस प्रकार की मृदा में जल रिसाव की भी अधिक समस्या होती है।

उपरोक्त भूमि में निम्नलिखित विधि से सुधार करके सफलता पूर्वक मत्स्य पालन किया जा सकता है–

1. भूमि की ऊपरी परत की लगभग 10–10 सेमी मृदा जिसमें रेह तथा लवण की मात्रा अधिक होती है को हटा देना चाहिए और 1.5–1. 80 मीटर की खुदाई के उपरान्त कड़े कंकड़ की तह मिलने पर उसे तोड़ना नही चाहिए। इस कंकड़ की तह को यदि तोड़ दिया गया तो जल रिसाव को नियंत्रित करना कठिना हो जायेगा। अतः इसे तोड़ना नही चाहिए।
2. कंकड़ की तह के ऊपर लगभग 35–40 सेमी मोटी मिट्टी की परत छोड़ देनी चाहिए तथा मिट्टी को अच्छी तरह से दबा देना चाहिए।

3. लगभग 30 सेमी जल भरकर कई बार पलेवा कर देना चाहिए। इसके बाद 15–20 हजार किग्रा0/हे0 की दर से गोबर को फैला करके 1 मी0 जल भरकर 15–20 दिनो के लिए छोड़ देना चाहिए।
4. ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए पायराईट का प्रयोग किया जाता है, परन्तु मत्स्य पालन वाले तालाबों में एसका प्रयोग करने से कोई विशेष लाभ नही मिलता है क्योंकि पायराईट प्रयोग के पश्चात अवक्षेपित लवणों को तालाब से बाहर निकालने में कठिनाई होती है। अतः तालाब में पायराईट का प्रयोग न करने की सलाह दी जाती है।
5. गोबर डालने और 1 से 1.5 मीटर जल भरने के दो–तीन सप्ताह के बाद तालाब में मछलियों के प्राकृतिक सूक्ष्म भोज्य पदार्थ पैदा हो जाते हैं। जिनसे जल का रंग हल्का नीला या हरा हो जाता है। अब इस तालाब में 5000–8000 अंगुलिकाएं प्रति हेक्टेयर की दर से समुचित कर दी जाती हैं। तालाब में जल स्तर 1 से 1.5 मीटर बनाये रखना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर कुएँ, नहर, जलाशय आदि से जल लेकर तालाब में भर देना चाहिए।

अम्लीय व क्षारीण भूमि का सुधार

अम्लीय मृदा का पी–एच मान 7 से कम होता है (6.5–3.5 तक) इस प्रकार की मिट्टी में कैल्शियम, मैग्नीशियम की मात्रा कम और नाइट्रोजन व कार्बोनेट की सूक्ष्म मात्रा होती है। इस कारण अम्लीय भूमि अनुपयोगी होती है। इस प्रकार की भूमि मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, असम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल, बिहार व उड़ीसा में बहुत मात्रा में मिलती है। जम्मू कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु व महाराष्ट्र के कुछ भागों में भी इस प्रकार की मृदा मिलती है। अम्लीय मृदा में मछली के शरीर में उपापचय की दर कम हो जाती है, भूख कम लगती है जिससे बढ़ोत्तरी की दर कम हो जाती है। अम्लीय भूमि को सुधारने के लिए परीक्षण के उपरान्त पी–एच मान के अनुरूप चूने की मात्रा सारणी नं0– 1 अनुरूप प्रयोग किया जाना चाहिए।

चूने की कुल मात्रा को तीन से चार भागों में बांट कर 2–3 दिन के अन्तराल में प्रयोग करना चाहिए। चूने के अन्तिम प्रयोग के लगभग 20 दिन के उपरान्त ही मछली के बच्चों को तालाब में डालना चाहिए। विभिन्न पी–एच मान व मछलियों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव निम्नलिखित हैं–

उपरोक्त विधि से कृषि, वागवानी आदि कार्यों के लिए अनुपयुक्त/बेकार पड़ी ऊसर भूमि को मत्स्य पालन हेतु उपयोग करके हमारे किसान भाई भोजन समस्या के समाधान के साथ–साथ अतिरिक्त आय भी अर्जित कर सकते हैं।

सारणी नं0–1 पी.एच. मान परीक्षण के उपरान्त प्रयोग की जाने वाली चूने की मात्रा*

पी.एच. मान	मृदा प्रकार	बुझे चूने की मात्रा
4.0–4.5	अति अम्लीय	1000 कि.ग्रा./हेक्टेयर
4.5–5.5	मध्यम अम्लीय	700 कि.ग्रा./हेक्टेयर
5.5–6.5	कम अम्लीय	500 कि.ग्रा./हेक्टेयर
6.5–7.5	लगभग उदासीन	200 कि.ग्रा./हेक्टेयर
7.5–8.5	कम क्षारीय	100 कि.ग्रा./हेक्टेयर

* चूने का प्रयोग खाद देने के एक सप्ताह पहले कर लेना चाहिए।

1	पी.एच मान 4.0 से कम	मछलियों के लिए विषैला
2	पी.एच मान 4.0	अम्लीय मृत्यु अंक
3	पी.एच मान 4.0–4.5	प्रजनन प्रक्रिया अवरूद्ध
4	पी.एच मान 4.0–6.0	न्यून मीन उत्पादन
5	पी.एच मान 6.5–9.5	मत्स्य पालन हेतु सर्वोत्तम
6	पी.एच मान 9.5–11.0	न्यून मीन उत्पादन
7	पी.एच मान 11.0 से अधिक	मछलियों के लिए विषैला

फ्रांस का एक शीतजलीय मात्स्यिकी फार्म

बोनिका पन्त
मत्स्य विज्ञान महाविद्यालय, पन्तनगर

फ्रांस भारत को 8000 किमी दूर पश्चिमी यूरोप का सबसे बडा राष्ट्र एवं विश्व की चौथी सबसे बडी अर्थव्यवस्था है जहाँ कि जनसंख्या भारत की तुलना में अत्यन्त कम है। फ्रांस में जनवरी से अप्रैल 2013 में तीन माह के शीतजल मात्स्यिकी के प्रशिक्षण से भारत में एक नयी रोशनी के रूप में विकास की एक नयी लहर लाने को प्रयत्नशील मैं, एक छोटी श्रंखलाबद्ध लेख के माध्यम से अपना वर्णन कर रही हूं :

एक छात्रा के रूप में दक्षिण के लौजैरश प्रान्त में पर्वतीय श्रंखला के बीच मे ला कानागश नाम का एक गॉव है जिसका क्षेत्रफल 104 वर्ग किमी है, जहॉ लुईस पाश्चर मत्स्य पालन संस्थान स्थित है। इस संस्थान में स्थित सेंट फेजाल मत्स्य फार्म में रेनबो ट्राउट एवं ब्राऊन ट्राऊट एवं कुछ कोई कार्प का उत्पादन होता है। ऐसे समन्वित अवसर का लाभ मिलने से व शीतजल मात्स्यिकी के नए–नए एवं वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग से यह दृश्य साफ है कि भारत भी इस दिशा में नये आयाम स्थापित कर सकता है। रेन्बो ट्राअट एवं ब्राऊन ट्राऊट के वर्ष भर चलने वाले प्रजनन कार्य से फार्म सतत रहता है एवं नवीनतम कार्य प्रणाली के प्रयोग करने के लिए केवल 3 पुरूष या कर्मी नियुक्त हैं–फिलीप, बनुआ एवं अमिक। ये तीन वर्ष भर फार्म का संचालन करते हैं। फार्म के संचालन में इन्हें महाविद्यालय के छात्र–छात्राओं की मदद मिलती है। ये छात्र छात्रायें सप्ताहान्त में महाविद्यालयी फार्म का सारा कार्यभार भी संभालते हैं। ये अध्ययनशील युवा न केवल प्रयोगात्मक रूप में सभी कार्य सीखते हैं, वरन आने वाली कठिनाइयों का भी दृढता से सामना करना सीख जाते हैं, जो इन्हें परिश्रमशील बनाता है।

सेंट फेजाल फार्म के बारे में रोचक तथ्यों की श्रृंखला में सबसे रोचक तथ्य यह है कि यहॉ पानी का स्त्रोत फेजाल नाम का एक प्राकृतिक झरना है जिसका तापमान सदैव 11°C ही रहता है, जो कि ट्राउट मछली के पालन हेतु अत्यन्त सुविधजनक है। वर्ष भर किसी भी मौसम में 11°C के तापमान के इस झरने का दो बराबर भागों में बॉटकर इसके एक हिस्से का प्रयोग फार्म के कार्य हेतु किया जाता है, वहीं अगले हिस्से का उलवा नदी से सम्मिलित होने के लिए छोडा जाता है। भारत में उत्तर से पूरब तक हिमालय पर्वतों की श्रंखलाओं से सुशोभित है, जिनमें कई नदियॉ, नहरें, जल क्षेत्र मौजूद हैं। इन जल श्रेत्रों एवं फेजाल झरने जैसी भौगोलिक परिस्थियों का उपयुक्त लाभ लेकर शीतजलीय मात्स्यिकी का विविधीकरण किया जा सकता है।

प्रतिदिन के कार्यो में सर्वप्रथम फार्म के सभी जल–गेटों, मार्गों, रेसवे के अन्दर व बाहर जाने वाले जल के मार्गो की सफाई की जाती है। हफ्ते में एक बार सभी नालों, हैचरी पम्प वगैरह की सफाई की जाती है। एक छनन संयन्त्र जल की अशुद्धियों की सफाई एवं जल का विसंक्रमण करता है ताकि पर्यावरण की शुद्धता का ख्याल रखें। भारत के फार्मो में जल की गुणवत्ता का ध्यान रखा जाना चहिए जब वह बाहर निकलकर किसी जल स्त्रोत में मिले।

फार्म की सफाई के पश्चात समूचे फार्म में मृत्यु दर जानने हेतु, वृत्ताकार टैंक, रेसवे में अलग–अलग जाल की सहायता से मृत मछलियों को एकत्र कर, उनकी संख्या गिनकर प्रतिदिन का संक्षिप्त विवरण रखा जाता है। भारत के फार्मों में एक कमी यह है कि मृत मछलियों के निराकरण कर दिया जाता है, परन्तु फांस में इन मछलियों को एक विशेश रैफ्रिजरेटर में रखा जाता है एवं बाद में उसका प्रयोगशाला में अध्ययन कराकर छात्र–छात्रओं की ज्ञान में वृद्धि की जाती है।

अगला कार्य कृत्रिम भोजन देकर फार्म में व हैचरी में मछलियों को आहारपूर्ति है। सबसे पहले तरूण मछलियों, अंगुलिकाओं को भोजन दिया जाता है, जो कि सामान्यता 4–8 बार होता है। ब्राउन ट्राउट के भोजन की शैली का ख्याल रखा जाता है। जिसके बाद बड़ी या एक वर्षीय मछलियों को 2 बार व प्रजनक को प्रकाशकाल में 1 बार भोजन दिया जाता है।

ट्राउट जो कि एक तीव्र गति से वृद्वि करने वाली मछली है कृत्रिम भोजन को आसानी से खा लेती है। भारत के एक सामान्य मत्स्य पालक एवं फ्रांस के मत्स्य पालकों का एक सामान्य अन्तर यह है कि आहार की भौतिक गुणवत्ता एवं पोशक गुणवत्ता की आवश्यकताओं हेतु 1, 2, 3.................. ....12 तक परिस्कृत मत्स्य आहार का प्रयोग किया जाता है। जबकि अंगुलिकाओं एवं बडी मछलियों, प्रजनकों के दिये जाने वाले भोजन में भारत में विविधता प्रदर्शित नही होती है।

मछलियों के वजन एवं आकार, उम्र के हिसाब से रखने के लिए व स्वजाति भक्षण से बचाने के लिए मशीन का प्रयोग किया जाता है, जो कि वक्त की बचत के साथ–साथ मछलियों के तनाव कारकों के प्रभाव को भी कम करता है। मत्स्य जनसंख्या को अनुरक्षित कर तलाब प्रबन्धन, परिस्थितिकीय तन्त्र का प्रबन्धन करना शीतजलीय मछलियों के पालन में सहायक सिद्ध हो सकता है।

मछलियों का विभिन्न मत्स्य पालकों में आदान–प्रदान एवं मत्स्य बीज/प्रजनकों का आधुनिक एवं वैज्ञानिक विधियों द्वारा एक फार्म तक उचित अवस्था में पहचाना एक महत्वपूर्ण कड़ी है, जिससे शीतजल मात्स्यिकी व्यवसाय में गुणात्मक वृद्धि होती है, इससे पहाड़ी क्षेत्रों में कुपोशण की समस्या दूर होती है तथा स्वरोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं। सेंट फेजाल फार्म में जिन मछलियों को दूसरे फार्म या ग्राहक को दिया जाना है, उसका भोजन 24 घंटे पहले बंद कर परिवहन हेतु तैयार किया जाता है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में कंडिशनिंग कहा जाता है।

शीतजल मात्स्यिकी यदि नदी में की जाए तो उस जल प्रक्षेत्र का साफ एवं असंक्रमित होना आवश्यक है, क्योंकि मछली के रोग, स्वास्थ्य, तनाव का प्रबन्धन अति आवश्यक है। फांस के फार्म में यदि मछलियों में कोई असमानता आने पर उचित रोकथाम की जाती है जिसमें रेनबो, बाऊन, टाइगर ट्राउन को खाद्य में मिश्रत दवा मिलाकर करते है। भारत में भी स्वास्थ्य प्रबंधन उचित है जो कि शुश्क गुटिका आहार के उपयुक्त हस्तान्तण, भण्डारणन से किया जाता है।

दिन के अन्त में फार्म के समस्त गेटो, झरने या स्त्रोत के गेट की सफाई की जाती है। गेट पर एक यन्त्र लगा है जो पानी का स्तर घटने, बढने की दशा में अलार्म बजाता है, जो कि फर्म के तीनों कर्मचारियों के पास रखे फोन मे बजता है एवं आकर इसे उचित स्तर गे बदलते है। इससे यह स्पश्ट होता है कि अप्राकृतिक जलीय–तन्त्र में मत्स्य धन के संवर्धन करने हेतु शीतजलीय मछलियों के लिए सफाई की व जल की उचित मात्रा एक मूल अंग है। इसके संतुलन से अनुकूल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

एक गौर करने योग्य बात यह है कि विविधीकरण हेतु एक मुख्य पड़ाव है फांस की तरह साफ–सफाईकरण, उचित पहनावा, विसंक्रमण तकनीक आदि का प्रयोग। जबकि भारत में अनुभवी कृषक इस ओर ध्यान नहीं देते हैं। शीतजलीय मात्स्यिकी की दिशा में एक्वापोनिक्स भी एक प्रमुख सहायक सिद्धान्त साबित हो सकता है। फार्म में रेनबो ट्राउट के साथ सलाद भी उगाया जा रहा है।

किसी भी प्रजाति का प्रजनन उसका भविश्य निर्धारित करता है। गुणवत्ता युक्त बीज किसी भी शीतजलीय प्रजाति के पालन के लिए वरदान साबित हो सकते हैं। फ्रांस के इस छोटे फार्म में अधिकाधिक बीज उत्पादन सम्भव हो पाया है–वैज्ञानिक विधियों के संतुलित व अनुकूल प्रयोग से। फ्रांस के सभी फार्मों में ट्राउट के प्रजनन का कार्य मार्च–अप्रैल व अक्टूबर–नवम्बर में लिया जाता है, जिसमें परिपक्व मछलियों के चुनाव का कार्य प्रमुख है। प्रजनन के लिए भारत के सामान्य वस्त्रों से हटकर हर मत्स्यपालक विशेष वस्त्र एवं दस्ताने धारण करता है।

फांस के इस फार्म में मुख्यतः निओ (Neo) नर का प्रयोग करते हैं जिसे शुक्राणु हेतु मार दिया जाता है। प्रथम हमेशा शुक्राणु निकालकर ठंडी, अंधेरी जगह पर रख देते है। मादा मछलियों को संचेतक (Anasthesia) MS 222 के 8 मिली/लीटर का प्रयोग कर बेहोश करके अण्डे निकाले जाते हैं। जिसे स्ट्रीपिंग विधि कहते हैं। शुक्राणुओं कि गतिविधि बढाने हेतु actifish का 100Ml/1 लीटर पानी में मिलाकर अच्छे से मिश्रित किया जाता है। अगला कार्य उचित मात्रा में अण्डे लेकर, शुक्राणु मिश्रण कर, गोलाकार दिशा में पंख से/हाथों से हिलाते हैं। अर्द्धशुष्क विधि का उपयोग कर 3–4 मिनट बाद इसे इन्क्यूबेटर में रखते हैं। यदि ट्रीपलाइड बनाना है तो दाब संयन्त्र को प्रयोग कर क्रोमोसोम में अन्तर है ताकि वे प्रजनन हेतु देर में तैयार हों व वजन, मांस में वृद्धि के साथ क्रिसमस पर्व पर अधिक से अधिक मांस बाजार में उपलब्ध हो। इन्क्यूबेटर में रखे अण्डों में क्लोरोमीथेन–टी व हाइड्रोजन परआक्साइड का 1–1 दिन के अन्तर में रोजाना छिडकाव करते हैं। हैचिंग के बाद इन्हें हैचरी टैंकों में स्थानान्तरित कर देते हैं।

भारत व फ्रांस की मत्स्यिकी संवर्धन में मुख्य अन्तर के लिए प्रसंस्करण प्रौद्यागिकी है जो कि भारत में पर्वतीय क्षेत्रों में इस दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हो पायी है। फांस के इस महाविद्यालय के प्रसंस्करण संयत्र में कार्यरत 2 व्यक्ति की सफाई के मापदण्डों का सर्वोपरि ध्यान देते हुए स्मोक्ड ट्राउट आदि कई उत्पाद तैयार करते हैं जो कि बाजार में, रेस्तरां में बेचे जाते हैं जिनकी भारी मांग है। भारत में पर्वतीय युवा इस क्षेत्र में मील के पत्थर साबित हो सकते हैं। जिसकी शुरूआत छोटे स्तर पर या ग्रामीण इकाई में प्रशिक्षण से हो सकती है।

उपसंहार की दिशा में बढते हुए मैं आशा करती हूँ कि जिस प्रकार मुझे फ्रांस देश के एक छोटे से महाविद्यालय में सफल रूप से कार्य कर रहे इस सैंट फेजाल फार्म से जो नये अनुभव हुए एवं मार्गदर्शन मिला उसी प्रकार मेरे इन विचारों से शीतजल मात्स्यिकी के विविधीकरण को एक नयी सोच, एक नयी दिशा मिलेगी एवं ठंडे जल मे मत्स्यधन सम्वर्द्धन के समग्र विकास एवं उत्कृष्टता में निखार आयेगा।

एकीकृत मत्स्य पालन द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में स्वरोजगार

बृजेश बोहरा एवं डा0 कुमकुम शाह

जन्तु विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ, उत्तराखण्ड

हिमालय की श्रृंखला में बसा उत्तराखण्ड अपनी कठिन भौगोलिक परिस्थितियों में अपार प्राकृतिक वन एवं जल सम्पदा संजोये है। वन सम्पदा विश्व में जैविक विविधता में अपना विशेश स्थान रखती है। दूसरी ओर प्राकृतिक जल सम्पदा विभिन्न प्रकार की मत्स्य एवं जलीय सम्पदा में विशिष्टता के लिये अत्यन्त विविधता पूर्ण है। परन्तु अभी भी हम अपनी जल सम्पदा का पूर्ण उपयोग उत्तराखण्ड के विकास में नहीं कर पा रहे है। जल सरंक्षण एवं आधुनिक मत्स्य तकनीकी की योजनाओं के अभाव में हम अभी तक अपने जलीय संसाधनों का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। यदि स्पष्ट रूप से स्थान एवं जलवायु के अनुसार पर्वतीय क्षेत्रों हेतु मत्स्यकी की श्रेणियों को निर्धारित कर सुदुरवर्ती गाँवों में जहां ग्रामीणों मत्स्य पालन के इच्छुक हों, वैज्ञानिक विधि को ध्यान में रखते हुए परियोजनाऐं लागू करवायी जाए तो यह अवश्य ही कृषकों को स्वरोजगार के साथ पौष्टिक भोजन भी प्रदान करेगा। यद्यपि पर्वतांचल में पिछले 2 दशकों से मत्स्य पालन ने गति पायी है परन्तु यह संतोषप्रद नहीं है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर राज्य जैव विज्ञान एवं प्राघौगिकी परिषद देहरादून के आर्थिक सहयोग से जन्तु विज्ञान विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ द्वारा जनपद के बेरीनाग तहसील के नागलिंग एवं चौकोड़ी ग्रामों में बेरोजगारों की सुविधानुसार उन्हें मुर्गी सह मत्स्य एवं गाय सह पालन करवाया गया। 2 साल तक प्रतिमाह पानी का परिक्षण पी, एच, तापमान, आक्सीजन, मुक्त कार्बनडाई आक्साइड, कठोरता, प्लवकों का आकलन एवं विभिन्न प्रकार की मत्स्य प्रजातियों ग्रास कार्प सिल्वर कार्प एवं कामन कार्प का भार किया गया

हमनें अपने अध्ययन में पाया है कि गॉव में गरीबी है, वह स्वयं तालाब निर्माण नहीं कर सकते है, इसलिये हमनें तालाब निर्माण में जिलाधिकारी महोदय, पिथौरागढ की सहायता से निर्माण मनरेगा के तहत करवाया। हमने अपने 2 वर्षीय अध्ययन में पाया कि मुर्गी सह मत्स्य पालन से कृषकों / नवयुवकों को गाय पालन से 2 गुना ज्यादा लाभ प्राप्त हुआ। मत्स्य तालाब कृषकों की जमीन उपलब्धता के आधार पर बनाए गये। हमने पाया कि 100 2 मी. के तालाब में प्रतिवर्ष मुर्गी सह मत्स्य पालन से 10000 से 12000 रूपया मात्र प्राप्त हुआ। परन्तु गाय सह मत्स्य पालन से 5000 से 6000 रूपया मात्र प्राप्त हुआ। ग्रास कार्प की वृद्वि सबसे ज्यादा 950 ग्राम से 1 किग्रा प्रतिवर्ष, सिल्वर कार्प 600 ग्राम से 700 ग्राम एवं कामन कार्प 400 ग्राम से 450 ग्राम मुर्गी सह मत्स्य पालन में तथा 800 ग्राम से 900 ग्राम ग्रास कार्प, 500 ग्राम से 550 ग्राम सिल्वर कार्प एवं 300 ग्राम से 350 ग्राम कामन कार्प पायी गयी। यह उल्लेखनीय है कि मुर्गी सह मत्स्य पालन में गाय सह मत्स्य पालन की अपेक्षा प्लवक अधिक प्राप्त हुए थे। क्यों कि विष्ठा में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है, परिणाम स्वरूप वृद्वि अच्छी हुई इस अध्ययन में हमने पाया कि प्राथमिक उत्पादकता मुर्गी सह मत्स्य पालन में अधिक है। जो 1030–2750 µ/litter है। दिसम्बर में सबसे कम व नवम्बर में सबसे अधिक है। दोनों ही प्रकार के मत्स्य पालन में जो ब्रेकिआनस प्रजाति (Brachionus species) फिलियो डोना प्रजाति (Phillıona dona spp.), नोटोलुक्टा प्रजाति (Notolucta spp.), प्रोटोजोआ द्वितीय स्थान पर मुर्गी सह मत्स्य पालन में 20: एवं 21: गाय सह मत्स्य पालन में, जो मुख्यतः एस्पिडिस्का प्रजाति (Aspidisca spp.), वोर्टिसिला प्रजाति (Vorticella spp.), एक्टिनोस्फेरियम प्रजाति (Actionospharium spp.), कोल्पस प्रजाति (Colpes spp.), पैरामिशियम प्रजाति (Paramecium spp.), सेन्ट्रोपिक्सिस प्रजाति (Centropyxis spp.) आदि। कोपिपोड्स भी अच्छी मात्रा में पाये गये। मुर्गी सह मत्स्य पालन में 16% तथा गाय सह मत्स्य पालन में 11%। जो मुख्यतः साइक्लोप्स (Cyclops) प्रजाति के थे। इसके अतिरिक्त क्लोडोसीरस (Clodoceraus) मुर्गी सह मत्स्य पालन में 8%, गाय सह मत्स्य पालन में 7.2% डेफनिया प्रजाति, इलोस्प्टिस प्रजाति एवं गेस्ट्रोटिका प्रजाति की केवल एक प्रजाति चीटोनोटस जो सूक्ष्म मात्रा में पायी गयी। वनस्पति प्लवकों में मुख्य रूप से क्लारोफाइसी, मुर्गी सह मत्स्य पालन में 50% एवं 43% गाय सह मत्स्य पालन में जो कोस्मेरियम प्रजाति, नेट्रियम प्रजाति, युलोथ्रिक्स आदि द्वितीय स्थान पर। बेसिलेरोफाइसी मुर्गी सह मत्स्य पालन में, 10.5% एवं 13.5% गाय सह मत्स्य पालन में जिसमें नॉस्टाक, एनाबीना प्रजाति। युग्लानोफाईसी की मात्रा मुर्गी सह मत्स्य पालन में 9.5% एवं 8.8% गाय सह मत्स्य पालन में सिम्बेला प्रजाति। साइनोफाइसी मुर्गी सह मत्स्य पालन में 11.5% एवं 9.81% गाय सह मत्स्य पालन में पायी गयी। वनस्पति प्लवक एक वर्ष में 2 बार बहुतायत पाये गये। क्लारोफाइसी नवम्बर माह में अत्यधिक मात्रा में पायी गयी 1398 – 1708 µ/litter। जंतु प्लवक की मात्रा वनस्पति प्लवक की अपेक्षा कम पायी गयी। दिसम्बर से जनवरी माह में जंतु प्लवक, वनस्पति प्लवकों की अपेक्षा अधिक पाये गये। मुर्गी की विष्ठा प्लवकों को अच्छा तलछ्ठ प्रदान करती है। सड़ी गली चीजों से सूक्ष्म जीव अपना भोजन प्राप्त करते है। मछली एवं मुर्गी के उत्पादों को कृषको द्वारा स्वयं प्रयोग में लाया गया और शेष बिक्री की गयी। मछली की विभिन्न प्रजातियों की मृत्यु दर 5–7% रही। मुर्गी सह मत्स्य पालन में अच्छा उत्पाद हुआ तथा भोजन भी कम प्रयोग किया गया क्योंकि मुर्गी की विष्ठा ने प्रत्यक्ष रूप से भोजन एवं तालाब की की उत्पादकता बढ़ाने में सक्रिय योगदान दिया।

मछली में रोगों के रोकथाम हेतु समय समय पर चुना एवं पोटेशियम परमैगनेट का छिड़काव पन्द्रह दिन के अन्तराल में किया गया, जो अत्यधिक लाभप्रद रहा।

यदि इस प्रकार सुदूरवर्ती गावों मे जाकर कृषकों एवं बेरोजगार नवयुवकों को मत्स्य पालन के प्रति प्रोत्साहित किया जाय तो उत्तराखण्ड के विकास में मील का पत्थर साबित होगा। जो कृषक वैज्ञानिक विधि से मत्स्य पालन कर रहे है वह प्रतिवर्ष 1600 – 2000 नाली प्राप्त कर रहें है। अतः आवश्यकता है इन्हें प्रोत्साहित किया जाय व इनकी परेशानियों का निराकरण किया जाए। जिस क्षेत्र में हमने कार्य किया वहॉ पर कृषक इस कार्य को करना चाहते है, परन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्यतः मत्स्य बीज की उपलब्धता नहीं हो पा रही है, यह मत्स्य पालन में सबसे बड़ी परेशानी है। यहॉ के कृषकों को मत्स्य बीज उपलब्ध कराने की कोशिश महाविद्यालय द्वारा समय – समय पर की जा रही है। जिन कृषकों को बीज उप्लब्ध होता है वह अच्छा उत्पादन कर लाभ प्राप्त कर रहें है।

अन्त में हम अपने शोध पत्र द्वारा शासन से अनुरोध करना चाहेंगे कि वह उत्तराखण्ड में मात्स्यिकी पर भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार परियोजनाए संचालित कर उत्तराखण्ड की जल सम्पदा का उपयोग कर सुदूरवर्ती क्षेत्रो में नवयुवको/कृषकों को रोजगार एवं पौष्टिक आहार उपलब्ध कराकर कुपोषण को दूर करने में सहयोग प्रदान करें।

मुख्य शब्दः उत्तराखण्ड, मात्स्यिकी, कुपोषण, पौष्टिक आहार।

निदेशालय द्वारा मत्स्य प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धित आहार सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रम

शी.ज.मा.अनु. निदेशालय भीमताल ने जन–जातीय उपयोजना कार्यक्रम के अर्न्तगत देहरादून में सी.आइ.एफ.टी. कोचीन के साथ मिलकर दिनांक 2–3 मार्च, 2016 को संयुक्त रूप से ताजे पानी की मछलियों के प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धित आहार से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया। कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य जन–जाति समुदाय के स्त्री एवं पुरूषों में मत्स्य पालन के द्वारा अपनी आजीविका के प्रति जन–जागरण की भावना पैदा करना तथा मत्स्य उत्पादों के बेहतर रख–रखाव एवं उनका प्रसंस्करण करना था। इस कार्यक्रम में भोटिया एवं बुक्सा जन जातियों सहित कुल 73 जनजाती महिलाओं ने भाग लिया। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि जन जाति आयोग के अध्यक्ष एवं भूतपूर्व मुख्य सचिव, उत्तराखण्ड श्री एन.एस. नपल्च्याल थे। उन्होने कहा कि इस प्रकार के कार्यक्रम सूदूरवर्ती क्षेत्र की जन जातियों की आजीविका के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। उन्होने निदेशालय द्वारा किए जा रहे इस प्रकार के कार्यों की सराहना की और उत्तराखण्ड राज्य के साथ मिलकर जन–जाति समुदाय के हितों की रक्षा करने का आहवाहन किया।

संस्थान के निदेशक डा. ए.के. सिंह ने राज्य के जन जाति उपयोजना के अर्न्तगत जन जाति समुदाय के कृषकों को तकनीकी सहायता देने का आश्वासन दिया। कार्यक्रम में जन जाति समुदाय के लोगों को मत्स्य पैदावार के बेहतर रख रखाव के साथ साथ उनकों फिश बौल, फिश करी, मछली का आचार, मछली के कटलेट इत्यादि भी बनाकर प्रदर्शन किया गया। उक्त कार्यक्रम के साथ साथ रंगीन मछलियों की बागवानी तथा प्रजनन का एक दिवसीय प्रशिक्षण भी दिया गया।

मत्स्य - धान की खेती का धरोहर है : आपातानी पठार

दीपज्योति बरूआ
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

आन्ध्र प्रदेश 24 प्रमुख जनजातियों एवं 110 उपजनजातियों तथा अपनी जातीय विविधता के रुप में जाना जाता है। यह अपनी बर्फीली नदियों, नालों असंख्य झरनों, प्राकृतिक झीलों, पठारों, बर्फ से ढके, पहाड़ों, गहरी नदी–घाटियों, हरे – भरे वनों, अक्षांशी भिन्नताओं, जलवायु परिस्थितियों, भौगोलिक स्थिति के रुप में एक छिपी हुयी भूमि के रुप में भी वर्णित है। इस राज्य के अधिकांश लोग कृषक हैं और उनके पास पारम्परिक ज्ञान का खजाना है। राज्य की प्रमुख जनजातियों के निम्न सुबनसिरी जिले की जीरो घाटी में वास करने वाली आपातानी जनजाति चावल के साथ मछली पालन की अपनी प्राचीन परम्परा के लिए काफी प्रसिद्व है। इस घाटी की जलवायु इस प्रकार की खेती के लिए सर्वथा अनुकूल है। आपातानियों द्वारा चावल–मछली खेती के लिए कृषि भूमि का सतत् उपयोग पठारी क्षेत्र में बेमिसाल है।

आपातानी पठार

आपातानी पठार अथवा जीरो घाटी भौगोलिक रुप में समुद्र तल से 1572 मी. की ऊंचाई पर तथा 260 50′ – 980 21′ उत्तरी अक्षाशं तथा 92040′ व 940 21′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इसके चारों और ऊंची–ऊंची पहाड़ियां तथा विकसित समन्वित चावल सह मत्स्य कृषि (स्थानीय नाम – अजी निग्यई) एवं बांस–चीड़ के घरेलू बाग फैले हैं। जीरो घाटी को कीली नदी विभाजित करती है तथा यह दक्षिण के पठार एवं उत्तर में कमला व खू की नदी घाटियों के बीच में स्थित है। ये सभी नदियाँ अन्ततः सुबनसीरी नदी में गिरती है जो बह्मपुत्र नदी की एक सहायक नदी है। मई–अगस्त की अवधि में यहाँ पर लगभग 1500 मि0 मी0 वर्षा होती है, जबकि नवम्बर से फरवरी माह मे वर्षा तुलनात्मक रुप से बहुत कम अथवा नहीं होती है। यहां का तापमान गर्मियों में 6.30 से.ग्रे.व 28.10 से.ग्रे. तथा सर्दियों में 1.00 से. ग्रे. व 18.40 से. ग्रे. रहता है, जिसमें सर्दियों और गर्मियों दोनों मे काफी उतार–चढ़ाव देखने को मिलता है। यह ठण्डा – गरम मौसम घाटी को एक प्रमुख पर्यटक स्थल के रुप में सुन्दर बनाता है।

धान मत्स्य प्रक्षेत्र

जीरो घाटी के आपातानी पठार में 715.7 हैक्टे. क्षेत्र जल क्षेत्र में व्याप्त है तथा लम्बे समय से यहां पर चावल के साथ मत्स्य पालन का कार्य लगभग 592 हैक्टे0 क्षेत्र में किया जा रहा है (दास 2002)। चावल के साथ मत्स्य पालन हेतु भूखण्डों की तैयारी नवम्बर माह में चावल की अंतिम फसल लेने के पश्चात आरम्भ की जाती है। धान के पुआल (बचे हुए) को खेतों में ही छोड़ दिया जाता है ताकि उसका अपघटन हो सके तथा शेष बचे कूड़ा–करकट को जला दिया जाता है। जमीन तैयार करने के लिए किसान अपने खेतों में हल चलाने के लिए न तो उन्नत उपकरणों का प्रयोग करते हैं और न ही कोई यंत्र अथवा पशु शक्ति का प्रयोग करते हैं। इस हेतु वे आर्थिक और पारिस्थितिक रुप से व्यवहारिक उपकरण 'दाओस' तथा 'स्पादेश' का ही प्रयोग करते हैं। 'चबूतरा' इस पारम्परिक प्रणाली की एक खास विषेशता है, जिसमें यह लोग आर्द्र–चावल के साथ अन्य फसल वर्ष में एक या दो बार फसल प्राप्त कर लेते हैं तथा साथ ही मछली के साथ–साथ सब्जी का भी उत्पादन कर लेते हैं। खेतों में सिंचाई की उचित व्यवस्था रखी जाती है जो कि प्रत्येक खेत के साथ बहुत अच्छी तरह से आपस में अर्न्तसम्बन्धित होती है। इसमें पानी के साथ आहार देने की व्यवस्था भी रखी जाती है। अधिकांशतः धान के खेतों में मछली की आवाजाही को सुविधाजनक बनाने के लिए तथा दिन में गर्मी के समय शरण के लिए गड्ढों (30 से 45 सेमी. गहरे) को बनाया जाता है। इन गड्ढों को सीधा एक दूसरे से अनियमित रुप से जालीदार रुप में खोदा जाता है। इन गड्ढों में दो निकास द्वार बनाये जाते हैं। एक जमीन अथवा सतह की ओर जिससे अतिरिक्त पानी निकाला जा सके, दूसरा नीचे की ओर पानी को सूखाने के लिए, ताकि मत्स्य पैदावार को निकाला जा सके। दोनों निकास द्वारों को बांस की रस्सी से कसकर बन्द कर दिया जाता है ताकि पालन अवधि के दौरान मछली को बाहर भागने से बचाया जा सके। मौसम के दौरान धान – मत्स्य प्रक्षेत्र में जल का स्तर 25 – 35 सेमी. रखा जाता है। सामान्यतः प्रक्षेत्रों में पानी की आपूर्ति आस – पास की नदियो से की जाती है। जिसे प्रत्येक प्रक्षेत्र में पुर्नसंचालित किया जाता है।

धान मत्स्य सम्वर्द्धन प्रणाली

आपातानी प्रणाली में चावल के साथ मत्स्य उत्पादन हेतु प्राकृतिक जल स्रोतों से जल का उपयोग सम्बधी प्रबंधन बहुत सुनियोजित ढंग से होना चाहिए। चावल सह मत्स्य उत्पादन की इस समन्वित कृषि के लिए यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सिचाईं वहिकाऐं न केवल पानी के उपयोग को बेहतर बनाता है, बल्कि धान के खेतों को पोषक तत्व भी प्रदान करता है। धान के खेतों में मत्स्य पालन एक वर्ष में एक अथवा दो जत्थों में किया जाता है जो कि खेतों की स्थिति पर निर्भर करता है। आमतौर में फसलों के मौसम में मुलायम खेतों में मछलियों का एक तथा सख्त खेतों में दो जत्थों का पालन किया जाता है, (निमचाउ इत्यादी 2010)। कामन कार्प की कुछ महत्वपूर्ण पसंदीदा प्रजातियां जिनको वैज्ञानिक रूप से साइप्रिनस कार्पिओ स्पैक्युलेरिस (मिरर कार्प), सी. कम्युनिस (स्केल कार्प) तथा सी. कार्पिओ नूडस (लैदर कार्प) के नाम से जाना जाता है को चावल की स्थानीय किस्मों अम्पू, मीपूई, प्यापू व येलांग के साथ समेकित किया जाता है। चावल के खेतों की यान्त्रिक विधी से क्रमबद्ध निराई की जाती है। मछली सह चावल की खेती के दौरान महिलायें व पुरुष अपने–अपने

कार्यों को बाँट लेते हैं। 5–8 सेमी0 आकार के मछली के बच्चों को चावल की पौंध लगाने के 10 – 15 दिनों बाद अप्रैल मई में चावल के खेतों में डाल दिया जाता है। इस प्रणाली मे कुशल प्रबन्धन के द्वारा खेत तैयार करने के पूर्व गाय के गोबर की खाद के साथ साथ ऐजोला और लेम्ना जैसे नाइट्रोजन फिक्सर को डाला जाता है। कृषि अपशिष्ट, धान की भूसी, चावल का छिलका, राख, खरपतवार आदि के स्वतः अपघटन से मिट्‌टी के पोषक तत्वों को बरकरार रखा जाता है। फसल के पश्चात पशुओं को खेतों में चरने के लिए छोड़ दिया जाता है ताकि पशुओं के गोबर से खेतों की उर्वरता बनी रहें। इस प्रणाली में मछलियाँ लवक तथा पेरीफाइटन के रुप में पर्याप्त भोजन प्राप्त करते हैं तथा उन्हें अतिरिक्त बाह्य भोजन की आवश्यकता नहीं पड़ती। दास एवं आल (2007) ने इस प्रणाली की सेल्फ सब्स्ट्रेक्टिंग पेरिफाइटन बेस्ड एक्वाकल्चर (SSPBA) रुप में पहचान की थी क्योंकि चावल के पौंधे पेरीफाइटन की वृद्धि के लिए सतह प्रदान करते हैं। चौधरी इत्यादी (1993) ने चावल के साथ मछली–चावल उत्पादन प्रणाली को आदर्श समन्वित खेती कहा है क्योंकि इसमें कम गहराई के साथ उपजाऊ जल उपलब्ध रहता है। मछलियाँ चावल के पौंधों को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़े मकोड़ों जैसे पानी के बीटल तथा लार्वा आदि को खा जाती है। मछलियों द्वारा निकाला गया अपशिष्ट पदार्थ चावल के पौंधों के लिए खाद की तरह कार्य करता है कामन कार्प के अलावा प्रजातियाँ जैसे ग्रास कार्प *(Ctenopharyngodon idella)* सिल्वर कार्प *(Hypo phthalmicthys molitrix), Labeo gonius Barbonymus Gonionotus,* इत्यादि को भी खेतों में डाला जाता है। परन्तु जीरो घाटी का प्रतिकूल मौसम के कारण इन मछलियों की प्रजातियों का कम उत्पादन प्राप्त हुआ हैं। कॉमन कार्प आमतौर पर 3–4 महीनों के अन्दर 250 – 500 ग्राम वृद्धि प्राप्त करती है। उत्पादन दर 500 किग्रा/हैक्टेयर/मौसम है, (सैकिया एवं दास 2008)।

मछलियों को स्थानीय बाजार में रु0 150/किलो के भाव से बेचा जाता है, जिनकी तालाबों में संग्रहण के समय प्रारम्भिक लागत 1.00 – 5.00 / अंगुलिका थी। इस प्रकार किसानों को अपने नियमित चावल उत्पादन के अतिरिक्त 50 प्रतिशत से अधिक शुद्ध लाभ होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि चावल की मछली के साथ समन्वित खेती, ग्रामीण जन को कम लागत पर उच्च प्रोटीन युक्त भोजन और पोशक सुरक्षा प्रदान करती है। चावल मछली खेती, खेतों में उर्वरक कीटनाशकों और शाकनाशी के उपयोग को कम करती है और मछली के लिए कृत्रिम भोजन के निवेश को भी शून्य करती है। निवेश में कम लागत किसानों के आर्थिक बोझ को कम करता है और मछली की बिक्री से उनकी अतिरिक्त आय में वृद्धि होती है। चावल मछली की समन्वित खेती द्वारा शुद्ध उत्पादकता चावल के मोनोकल्चर से 65 प्रतिशत तक अधिक है।

उपसंहार

जीरो घाटी में चावल मछली की खेती करने वाले किसानों के सर्वेक्षण से पता चलता है कि चावल– मछली की समन्वित खेती पर्यावरण के अनुकूल, कम जोखिमवाली, उच्च आर्थिकी और खाद्य सुरक्षा, पोशक, मानक स्वास्थ्य और ग्रामीण जनता की आजीविका की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, इसलिए अपाटानी पठार की इस पारम्परिक 'चावल सह मछली पालन' को अरुणांचल प्रदेश के दूसरे हिस्सों में भी प्रचारित एवं प्रसारित करना चाहिए। स्थानीय किसानों की प्रतिक्रिया के अनुसार इन्टीग्रेटेड चावल सह मछली की यह समन्वित खेती एक टिकाऊ, आत्मनिर्भर और आजीविका के लिए कारगर तरीका है।

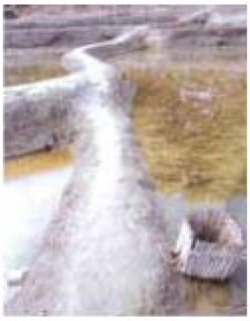

सह-फसलीय मत्स्य पालन द्वारा गॉवों के संसाधनों का उपयोग

सुरेश चन्द्रा, रविन्द्र सिह पतियाल एवं *ममता जोशी
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, चम्पावत केन्द्र
*डी.एस.बी. कैम्पस, कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल

देश की बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण एंव औद्योगिकीकरण इत्यादि से प्राकृतिक संसाधनों पर दबाब बढ़ता जा रहा है। पशु पक्षियों एंव बढ़ती मानव की अधिक आबादी से प्राप्त वर्ज्य पदार्थो, शहरी मलजलों, औद्योगिक बहीस्रावों एंव कृषि से प्राप्त की लगातार वृद्धि से प्रदूषण की संभावनाएं बढ़ रही है। इससे पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ रहा है साथ ही प्राकृतिक जल संसाधन सिकुड़ रहे हैं। ऐसे में बढ़ती आबादी की खाद्य आवश्यकता का ध्यान में रखते हुयें इकाई क्षेत्र की उत्पादकता को बढावा निरंन्तर एक महत्वपूर्ण पहलू है। प्रचुर मानव संसाधनों, जल संसाधनों वर्ज्य पदार्थ संसाधनों का उपयोग एक साथ सही रूप से प्रबन्धित किया जाता है। समन्वित मछली पालन द्वारा किया जा सकता है। एक उपतंत्र का वर्ज्य पदार्थ दूसरे उपतन्त्र हेतु निवेश का काम करता है। कुछ भी व्यर्थ नही होता है। प्रमुख उपतंत्रों में मछली पालन, कृषि –बागवानी एंव पशुधन आदि शामिल है।

मत्स्य तालाब की तैयारी

तालाब के चारों तरफ मेंड़ों को बनातें है। प्रवेश तथा निकास द्वारा पर जाली लगाकर सुरक्षित कर लेते है। कच्चे तालाबों की मिट्टी मटियार या मटियार दोमट अच्छी होती है। पानी की गहराई 2.0–3.0 मी रखी जाती है। जलीय पौधों को तालाब से आदमी लगाकर अथवा रासायनिक/यांत्रिक विधि से उन्मूलित कर लेते है। अनावश्यक मछलियों का उन्मूलन तालाब सूखा कर अथवा महुवे की खली 2,500–3000 किग्रा/है मी. अथवा ब्लीचिंग पाउडर 300–400 किग्रा/है.मी. की दर से प्रयोग करते है। प्रति है.100 किग्रा/यूरिया एक दिन पूर्व प्रयोग करें तो ब्लीचिंग पाउडर की दर आधी कर देते है। द्रवीभूत आमोनिया के उपयोग से भी अनावश्यक मछलियों को उन्मूलित करते है। तालाबों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए 10–15 टन/है. जैव जनित खाद का प्रयोग किस्तों में करते है। पी.एच. अनुकूल बनाने, विघटन तेज करने, कैल्सियम उर्वरक प्रदान करने, रोग रोधिता बढ़ाने के लिए तालाब में मिट्टी के पी.एच. के अनुसार चूने का प्रयोग 200–300 किग्रा/है. की दर से करते है। तैयार किये गये तालाबों मे तीन विदेशी कार्प मछलियों (ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प एंव कामन कार्प) को एक साथ 6,000–10,000 अंगुलिका/है. की दर से संचित करते हे। कार्बनिक खादों के अतिरिक्त बाहर से कोई सम्पूरक आहार नही देते है। ग्रास कार्प की जॉच समय –समय पर किया करते है। मछलियों को एक वर्ष में एक बार अथवा अनेक बार आवश्यकतानुसार जाल से पकड़ कर बिक्री करते है। यह मत्स्य तालाब प्रबंधन प्रणाली समन्वित मछली पालन तंत्र के सभी उपतंत्रों के साथ लागू होता है।

मत्स्य–गाय समन्वित पालन

हमारे देश में तालाबों उर्वरकता बढ़ाने के लिए गाय के गोबर का प्रयोग वर्षो से होता रहा है। इसे संवर्धन से तालाबों में प्रयोग की जाने वाली गोबर की खाद एंव आहार की बचत होती है। कच्चा गोबर प्राकृतिक आहार उत्पादन के लिए सबसे अच्छा स्रोत है। मत्स्यपालन को मछली के अलावा दूध, मक्खन, घी, इत्यादि मिलता है तथा इनके बच्चे अच्छी किमत पर बिकते है। तालाबों में एक साथ गाय का गोबर डालने से ऑक्सीजन की कमी होती है। यादि गोबर का प्रयोग बायोगैस के लिए किया जाय और प्राप्त स्लरी का प्रयोग तालाब में किया जाय तो ऑक्सीजन की कमी होने का भय नही रहता है।

हमारे देश में देशी,विदेशी व सुधारी गई गायों की नस्लें मिलती है। इनमें हरियाणा, साहीवाल, ब्राउनस्वीस, जर्सी हौलेस्ट्रीन, फिजियम व सुधारी गई नस्लों में करनस्वीस प्रमुख है। करनस्वस, जर्सी व हौलैस्ट्रीन इत्यादि में अपने को भारत के वातावरण के अनुकूल बना लिया है। यदि इनका पालन ठीक से किया जाए तो 20–30 ली./दिन दूध दे सकती है मछली–गाय समन्वित पालन में 400–450 की दो गायें एक हैक्टेयर जल क्षेत्र के लिए पर्याप्त है। पौष्टिकता के आधार पर यह सूअर

के मल से कम होता है लेकिन सामाजिक कारणों से गाय से गोवर को प्राथमिकता दी जाती है। यदि 25 ग्राम गोवर प्रतिघन मीटर जल में प्रतिदिन डाला जाय तो अकार्बनिक नाइट्रोजन एंव फॉस्फोरस का अनुपात 36:1 होता है। लगभग 21 किग्रा. गोवर एक किग्रा मछली का उत्पादन करने में सक्षम है। गायें ज्यादातर हरी घास खाती है। हमारे देश में करीब 7–8 महीने घास मिलती है। एक वयस्क गाय इस अवधि में 8000–12000 किग्रा. घास खा सकती है। इमें से करीब 20 प्रतिशत घास खाने के समय गिर कर नष्ट हो जाती है। समन्वित मछली पालन में इसका उपयोग ग्रासकार्प मछली आसानी से कर लेती है। एक अच्छी गाय, जैसे जरसी, करनस्वस या हौलेस्टीन करीब 300 दिनों में 4000–4820 लीटर दूध देती है। दूध दिन में दो बार निकाला जाता है। तथा निकालने से पूर्व इनके स्तन को गरम पानी से धो लेना चाहिए।

मत्स्य–मुर्गी समन्वित पालन

इस समन्वित पालन का मुख्य उद्देश्य कुक्कुट वर्ज्य पदार्थ को ताला में प्रयोग करके मछली की उपज का बढ़ाना हैं। मुर्गियों की खाद में वह सभी मूल तत्व होत है जो तालाबों में उपापचय चक्र के लिए जरूरी हैं मुर्गियों के खाये गये आहार का कुछ भाग बिना पचे बाहर निकल जाता हैं। दिये गये आहार का 10–17 प्रतिशत भाग खाते समय गिर कर कुक्कुट मल के साथ मिल जाता है। फलतः इसका पोषक महत्व बढ़ जाता है। इस खाद के कुछ भाग को नितल में रहने वाली मछलियॉ आहार के रूप मे प्रयोग करती है। चीन व अमेरिका में मुर्गियों की सूखी खाद गायों के आहार में 10–15 प्रतिशत मिलाकर भी दी जाती है। इसमें 18–20 प्रतिशत प्रोटीन होता है। चीन में इन खादों का किण्वन के बाद मुर्गियों के आहार में 40 प्रतिशत मिलाकर उन्हें खिलाते है। एक अण्डा देने वाली मुर्गी प्रतिदिन 100–150 ग्रा.वर्ज्य पदार्थ उत्पन्न करती है।

समन्वित मछली पालन में मुर्गी अधिक संख्या में रखी जाती है। इनको पिंजड़ों अथवा मुर्गीघर में रखा जाता हैं। डीपलीटर

विधि को ज्यादा मान्यता प्राप्त है क्योंकि इसमें प्राप्त खाद में पौष्टिक तत्वों की मात्रा अधिक होती है। लगभग एक माह में डीपलीटर बन जाता है।, 6 माह मे निर्मित डीपलीटर तथा 10–12 माह में पूर्ण डीपलीटर हो जाता है। जिसे पूर्ण तथा उर्वरक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। मुर्गीघरों में प्राकृतिक प्रकाश एंव हवा के आने –जाने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। ज्यादातर घर एक मंजिल वाले होते हैं। आजकल दो मंजिल घर उपयोग होने लगे हैं इनकी छतें उल्टी 'वी' आकार की होती है। यह 6–8 मी. लम्बें 2.0–2.5 मी. ऊँचें (गर्म जगहों में 3 मी. ऊँचें) होते है। कमरे का क्षेत्रफल करीब 100 वर्ग मी होता है, इनमें 800 मुर्गियॉ रखी जा सकती है। मुर्गीघर में तल व खिड़कियों के क्षेत्र में 1:8 अनुपात होता हैं घरों का रूख सूर्य की तरफ होना चाहिए। फर्श जमीन से 30 सेमी ऊँचे बनाये जाते है। जिसे यह पूरी तरह सूखा रह सके। मुर्गियों के पिजडें गैल्विनाइज्ड लोहे के बने होते है। तथा इनका क्षेत्रफल एक वर्ग फिट होता है। प्रति पिंजड़ें में एक मुर्गी रखी जाती हैं

पानी के बर्तन भी प्लास्टिक या धातु के बने होते हे। जब चूजे छोटे होते है, इन पानी के बर्तनों को उष्ण विद्युत छतरी के पास रखा जाता है। इनका नाप चूजों के आकार के हिसाब से बदलता रहता है। कुक्कुट का आहार इस बात पर निर्भर करता है कि कुक्कुटों को किस लिए रखा जा रहा है? अण्डे देने के लिए या फिर मांस के लिए। हमारे देश में कुक्कुटों के लिए बना बनाया आहार हर जगह आसानी से उपलब्ध है। यह स्टार्टर, ग्रोवर व फिनिशर के नाम से मिलता है। अण्डे देने वाले कुक्कुटों व मांस के लिए रखे गये कुक्कुटों दोनों को एक ही प्रकार का आहार दिया जाता है,पर खाना देने की विधि अलग प्रकार की हैं (तालिका–7)

इन आहारों को दिन में तीन बार दिया जाता है। कुक्कुटों में अनेक प्रकार की बीमारियाँ होने की संम्भावना रहती है। अतः इनके रहने की जगह को साफ–सुथरा रखा जाता हैं। हमारे देश के कुक्कुटों के लिए अनेक प्रकार की वैक्सीन का प्रयोग किया जाता है। मुर्गी को बेचने के एक सप्ताह पूर्व से ही इस औषधि का आहार में मिलाना बन्द कर देना चाहिए। मुर्गियां 22 माह की आयु से अण्डे देना शुरू करती है और प्रति मुर्गी 210–250 अण्डे /वर्ष देती है। ब्रायलर कुक्कुटों से कम से कम तीन फसल तक ली जा सकती है। कुक्कुट –मछली समन्वित पालन से प्रति हैक्टे. 4.5–5 टन मछली / वर्ष, 70,000 से अधिक अण्डे तथा 1250 किग्रा से अधिक कुक्कुट मांस प्राप्त किया जा सकता है।

मछली सह–बत्तख पालन

बत्तख के साथ मछली का पालन एक बहुत पुरानी व अति प्रचलित पद्धति है। मछली के साथ बत्तख पालन में पानी के ऊपरी सतह का उपयोग हो जाता है।

आहार का नाम	अण्डे देने वाले कुक्कुट	मांस वाले कुक्कुट
स्टार्टर	0.5 हफ्ते	0–4 हफ्ते
ग्रोवर	8–20 हफ्ते	–
फिनिशर	20 और आगें हफ्ते	4–6 हफ्ते

मछली सह बत्तख पालन

इसमें बत्तखों द्वारा जो मल त्याग होता है वह मछली द्वारा खाद्य के रूप में इस्तेमाल होता है। बचा हुआ मल विघटित हो कर पुनः मछलियों के आहार श्रृंखला में आ जाता है। तालाब में बत्तखों के तैरने से पानी में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती हैं भोजन की खोज में जब बत्तखें पानी में डुबकी मारती हैं एंव नितल को कुरेदती है तब नितल मिट्टी से पौष्टिक तत्व बाहर आकर पानी को उर्वरक बनाते है। अतः बत्तखों की मौजूदगी से तालाब में मछली उत्पादन बढ़ाने में सहायता मिलती है साथ ही लागत में कमी हो जाती है। बत्तखें ज्यादातर समय पानी में गुजारती हैं इसलिए किसी भी साधन से बत्तखों के लिए घर बनाये जा सकते है। तैरते हुए घर भी बनाये जा सकते है। एक वर्ग मीटर में 4 बत्तखें रहती है,पर ऐसा होना चाहिए जिससे उन बत्तखों के त्यागे हुये मल –मूत्र व गिराया हुआ दाना वह सीधा तालाबों में जा सकें और जिनका उपयोग मछलियां कर सकें। बत्तखें 6 महीने की उम्र से अण्डे देना शुरू करती हैं और यह सिलसिला दो साल तक चलता है। अण्डों को टूटने से बचाने के लिए बत्तख के रहने के स्थान पर धान या रौहू के बारीक खर –पतवार इत्यादि डाल देते है। बत्तख रात में अण्डा देती है। रात के समय बत्तख पानी में रहने से उसमें अण्डा दे सकती है। अतः रात में बत्तखों को घर में रखा जाता हैं, जहाँ वे अण्डे देती हैं। बत्तखों के घर से अण्डे सुबह एकत्रित किये जा सकते है।

बत्तखों की कई नस्लें है, परन्तु समन्वित मछली पालन के लिए आवश्यक है कि ऐसी रोग निरोधक एंव शीघ्र बढ़ने वाली किस्म हो जो विभिन्न प्रकार के वातावरण में रह सकें व ज्यादा अण्डे देती हों। बत्तखों की एक सुधारी गयी नस्ल जिसे 'इण्डियन रनर' कहते है इस प्रकार के समन्वित मछली पालन के लिए अति उपयुक्त है। हमारे देश में 2–3 महीने के बच्चे मत्स्य प्रक्षेत्र में छोड़े जाते है। हमारे इनमें 200–300 बत्तखें/हैक्टेयर के हिसाब से रखी जाती है क्योंकि इनके द्वारा त्याग किया गया मल प्रति हैक्टेयर के लिए पर्याप्त होता है। बत्तखें तालाब में उपलब्ध प्राकृतिक खाद्य का उपयोग करती है, इसकी मात्रा अपर्याप्त होने के कारण प्रतिपूरक आहार भी देना अनिवार्य है। हमारे देश में बत्तखों के लिए उचित व्यापरिक खाद्य उपलब्ध नही है। अतः कुक्कुट आहार एंव चावल की भूसी को 1:1 के अनुपात मे 100 ग्राम प्रति बत्तख के अनुसार देते हे। चीन में कटी हुई जलकुम्भी एंव चावल कि भूसी मिलाकर 150 ग्राम प्रतिदिन प्रति बत्तख के अनुसार देते है। बत्तखें तालाब में उपलब्ध मेंढ़क के बच्चे, घौंघे, कीड़े, पानी की खर –पतवार इत्यादि खाती है। बत्तखों के आवास स्थान को साफ–सुथरा रखा जाता है तथा बत्तखों को बैक्सीन के टीके लगवा दिये जाते है। बीमार बत्तख को अलग रखा जाता है। बीमार बत्तख बेचैन रहती है तथा ऑख व नाक से पानी टपकता रहता है। इसकी रोकथाम के लिए जानवरों के चिकित्सकों से परामर्श लेना चाहिए।

बत्तखें दो वर्ष बढ़ती है। इसके बाद इनकी बढ़त बहुत कम हो जाती है तथा अण्डे भी कम मिलते हैं इसलिए यह आवश्यक है कि इनको दो वर्ष में ही बेच दिया जाय। एक वर्ष की आयु में बेच देना और भी अच्छा रहता है क्योंकि इनका मांस मुलायम रहता है, इससे एक बत्तख से प्रतिवर्ष में करीब 200 अण्डे प्राप्त हो सकते है। प्रत्येक अंगुलिका का वजन 4–5 ग्राम से अधिक होनी चाहिए, अन्यथा बत्तख इन्हें खा सकती है। संचित तालाबों में समय–समय पर मासिक किस्तों में 250–300 किग्रा./हे./वर्ष चूना डालते रहना चाहिए इससें बत्तखों द्वारा त्यागे मलमूत्र का विघटन शीघ्र होता रहता है। यदि तालाब मे ग्रास कार्प मछली संचय की गई है तो जलीय पौधें जैसे नाजास, हाइड्रीला तथा लैम्ना इत्यादि प्रतिदिन देना चाहिए। जलीय पौधें न हो तो पशुओं के हरे चारे जैसे बरसीम, मक्के की पत्तियॉ इत्यादि छोटे छोटे टुकडें करके डाली जा सकती है। मछलियों को प्रतिमाह तालाब से निकालकर बिक्री कर देना चाहिए। यदि किसी बीमारी इत्यादि की संभावना लगे तो उचित कदम उठाने चाहिए।

मछली सह मुर्गी पालन

जल-जीव के लिए स्थानिक निर्णय समर्थन प्रणाली

अशोक कुमार नायक, *प्रेम कुमार और अश्वनी कुमार
जल प्रबंधन निदेशालय, भुवनेश्वर–751 023, उडीसा
*भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल उत्तराखंड

विशेष रूप से हिमालय क्षेत्रों में खुले पानी से मछली उत्पादन में हाल के वर्षों में गिरावट आई है। मिट्टी, पानी और बुनियादी सुविधाओं की कमी इस मछली उत्पादन में गिरावट का प्रमुख कारण होते हैं। इसे ध्यान में रखते, वर्तमान जॉच के लिए महत्वपूर्ण हैं कि सुदूर संवेदन तकनीक और भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) का उपयोग करके मिट्टी, पानी और बुनियादी सुविधाओं के उपयोग करके संसाधन प्रबंधन रणनीति विकसित करना और इस क्षेत्र में स्थायी मछली स्टॉक सुनिश्चित करना जरूरी हैं। इस कार्यों के लिए इस पहाडी क्षेत्र की मिट्टी, पानी और आधारभूत सुविधाओं के विभिन्न महत्वपूर्ण मापदंडो को अच्छी तरह से विश्लेशणात्मक पदानुक्रम प्रक्रिया (AHP) द्वारा मूल्यांकन किया गया। मापदंड के आधार पर, सोलह विषयगत परतों जीआईएस सॉफ्टवेयर का उपयोग करके इस क्षेत्र के मत्स्य के विकास के लिए सबसे उपयुक्त स्थानों को वर्गीकृत करने के लिए एक मॉडल विकसित किए गए।

एक निर्णय समर्थन प्रणाली (Decision Support System) समस्याओं और निर्णय की पहचान और हल करने के लिए संचार प्रौदयोगिकियों, डेटा, दस्तावेज, ज्ञान और मॉडल का उपयोग करके निर्माताओं की मदद करने उद्देश्य से एक इंटरैक्टिव कंप्यूटर आधारित निर्णय प्रणाली या उपतंत्र है। एक अच्छी तरह से डिजाइन डीएसएस निर्णय निर्माताओं की पहचान और समस्याओं को हल करने और निर्णय लेने के लिए कच्चे डेटा, ज्ञान या व्यापार माडल का एक संयोजन से उपयोगी जानकारी संकलित करने में मदद करने के उद्देश्य से एक इंटरैक्टिव सॉफ्टवेयर आधारित प्रणाली है। एक साधारण भाषा में यह एक व्यक्ति या निर्णय लेने के लिए समूह की क्षमता को बढाता कंप्यूटर अनुप्रयोग है। एक जी.आई.एस. आधारित

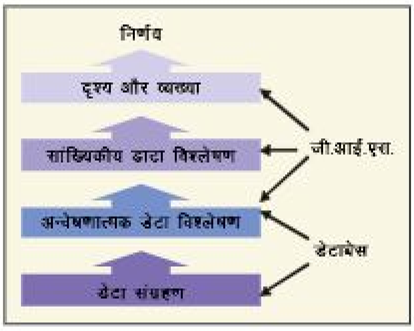

निर्णय समर्थन प्रणाली भी स्थानिक निर्णय समर्थन प्रणाली (spatial decision support system-SDSS) के रूप में जाना जाता है। यह जीआईएस और इस बारे में दोनों के प्रौद्योगिकियों के एक स्थानिक आयाम है और समस्याओं के साथ निर्माताओं की सहायता के लिए लागू कर रहे एक कंप्यूटर निर्णय सिस्टम है।

इस सिस्टम को उपयोग करके नैनीताल जिले के सडक नेटवर्क, बाजार, चारा और बीज की उपलब्धता पर भौगोलिक नक्शे तैयार किये गये। इस सिस्टम में ब्लॉक स्तर पर जिले में उपलब्ध जल निकायों की जानकारी होती है। एक अनुकुलित जी.आई.एस. आधारित निर्णय समर्थन प्रणाली कुमाऊं हिल्स में मत्स्य पालन के लिए विकसित किया गया हैं। सिस्टम खोलने पर यह स्वचालित रूप से अवेदन के शीर्षक दर्शाता हैं और डेटाबेस में प्रवेश करके जलीय कृषि करने के लिए इस नैनीताल जिले के गांव के नाम का चयन करने के लिए पूछना हैं। गांव का नाम क्लिक करने के लिए एक कॉम्बो बॉक्स बनाया गया हे कारण इस जिले में हजार से अधिक गांवो हैं और सही नाम दर्ज करने पर यह सिस्टम उस गांव का नाम के साथ अक्षांश, देशांतर, जनसंख्या घनत्व, निकटतम हैचरी और बाजार आदि सामान्य जानकारी प्रदर्शित करता है। मेनू आधार पर बटन के माध्यम से बनाया गया हैं। बटन पर क्लिक करने के बाद यह संभावित मछली प्रजाति के लाभ के साथ बीज उपलब्ध स्थान का पता चलता हे। मॉडल के आधार पर एक मछली उत्पादन मॉडयूल एक खास गांव के लिए निश्चित समय अवधि के बाद मछली उत्पादन का अनुमान लगाने के लिए बनाया गया है।

जल कृषि विकास के लिए पानी की गुणवत्ता के मानकों पता लगाने के लिए डेटाबेस पर एक विकल्प बनाया गया है। इस मॉडयूल के तहत हम गांव में उपलब्ध पानी की गुणवत्ता पैरामीटर और विशेष रूप से तालाब के पानी की गुणवत्ता की जॉच करने के लिए विकल्प के आदर्श मूल्यों का पता लगा सकते हैं। इस डीएसएस क्षेत्र में पानी की गुणवत्ता प्रबंधन के लिए सुझाव देगा। एक ग्राफिकल यूजर इंटरफेस (GUI) भी तैयार किया गया हैं जो कि आम आदमी द्वारा संचालित किया जा सकता है और मत्स्य पालन गतिविधियों के बारे में कोई फैसला ले सकते हैं। अनुसंधान सॉफ्टवेयर पैकेज जनता के लिए उपयोग करने के लिए विकसित किया गया है जो की एक प्रामाणिक निर्णय समर्थन प्रणाली हैं। यह एक जीआईएस और आरएस सॉफ्टवेयर बिना स्वतंत्र डेस्कटॉप प्लेटफार्म में चलने वाला निर्णय समर्थन प्रणाली है।

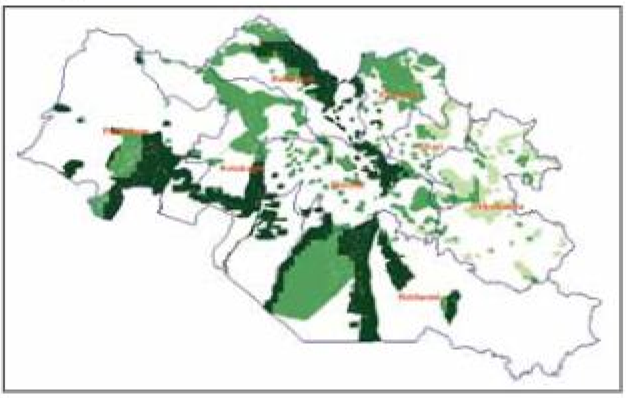

भू-सूचना प्रणाली द्वारा मत्स्य संसाधन प्रबंधन

प्रेम कुमार एवं ए के सिंह
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

परिचय

जलीय कृषि विश्व में सबसे तेजी से बढ़ती खाद्य उत्पादन प्रणालियों में से एक है। मात्स्यिकी देश के सामाजिक–आर्थिक विकास में एक कृषि का महत्वपूर्ण अंग है। मत्स्य पालन एक सस्ता और पौष्टिक भोजन का एक स्रोत है और इससे आय तथा रोजगार के अलावा विदेशी मुद्रा अर्जित की जा सकती है। मत्स्य पालन देश की आर्थिक रूप से पिछडी जनसंख्या जो एक बड़े वर्ग के लिए आजीविका का स्रोत है (अय्यप्पन और कृष्णन, 2004)। देश की बढ़ती जनसंख्या को उपयुक्त प्रोटीन आवश्यकता को पूरा करने के लिए, मछली उत्पादन बढ़ाया जाने की जरूरत है। राष्ट्र की मांग को पूरा करने के लिए भारत मे अंतर्देशीय मत्स्य पालन एक प्रयाप्त क्षेत्र है। जलीय कृषि की सफलता मिट्टी की मूल संरचना, पानी के उपयुक्त गुण और सुविधाओं पर निर्भर करता है।

भौगोलिक सूचना प्रणाली (जी.आई. एस.) अथवा भू–सूचना प्रणाली आकड़े संग्रहण, भंडारण, पुर्नप्राप्ति, और बदले हुए स्वरूप की भौगोलिक परस्थिति को प्रदर्शित करने का एक शक्तिशाली तंत्र है। इनमे उपयोग होने वाले उच्चतम गति के कंप्यूटरों और जिनमे आकडों का भंडारण तथा उपयुक्त आधार की जानकारी का विश्लेषण व प्रस्तुतिकरण तथा धरातली आकड़ों मूल्यांकन करता हैं, विभिन्न पर्यावरण योजनाओ एव संसाधनों का प्रबंधन के लिए निर्णय लेने मे तथा समस्या को सुलझाने मे वातावरण के लिए मददगार साबित हुआ हैं भौगोलिक सूचना प्रणाली–आधारित मॉडल का उपयोग स्थान चयन कार्य करने के लिए प्रभावी उपकरण हैं इसके अंतर्गत जो संरचित विश्लेषण तथा स्थानिक आकड़ों का संसाधन आकलन और प्रबंधन के प्रयोजनों के लिए रूपरेखा विकसित की जा सकता है। भू–सूचना प्रणाली के अंतर्गत स्थानिक और गैर–स्थानिक आकड़ों एकीकृत करके योजना के रूप मे लाया जा सकता हैं

संसाधन मापन

भौगोलिक सूचना प्रणाली तथा सुदूर संवेदन तकनीकी का प्रयोग करके मत्स्य संसाधन मानचित्रण स्वाभाविक रूप से मत्स्य पालन के क्षेत्रों के प्रदर्शन के अध्ययन में किया जाता है साथ ही मत्स्य पालन व संसाधन प्रबंधन की स्थिति तथा प्रत्येक प्रजाति की भौगोलिक वितरण को बताता हैं भौगोलिक सूचना प्रणाली तकनीकी मत्स्य संसाधन से संबधित महत्व पूर्ण आकड़ों एकत्रित करके भू–सूचना प्रणाली मानचित्र द्वारा मत्स्य पालन के लिए भूमि चुनाव किया जा सकता हैं। भौगोलिक सूचना प्रणाली तकनीकी द्वारा मत्स्य पालन व संसाधन प्रबंधन तथा समय–समय पर अध्ययन किया जा सकता हैं तथा स्थानिक और गैर–स्थानिक आकड़ों एकत्रित व संग्रह करके भविष्य की योजनाओ के लिए विश्लेषण किया जा सकता हैं

भू–सूचना प्रणाली द्वारा मत्स्य पालन के लिए स्थान का चयन

जलीय समूह जैसे नदी, तालाब, झील और मानव निर्मित जलाशय मुख्यत मीठे पानी के संसाधन हैं और मत्स्य उत्पादन की क्षमता बढ़ाने मे मददगार तथा आर्थिकी सुधार मे सहायक हो सकते हैं, हालांकि इन संसाधनों का उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से नहीं किया जा रहा हैं। अंतर्देशीय जल संसाधनों मे वैज्ञानिक योजना एवं प्रबंधन के द्वारा मत्स्य उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सकता हैं। भौगोलिक सूचना प्रणाली द्वारा प्रामाणिक निर्णय लेने के लिए जमीनी वास्तविकताओं, जल संसाधनों की भौतिक, रासायनिक और जैविक विशेषताओं के संपूर्ण जानकारी पर आधारित हैं। मत्स्य पालन पूर्णत पानी व मिट्टी की गुणवत्ता पर आधारित होता हैं जिन स्थानो पर पानी व मिट्टी की गुणवत्ता अच्छी हो उन स्थानो मे वैज्ञानिक ढंग मत्स्य पालन व मत्स्य फार्म स्थापित किया जा सकता हैं। इन स्थानो का मानचित्र भौगोलिक सूचना प्रणाली की सहायता से बनाया जा सकता है। जल गुणवत्ता के मानकों जैसे तापमान, पीएच, ऑक्सीजन, क्षारीयता, नाइट्रेट और फॉस्फेट इत्यादि, हैं। मत्स्य पालन के लिए स्थानो का चयन उपयुक्त नक्शो पर आधारित मापदंड तैयार किए जा रहे हैं।

मुख्यतः मत्स्य पालन के लिए उन स्थानों का चयन किया जाता हैं, जिन स्थानो मे

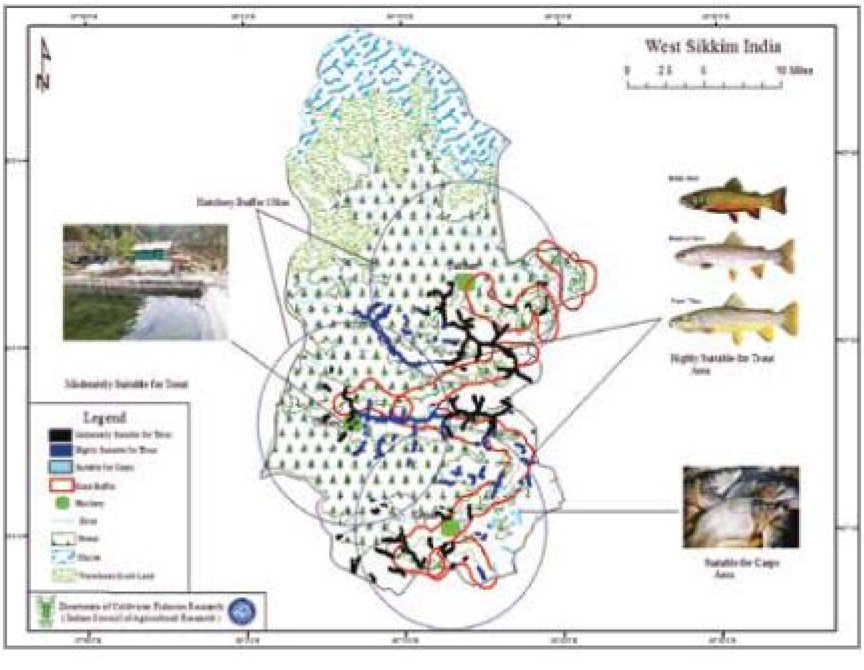

पानी के स्रोत कम दूरी पर हो, पानी के स्रोत मत्स्य पालन लिए प्रथम प्राथमिकता हैं। इस प्रणाली का उपयोग पहले भी किया जा चुका है। अंडमान और निकोबार द्वीप समूह मे मत्स्य पालन के उपयुक्त स्थान को बहुगुणा इत्यादि (1995)। कुमार इत्यादि (2004) (2004) भौगोलिक सूचना प्रणाली के माध्यम से LISS-III आकड़ों का उपयोग करके 1:50,000 पैमाने मे सागर द्वीप, सुंदरवन में मत्स्य–पालन के लिए भूमि चयनित की गयी। कार्तिक इत्यादि (2005) ने भौगोलिक सूचना प्रणाली और सुदूर संवेदन की तकनीकी के द्वारा समुद्री जल मे मत्स्य पालनके लिए संभावित स्थानो की पहचान की। उत्तराखंड प्रदेश के नैनीताल जिले में मत्स्य पालन के लिए उपयुक्तता मानचित्र तैयार किया गया हैं मानचित्र पूर्णत पानी की गुणवत्ता, व उपलब्धता, तथा मिट्टी के प्रकार, मूल संरचना आधारित हैं नायक इत्यादि (2014)।

मत्स्य–पालन स्थान चुनाव की प्रक्रिया

बहु मापदंड मूल्यांकन (MCE) प्राथमिकताओं की तीव्रता के संदर्भ में अभिव्यक्ति है जो अंततः एक बेहतर निर्णय लेने मे सहायता करता है। इस अवधारणा का मूल्यांकन प्राथमिकता के भार या मान पर किया जाता है। साते (1977) द्वारा विकसित विश्लेषणात्मक पदानुक्रम प्रक्रिया (AHP) के संदर्भ में तुलना पद्धति MCE में प्रत्येक पैरामीटर के सापेक्ष महत्व के आधार पर तुलनात्मक भार का इस्तेमाल किया जाता है। बहु मापदंड मूल्यांकन प्रक्रिया को भू–सूचना प्रणाली (GIS) द्वारा उपयोगकर्ताओं को निर्णय प्रक्रिया में सुधार करने के लिए मदद कर सकता है हुसैन इत्यादि (2009) ।

इस प्रक्रिया का उद्देश्य, सभी मापदंडो की वरीयता के आधार पर तुलनात्मक प्राथमिकता दी जाती है। मत्स्य पालन की प्राथमिकताएँ मूल्यांकन मानदंडों के संबंध में निर्णय मॉडल में पानी की गुणवत्ता और आधारभूत संरचना सुविधाओं को शामिल किया जा सकता है। FAO (1993) के अनुसार जलीय कृषि के लिए आवश्यकताओं के आधार पर मत्स्य–पालन स्थान चुनाव के लिए बनाए मानचित्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे सबसे उपयुक्त, कम उपयुक्त और अनुपयुक्त। पूर्व मे स्थापित किए गए ट्राउट फार्म तथा मत्स्य पालन के लिए भूमि चुनाव के दौरान यह पाया गया हैं, कई आर्थिक सामाजिक और पर्यावरणीय पहलुओं की अज्ञानता के कारण मत्स्य पालन उद्योग भारी नुकसान चुकाना पड़ा था। भौगोलिक सूचना प्रणाली (GIS) तकनीकी द्वारा मत्स्य पालन के लिए स्थानो के चयन मे समस्त पारिस्थितिकी तंत्र और पर्यावरणीय पहलुओं को ध्यान मे रख कर भूमि व स्थान का चुनाव किया जाता हैं इस सूचना प्रणाली का उपयोग कर के मत्स्य पालन योजनाओं तथा ट्राउट पालकों को काफी लाभ मिलेगा।

चम्पावत के तोली ग्राम में एन0 एफ0 डी0 बी0 द्वारा प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन

दिनांक 09–13 मार्च 2016 को निदेशालय ने चम्पावत केन्द्र ने ग्राम तोली में एन0 एफ0 डी0 बी0 द्वारा प्रायोजित पॉच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया। कार्यक्रम में ग्राम तोली के प्रगतिशील मत्स्य पालक श्री पीताम्बर दत्त गहतोड़ी ने मत्स्य पालन से लम्बे समय तक जुड़े रहने के अपने अनुभवों को साझा किया और बताया किस प्रकार वैज्ञानिक विधि व उचित प्रबन्धन से मत्स्य पालन के द्वारा भी ग्रामीण क्षेत्रों में इसे लाभकारी बनाया जा सकता है? इस कार्यक्रम के अवसर पर "फिश फार्मिंग इन हिल्स" नामक एक प्रशिक्षण मैनुअल भी हिन्दी में विमोचित किया गया। कार्यक्रम के दौरान मत्स्य कृषकों से आहार सम्बन्धी समस्याओं एवं उनके निराकरण के सम्बन्ध में भी बताया गया। इस कार्यक्रम में 13 महिलाओं के साथ पाटी विकास खण्ड के 11 ग्रामों से 12 पुरुष कृषकों ने भाग लिया।

तालाब की मछलियों को हानि पहुँचाने वाले कारकों से बचाव के उपाय

'रमेश सिंह चलाल, *आकांक्षा बिष्ट खाती, *पंकज कुमार, विपिन कुमार विश्वकर्मा
मत्स्य विभाग उत्तराखण्ड सरकार एवं *गो.ब.पंत कृषि एवं प्रौद्यो. विश्वविद्यालय, पन्तनगर

देश की आजादी के बाद अर्न्तस्थलीय मत्स्य पालन पर विशेष ध्यान दिया गया परन्तु यह मुख्यतः मैदानी क्षेत्रों तक की सीमित रहा। अर्न्तस्थलीय मत्स्य पालन की तरह से पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन का विकास नहीं हो सका और देश के अर्न्तस्थलीय मत्स्य उत्पादन में शीतजलीय मत्स्य पालन का मात्र 1 प्रतिशत का ही योगदान है। जनपद पिथौरागढ़ में प्राकृतिक जलस्रोत के रूप मे नदियों, झीलों, झरनों, गाड़–गधेरों, तालाबों के रूप में अपार जल सम्पदा उपलब्ध है। इन प्राकृतिक जल स्रोतों में पायी जाने वाली महाशीर, बर्फीली ट्राउट (असेला) तथा अभ्यागत कार्प प्रजाति की मछलियाँ व्यवसायिक रूप से महत्वपूर्ण हैं। जनपद में कार्प प्रजाति की मछलियों का सफल रूप से उत्पादन हो रहा है। विदेशी कार्प प्रजातियाँ 8–35 डिग्री सेन्टीग्रेट तापमान के पानी में सुगमता से रहकर वृद्धि तथा प्रजनन करती हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में मछली पालन की तकनीक मैदानी क्षेत्रों की तुलना में काफी भिन्न है।

जनपद में कृषकों के पास सीमित संसाधन उपलब्ध हैं जिनमें से केवल कुछ ही किसान मत्स्य पालन कर रहे हैं। यद्यपि किसान को अपने मछली उत्पाद का अच्छा मूल्य निकट के बाजारों में ही मिल जाता है, परन्तु इसमें होने वाली थोड़ी सी भी हानि किसान को काफी हद तक आर्थिक नुकसान पहुँचाती है। इसमे मुख्य रूप से साँप, चिड़िया एवं मनुष्य हैं। जिसमें साँप और चिड़िया तालाब की मछलियों को धीरे–धीरे लम्बे समय तक नुकसान पहुचाते रहते हैं एवं मनुष्य कभी–कभी पूरी मछली की फसल को नष्ट कर देता है, जिस कारण एक छोटी जोत के किसान के लिए बहुत बड़ा नुकसान होता है

पिथौरागढ़ जिले में मछली की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए किसान मत्स्य विभाग के साथ–साथ विभिन्न संस्थाओं के सहयोग से मछली पालन को बढ़ावा दे रही है। वर्तमान समय मे पिछले दस दशकों से जिले में लगभग चार सौ से भी ज्यादा छोटे एवं बड़े तालाब चालू हालत में विद्यमान है जिनमें मछली पालन का कार्य सफलता पूर्वक किया जा रहा है। मछली पालन का व्यवसाय जिले के किसानों के आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के साथ–साथ भोजन में प्रोटीन की कमी को दूर करने में काफी हद तक मददगार सिद्ध हो रहा है।यहाँ की प्राकृतिक जलधाराओं में मूल रूप से निवास करने वाली मछलियों में से मात्र असेला (बर्फीली ट्राउट) एवं महाशीर ही यवसायिक रूप से महत्वपूर्ण हैं तथा मछली पालन की दृष्टि से विदेशी कार्प प्रजातियों की मछलियों का व्यवसायिक उत्पादन सफल रूप से हो रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से पाली जा सकने वाली मछलियाँ विदेशी कार्प (सिल्वर, ग्रास एवं कामन) हैं, (महंता इत्यादि–2006, सिंह वी0 के0–2012)। पर्वतीय क्षेत्रों के समुद्र की सतह से 1000 मी0 से अधिक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में मछली पालन के लिए उपयुक्त समय 7 माह (मध्य मार्च से मध्य अक्टूबर) तक होता है तथा समुद्र की सतह से 1000 मी0 से कम ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों में यह समय 9 माह फरवरी से नवम्बर तक होता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में मछली की बढ़वार औसतन 200 ग्राम से 600 ग्राम तक पायी गयी है (वास के0के0–2012)। यह बढ़वार मछलियों की प्रजातियों, संचय के समय आकार, पानी के तापमान एवं सफल प्रबन्धन तथा पानी मे प्राकृतिक भोजन की उपलब्धता पर निर्भर करती है।

विदेशी कार्प की किस्में सबसे अधिक बढ़वार सामान्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में 600 से 800 ग्राम तक का वजन प्राप्त कर लेती है। समुद्र की सतह से 1000 मी0 से कम की ऊंचाई पर यह मछली 300 से 1200 ग्राम तक बढ़वार प्राप्त करती है जिसमें से ग्रास कार्प सबसे अधिक 800 से 1200 ग्राम तक का वजन प्राप्त करती है।

मछली पालन के व्यवसाय में बहुत सारे जीव जन्तुओं द्वारा मछली की फसल को

हानि पहुँचाई जाती है जिसमें सापों द्वारा मछलियों का भक्षण किया जाना प्रमुख है। किसानों के तालाबों में किये गये प्रयोगों से सिद्ध होता है कि समुद्र की सतह से 1000 मी0 से कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में एक तालाब की फसल में में औसतन रूप से लगभग 20 सापों को पकड़ा गया जबकि इसके विपरीत समुद्र की सतह से 1000 मी0 से अधिक की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में सॉपों को पकड़े जाने का औसत मात्र 5 ही रह जाता है। चूंकि पर्वतीय क्षेत्र में सीमित संसाधनों की वजह से छोटे–छोटे लगभग आधा नाली (100 वर्ग मी0) के तालाब ही बनाये जाते हैं जिस कारण से सापों द्वारा मछलियों के भक्षण से किसान को काफी ज्यादा हानि उठानी पड़ती है।

उक्त समस्याओं के निराकरण हेतु किसानों के तालाबों में जो परीक्षण किये गये उनके द्वारा सापों को नियंत्रित करने में काफी सहायता प्राप्त हुई है।

वर्ष 2009 से 2010 के मध्य 30 किसानों के 75 तालाबों में किसानों की फसल में होने वाली हानि के रोकथाम हेतु किये गये परीक्षणों का ब्यौरा निम्न प्रकार से हैं

(1) लोहे की जाली का प्रयोग– लोहे की 1–2 वर्ग मिमी0 जाली को लगभग 40–45 सेमी0 की चौड़ाई पर लम्बाई में काट लिया जाता है जिसमें से 10–15 सेमी0 जाली को तालाब के बन्धों में गाड़ दिया जाता है बांकि 25–30 सेमी0 को बाहर की ओर इस तरीके से मोड़ा जाता है कि यह अर्द्ध गोलाकार का रूप ले लेता है। यह रचना सापों को तालाब में अन्दर जाने से रोकती है। चूंकि जब सॉप इस जाली में चढ़ने लगता है तो सापों के शल्क तारों के कटीले हिस्से में फस जाते हैं जिससे सॉप आगे नहीं बढ़ पाता है। इस विधि में नुकसान यह है कि लोहे की जाली मंहगी होती है एवं 5–6 सालों में यह जाली गलकर बेकार हो जाती है।

(2) पी0 वी0 सी0 पाइप का प्रयोग– 0.5 से 1.0 इन्च व्यास के पी0 वी0 सी0 पाइप को 1–3 फीट की लम्बाई मे काटकर तालाब के बन्धों की दीवार में पानी की सतह के बराबर समानान्तर गाड़ दिया जाता है। जिसे लकड़ी की ठूंठ से बन्द कर दिया जाता है और दूसरे सिरे को तालाब के पानी ओर खुला रखा जाता है। सांप मछली पकड़ने के बाद किसी सुरक्षित स्थान जैसे छेदों को तलाशता है व इस प्रयास में पी0 वी0 सी0 पाइप के अंदर जाता है किन्तु जाने के बाद उसे अन्दर घुमकर वापस आने की जगह नहीं मिलती है और वह फंसकर रह जाता है, जिस पर लकड़ी या सरिया की छड़ से प्रहार कर मार दिया जाता है या फिर पूंछ बाहर रहने की दशा में खींचकर बाहर फैंक दिया जाता है।

(3) 0.5 से 1.0 इन्च व्यास के पी0 वी0 सी0 पाइप को 1–3 फीट की लम्बाई मे काटकर और एक सिरे को लकड़ी की ठूंठ से बन्द करते हैं फिर पाइप को बीच में रस्सी द्वारा बांधकर तालाब के विभिन्न गहराई पर लटका दिया जाता है। पुनः सांप आहार लेकर लटके हुये पाइप में घुस जाता है और बाहर नहीं आ पाता। धागे को खींचकर उसके वजन से अन्दाजा लगाया जाता है, कि पाइप में सांप घुसा है या नही यदि सांप फॅसा हो तो उसे उपरोक्त तरीके से मार दिया जाता है।

(4) तालाब के चारों ओर अर्द्धचन्द्राकार गोलेनुमा नाली का निर्माण– तालाब के चारों ओर अर्द्धचन्द्राकार गोलेनुमा 0.5 मी गहरी एवं 0.30 मी0 चौड़ी नाली खोदी जाती है जिसका एक छोर बाहर की तरफ खुलता है। जब सांप रेंगकर तालाब की ओर जाता है तो वह इस गड्ढे में गिर जाता है और बार–बार ऊपर चढ़ने की कोशिश करता है किन्तु गड्ढे की दीवार सपाट एवं अर्द्ध गोलाकार होने की वजह से सांप चढ़ नहीं पाता और सीधे बाहर की तरफ जाने वाली नाली को रास्ता समझकर बाहर निकल जाता है। इस विधि में समस्या यह है कि गड्ढे की सपाट दिवारों को आवारा पशुओं एवं जंगली जानवरों से क्षति पहुचती है जिसके मरम्मत में किसान की अतिक्ति लागत आती है।

(5) सुगन्धित पौधों का रोपण– इस विधि में सुगन्धित पौधों जैसे मेंथा, पुदीना एवं तुलसी आदि को तालाब के बन्धों के चारों ओर लगा दिया जाता है। इन पौधों से निकलने वाली सुगन्ध सापों को तालाब से दूर रखने में मदद करती है। इस विधि में इन पौधों के सूख जाने पर किसान सापों को तालाब में घुसने से नहीं रोक पाता जिससे मछली की फसल को नुकसान पहुंचता है।

(6) मछली की फसल को चिड़ियों द्वारा नुकसान– मछली की फसल को नुकसान पहुचाने वाली चिड़ियां तालाब के निकट ऊंचाई वाले स्थानों में बैठे रहते हैं जैसे ही कोई मछली सतह पर खाने आती है तो यह चिड़ियां मछली के उपर झपट्टा मारकर पकड़ लेती है। इनसे बचाव के लिये तालाब के किनारे बांसे के डंडे गाड दिये जाते हैं उस पर बारातों में प्रयोग होने वाली चमकदार पंतग या कैसेटों के रिलों अथवा पुरानी बेकार पड़ी सीडी डिस्कों आदि को लटका दिया जाता है जो धूप की रोशनी में चमक पैदा करती है जिससे यह शिकारी चिड़िया तालाब से दूरी बनाये रखती है।

(7) मछली की फसल को मनुष्यों द्वारा नुकसान– पर्वतीय क्षेत्रों में कुछ ही किसान मछली पालन के व्यवसाय को अपनाते हैं जिससे जब तालाब की मछलियां बड़ी होने लगती हैं तो आस–पास से गुजरने वाले लोगों की निगाह मछली की फसल पर पड़ती है और लालचवश रात में जाल द्वारा मछलियां चोरी करते हैं। इस दौरान तालाब की मछलियों को चोरी से बचाने के लिये कंटीले तार को तालाब में इस प्रकार बिछा दिया जाता है कि जब बाहरी व्यक्ति तालाब में जाल मारने की कोशिश करता है तो उसका जाल तालाब में फंसकर रह जाता है।

जनपद के 30 किसानों के 75 तालाबों में मछली उत्पादन में हानि से बचाव हेतु अपनायी गयी मुख्य विधियाँ

क्रम सं0	सांप रोकथाम उपाय	विधि अपनाने वाले किसानों की संख्या	तालाबों की संख्या	उपलब्धि
1	लोहे की जाली लगाना	2	4	VI
2	पाइप गाड़ना	5	11	II
3	चलायमान पाइप	15	35	I
4	अर्द्धचन्द्राकार गड्ढे बनाना	2	3	VII
5	सुगन्धित पौधों का रोपड़	4	9	III
6	तालाब में चमकदार वस्तुएं लगाना	4	6	IV
7	तालाब की तली में कंटीले तार बिछाना	3	5	V

परिणाम एवं वाद

इस प्रकार कृषकों के तालाबों में मछली पालन को हानि पहुचाने वाले कारकों से बचाव के लिए लगाये गये उपकरणों में से कृषकों द्वारा सबसे अधिक अपनायी गयी विधियों में क्रमशः चलायमान पाइप, पाइप गाड़ना, सुगन्धित पौधों का रोपड़, तालाब में चमकदार वस्तुएं लगाना, तालाब की तली में कंटीले तार बिछाना, लोहे की जाली लगाना, अर्द्धचन्द्राकार गड्ढे बनाना रहे। ये विधियां मछली उत्पादन को बढ़ाने में सहायक रहीं।

सार संग्रह

महन्ता पी0सी0 एवं सुन्दर एस0 (2006)– विदेशी कार्पो का उच्च हिमालयी जल स्रोतों में – राष्ट्रीय कार्यशाला '' भारत में मछली उत्पादन, चुनौतियां एवं संशाधन'' सितम्बर 16–17एन0बी0एफ0जी0आर0 लखनऊ

सिंह वी0के0 (2012)– ''पर्वतीय क्षेत्रों में समन्वित मछली एवं मुर्गी– सब्जी उत्पादन'' संपादक प्रसार शिक्षा निदेशालय गो0व0प0 कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर।

वास के0के0(2012)– '' भारत में शीत जलीय मत्स्य अनुसंधान की स्थिति'' शीत जलीय सिल्वर जुबली कम्पेडियम– पी0पी0 25–42।

अरुणाचल प्रदेश एवं पं0 बंगाल के राज्य मात्स्यिकी अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम

दिनांक 15–19 जनवरी 2015 को निदेशालय ने कलिंगयोंग, जिला दार्जिलिंग, (पं0 बंगाल) में "झोरा मात्स्यिकी प्रबन्धन" तथा राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर (अरुणाचल प्रदेश) में "प्रमुख शीतजल मत्स्य प्रजाजियों के प्रजनन" पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किऐ। इस अवसर पर व्याख्यान के अतिरिक्त मत्स्य पालकों को झोरा मत्स्य तालाबों में ले जाकर भी प्रदर्शन किया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम का मुख्य उददेश्य झोरा मत्स्य तालाबों में ग्रास कार्प, कामन कार्प, कतली के लिए प्रबन्धन सम्बन्धी तकनीकी जानकारियों को प्रदान करना था। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम से राज्य मत्स्य विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्रो, के 33 अधिकारी लाभान्वित हुए।

घर में सजाएँ मछलियों का आशियाना

एस. जी. एस. जैदी
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

अपने घर को सजाने के लिये के लिये लोग क्या कुछ नहीं करते, फिर इसमें सजीवता लाने के लिये एक्वेरियम से अच्छी और क्या चीज हो सकती है। शाम को जब आप काम से थके हारे लौटें तो थोड़ी देर के लिए ही सही घर में लगे सुंदर से एक्वेरियम को निहारें तो आपको लगेगा जैसे आप किसी दूसरी दुनियाँ में पहुँच गए हैं। सुंदर सुंदर रंगबिरंगी चंचल मछलियों को देखने में जो सुखद आनंद की अनुभूति और मन को शांति मिलती है उससे आपकी दिनभर की थकान और तनाव अपने आप ही खत्म हो जाता है। यही नहीं आज के इस कंप्यूटर युग में बच्चों में एक्वेरियम के प्रति लगाव इन्हें कंप्यूटर स्क्रीन से हट कर प्रकृति प्रेम की भावना को भी जाग्रत करता है। फिश एक्वेरियम सिर्फ घर की सुंदरता ही नहीं बढ़ाता बल्कि घर के वास्तु दोष को भी दूर करता है। फेंगशुई के अनुसार घर में फिश एक्वेरियम रखने से सुख–समृद्धि आती है।

अक्सर ही यह देखने को मिलता है कि लोग जब पहली बार एक्वेरियम रखते हैं तो यह कुछ दिनों तक ठीक से मेंटेन रहता है, फिर धीरे धीरे इसका पानी गंदा होने लगता है, मछलियाँ मरने लगती हैं और पौधे पीले पड़ कर खराब होने लगते हैं, जिसकी वजह से लोग जल्द ही हताश और निराश हो जाते हैं। इसलिए एक्वेरियम को रखने से पहले इसके रखरखाव के बारे में समुचित जानकारी का होना आवश्यक हो जाता है। एक्वेरियम में पानी की गुणवत्ता और पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने के लिए बहुत सी बातों पर ध्यान देने की अवश्यकता होती है। इसे पूरी लगन और मेंहनत के साथ अंजाम देने की जरूरत होती है, तभी आप इसे अच्छी तरह से मेंटेन रख पाएंगे और इस अभिरुचि का एक लंबे समय तक आनंद उठा सकेंगे। यदि आप एक्वेरियम रखने की अभिरुचि के प्रति गंभीर हैं, तो अब आपका यह दायित्व हो जाता है कि इन पाली हुई मछलियों के लिये साफ फिल्टर्ड पानी, भरपूर मात्रा में ऑक्सीजन (एरिएशन), पर्याप्त रोशनी (लाइटिंग), उचित तापमान (हीटिंग), और मछलियों के स्वभाव अनुरूप परिदृश्य (सब्सट्रेट और सजावटी समान) का समायोजन करके मछलियों को अनुकूल वातावरण में रखने का प्रयास करें। इन सभी बताए गये अवययों को एक के बाद एक किस तरह से समायोजित किया जाए इसी पर आगे चर्चा की गयी है।

आप ने जब यह इरादा कर ही लिया है कि घर में एक अच्छा सा एक्वेरियम रखना है, तो इसके पहले कुछ बातों पर गंभीरता से विचार करें, जैसे घर में किस जगह पर एक्वेरियम रखना चाहते हैं ? किस तरह का और कितना बड़ा एक्वेरियम खरीदना चाहते हैं ? किस तरह की मछलियाँ रखना चाहते हैं ? आप इस पर कितना पैसा खर्च कर सकते हैं और कितना समय दे सकते हैं ? ये कुछ बुनियादी सवाल हैं जिन्हे आपको पहले सोचना होगा।

एक्वेरियम रखने के स्थान का चयन करें:

एक्वेरियम टैंक के लिए एक उपयुक्त स्थान का चयन करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान रखना चाहिये।

- ऐसी जगह न चुने जहां पर से बार बार आना जाना लगा रहता हो जैसे मुख्य द्वार के पास।
- ऐसी जगह जहां पर सूरज की रोशनी सीधे टैंक पर पड़ती हो, वहाँ न रखें, ऐसा होने से शीशे पर हरी काई जमने लगती है और पानी भी गर्म हो सकता है।
- टैंक को इतनी ऊंचाई और ऐसी जगह पर रखें जो हर जगह से दिखाई दे जिसको आराम से बैठ कर निहारने का आनंद उठाया जा सके।
- ऐसी जगह पर रखें जहां पर बिजली के स्विच पास में हों और टैंक की सफाई के वख्त पानी को आसानी से बाहर निकाला जा सके।

टैंक साइज

एक्वेरियम कितने बड़े साइज का होना चाहिये यह एक अहम सवाल है। आमतौर से लोग यही सोचते हैं कि छोटे एक्वेरियम को मेंटेन करना ज्यादा आसान होता है पर यह सोचना बिलकुल गलत है। वास्तव में छोटे एक्वेरियम में जल की गुणवत्ता को लंबे समय तक बनाए रखना एक अनुभवी अक्वेरिस्ट के लिए भी मुश्किल होता है इसलिए यह सलाह दी जाती है कि जहां तक संभव हो सके बड़े साइज के एक्वेरियम को खरीदें।

एक्वेरियम स्टैंड का चयन करना

एक्वेरियम रखने के लिए एक मजबूत स्टैंड की आवश्यकता होती है। आप को यह मालूम होना चाहिए कि लगभग 100 लीटर

एक्वेरियम स्टैंड के प्रकार

वुडन केबिनेट

एंगल आयरन स्टैंड

वुडन स्टैंड

पानी की क्षमता वाले टैंक का वजन 125 किलो से भी अधिक होता है। इसलिए इसके लिए विशेष रूप से बनाए गए एंगल अयरन के स्टैंड या फिर मौजूदा मजबूत फर्नीचर जो आपके एक्वेरियम का वजन संभाल सके उस पर रख सकते हैं। फ्लाईवुड से बने केबिनेट अधिक वजन नहीं ले सकते हैं इसलिए इन पर कोई भी बड़ा टैंक न रखे। इसके अतिरिक्त स्टैंड का समतल होना जरूरी होता है, यदि सतह लेवल नहीं है तो टैंक के काँच पर असामान्य दबाव पड़ने से यह टूट सकता है।

टैंक का ढक्कन (लाइटहुड)

एक्वेरियम टैंक को उपर से ढंका होना चाहिए, इससे मछलियाँ उछल कर बाहर नहीं जा पातीं हैं, इसके अलावा यह पानी के वाष्पीकरण को कम करता है और लाइट फिट्टिंग्स को लगाने मे काम आता है। बाजार मे कई किस्म के लाइटहुड मिलते हैं जिन्हे अपनी पसंद से चुन सकते हैं।

वाटर फिल्ट्रेशन सिस्टम

यह एक्वेरियम के सबसे उपियोगी और महत्वपूर्ण घटकों में से एक है। पानी में विलीन जैविक या अजैविक तथा अन्य विषाक्त तत्वों को यांत्रिक, जैविक (बायोलाजिकल) तथा रसायानिक फिल्ट्रेशन द्वारा अलग कर के पानी को शुद्ध बनाए रखा जाता है। इस प्रकार टैंक में पानी की वांछनीय गुणवत्ता मछलियों के स्वभाव अनुरूप बनी रहती है और पानी क्रिस्टल सा पारदर्शी बना रहता है और इसके साथ ही टैंक के रख रखाव के बोझ को भी कम करता है। एक्वेरियम में फिल्टर का चुनाव इस बात पर भी निर्भर करता है कि टैंक कितना बड़ा है और इसमे कितनी मछलियाँ और बायोलोड उपस्थित है। आमतौर से एक्वेरियम में स्पंज फिल्टर, पवार फिल्टर, केनिस्टर फिल्टर और अंडर ग्रवेल फिल्टर लगाए जाते हैं। अंडर ग्रवेल फिल्टर बहुत प्रभावी और उपयुक्त फिल्टर होते हैं। टैंक में यदि अधिक संख्या में मछलियाँ रखीं हो तो बड़े फिल्टर्स का प्रयोग किया जाता है।

ऐरियेशन और ऐयर–पम्प

एक्वेरियम में एयरपंप का प्रयोग एयरस्टोन द्वारा एरियेशन के लिये या फिर स्पंज फिल्टर और अंडर ग्रवेल फिल्टर को चलाने के लिए किया जाता है। हमें यहाँ यह जानना जरूरी है कि पानी में ऑक्सीजन का विसरण केवल हवा के बुलबुलों द्वारा ही नहीं होता है बल्कि बुलबुलों के लगातार प्रवाहित होने से पानी में टरबुलेन्स पैदा होता है जिससे पानी का सर्कुलेशन ऊपर से नीचे लगातार होता रहता है। इस प्रकार पानी की ऊपरी सतह से वायुमंडल की ऑक्सीजन लगातार पानी में विसरित होती रहती है, इसके साथ ही पानी का तापक्रम भी समान बना रहता है। आजकल बाजार में अनेक प्रकार के एयरपम्प और एयरस्टोन उपलब्ध हैं इन्हे आवश्यकता अनुसार ट्युबिंग क्नेक्टर्स तथा अन्य एक्सेसरिज की मदद से लगाया जा सकता है। एयरपम्प को हमेंशा पानी की सतह से ऊपर लगाना चाहिए जिससे यदि पंप बन्द भी हो जाए तो इसमें लगी एयरट्यूब द्वारा पानी सायफन होकर एयरपम्प में प्रवेश न कर सके।

एयरपंप

एयरस्टोन

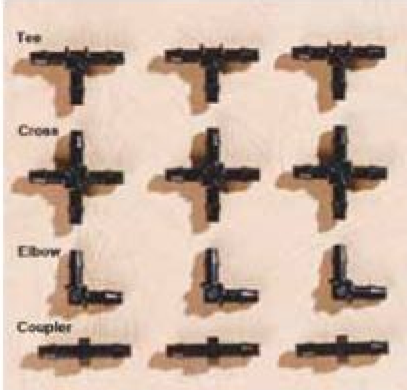

कनेक्टर्स

लाइटिंग

एक्वेरियम में एक अच्छी लाइट व्यवस्था का होना बहुत जरूरी होता है। यह इसके आकर्षण को बढ़ाता है और मछलियों के रंगों को भी निखारता है। यदि टैंक में जीवित पौधे लगे हों तो लाइट व्यवस्था पर विशेष ध्यान देना चाहिए। आजकल एक्वेरियम की दुकान पर बहुत किस्म की कॉम्पैक्ट फ्लोरोसेंट ट्यूब, मेंटल हेलाइड, अधिक रोशनी देने वाली ज–5 लाइट और एलईडी लाइट उपलब्ध है। फुल इस्पेक्ट्रम डेलाइट फ्लोरिसेंट ट्यूब और बल्ब जो 5000 से 6000 केल्विन का

फ्लोरोसेंट ट्यूब

एक्वेरियम केबिनेट के प्रकार

मेंटल हेलाइड

एलईडी लाइट

प्रकाश देते है एक्वेरियम के लिए उत्तम माने जाते हैं। एक्वेरियम में प्रति वर्ग फुट पानी की सतह क्षेत्र के लिए 10 वाट की प्रकाश तीव्रता पर्याप्त मानी जाती है।

एक्वेरियम ग्रवेल का चुनाव

यह एक्वेरियम में मुख्य तीन उद्देश्यों को पूरा करता है। सबसे पहले, यह सजावट के रूप में कार्य करता है जिससे टैंक सुंदर लगता है, दूसरा यह अंडर ग्रवेल फिल्टर को फिल्टर मीडिया प्रदान करता है और तीसरे यह पौधों की जड़ों को आधार प्रदान करता है। एक्वेरियम में गहरे रंग की ग्रवेल सुंदर लगती है, इससे मछलियों के रंगों में निखार आता है। ग्रवेल की तह 2 से 3 इंच तक मोटी और इसका साइज 3द्5 एम.एम. के बीच होना चाहिए। नदियों की रेत से छानी गयी ग्रवेल अच्छी मानी जाती है। इसको उपियोग करने से पहले पानी से कई बार अच्छी तरह से धोना चाहिए।

सजावटी वस्तुओं (एक्वेरियम डेकर्स) का चुनाव

एक्वेरियम टैंक में नैसर्गिक दर्शय को चित्रित करने और उसे अधिक आकर्षित बनाने के लिये कुछ सजावटी वस्तुओं को भी रखना पड़ता है। इन वस्तुओं को खरीदते समय टैंक की लेआउट योजना और इसकी क्वालिटी पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। ये डेकर्स केवल सजावटी ही नहीं होते हैं बल्कि मछलियों को छुपने का आश्रय भी प्रदान करते हैं। रॉक्स या पत्थर एक्वेरियम को सजाने के लिए बहुत ही उपयोगी होते हैं। इनकी बहुत सी किस्में होती हैं परन्तु स्लेट और लावा पत्थर जो निष्क्रिय होन की वजह से उपयुक्त होते हैं। बागवुड या ड्रिफ्टवुड भी एक आकर्षक एक्वास्केप बनाने में सहायक होते हैं, इससे एक्वेरियम में प्रकृतिक सौंदर्यता आती है। इसको टैंक मैं लगाने से पहले कई दिनों तक पानी में भीगोकर रखते हैं जिससे इसमें उपस्थित रंग और ओर्गेनिक एसिड निकल कर खत्म हो जाते है। इसके अतिरिक्त टैंक को सजाने के लिये अनेक प्रकार के सजावटी सामान मिलते हैं जिन्हें आप अपनी इच्छा अनुसार चुन कर लगा सकते हैं।

एक्वेरियम ग्रवेल

बागवूड बगवूड

पौधों का चुनाव

एक्वेरियम यदि सजीव पौधों से सजा हो तो यह बहुत ही सुंदर दिखाई देता है। पौधे एक्वेरियम के पानी में ऑक्सीजन बढ़ाते हैं और घुले हुए रासायनिक अवययों के बीच संतुलन बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। एक सुव्यवस्थित प्लांटेड एक्वेरियम को मेंटेन करना वास्तव मे एक चुनौतीपूर्ण कार्य है और इसका एक अलग ही विज्ञान है। इसके लिए अलग किस्म की लाइटिंग व्यवस्था, विशेष सब्सट्रेट, फिल्टर, पौधों की लिए पोषक तत्वों और CO_2 का समायोजन इत्यादि की व्यवस्था करनी पड़ती है। यदि आप एक्वेरियम पौधों के बारे में अधिक नहीं जानते हैं तो यह सलाह दी जाती है की आप सामान्य प्रजाति के पौधों को रखें जिनका रख रखाव मुश्किल नहीं होता है, या फिर आर्टिफिशियल पौधों को रखें।

मछलियों का चुनाव

एक्वेरियम में मछलियों का डालना एक अहम और रोमांचकारी पहलू होता है, इसमें किस प्रकार की मछलियों को डालें यह आपकी पसंद पर निर्भर करता है परंतु यदि आप को अधिक अनुभव नहीं है तो पहले कुछ हार्डी प्रजातियों की मछलियों का चुनाव करें। बाजार में विभिन्न प्रकार की सुंदर और आकर्षक मछलियाँ मिलती हैं परंतु इन सभी मछलियों को एक साथ नहीं रखा जा सकता है। कुछ मछलियाँ शांत और कुछ बहुत ही उग्र स्वभाव की रहती हैं इसलिये मछलियों को खरीदने से पहले इनके स्वभाव के बारे में अवश्य ही जानकारी हासिल कर लें। एक्वेरियम में मछलियों का कई तरह से संयोजन किया जा सकता है जैसे कम्यूनिटी टैंक में विभिन्न प्रकार की शांत और समान स्वभाव वाली मछलियों को एक साथ रखा जा सकता है, या केवल आकर्षक गोल्डफिश या विशिष्ट प्रजाति वाले टैंक जैसे चिचलिड टैंक आदि प्रमुख हैं।

एक्वेरियम सेट करने का तरीका

एक सुंदर और आकर्षक एक्वेरियम को व्यवस्थित ढंग से स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि इसमे पर्याप्त आक्सीजन बनाए रखने के लिए एक एरिएटर, प्रभावी फिल्टर, रोशनी के लिये उपयुक्त लाइट, तापमान को स्थिर रखने के लिये बढ़िया हीटर और सुंदर साज

एक्वेरियम के लिए कुछ प्रमुख मछलियां

गप्पी फिश

सिल्वर मोली

प्लेटी फिश

सोर्डटेल

गोल्डफिश

फैनटेल गोल्डफिश

नियान टेट्रा

बियूनोज टेट्रा

सर्पी टेट्रा

टाइगर बार्ब

जेब्रा डेनिओ

टिन फोइल बार्ब

ब्लू गौरामी

फाइटर फिश

पर्ल गौरामी

एंजेल फिश

डिस्कस फिश

फायर माउथ सिकलीड

एक्वेरियम प्लांट्स

कार्क स्क्रू वेलीस्नेरिया

अमेजन सोर्ड प्लांट

केबोम्बा

रेड लुड्वीगिया

हाइग्रोफिला या एक्वारोज़

लिमनोफिला या अम्बूलिया

बेकोपा

हाइग्रोफिला पोलिस्पर्मा

क्रिप्टोकोरिन

रेड लोटस प्लांट

सज्जा के समानों को कलात्मक ढंग से सजा कर एक साथ रखा गया हो। सवाल अब यह उठता है कि इन सभी काम की चीजों को एक सा किस तरह से सजों कर रखा जाए। शुरु में तो यह काम कठिन तो लगता है पर आप अगर यहाँ बताए गये कुछ सरल कदमों का अनुसरण करते जाएँ तो यही काम बहुत ही रोमांचकारी बन जाता है।

1. एक्वेरियम को सेट करने से पहले इसे अच्छी तरह पानी से धोकर साफ करें। कहीं कोई दाग धब्बे दिखाई दे रहे हों तो साफ करें। टैंक में थोड़ा पानी भर के सुनिश्चित करें कि कहीं कोई जगह से लीक तो नहीं कर रहा है, यदि कहीं से पानी टपक रहा हो तो इसका तुरंत ही समाधान करें।
2. एक्वेरियम को जिस स्टैंड या स्थान पर रखना है उसे अच्छी तरह से साफ करें और सुनिश्चित करें कि जगह पूरी तरह से समतल है। यदि कहीं से ऊंची नीची हो तो इसे पैकिंग लगा कर सामतल करें। अब उस पर एक 12 एम.एम.मोटी थर्मोकोल शीट रख कर टैंक को सावधानी पूर्वक इस पर रखें।
3. यदि उंडर ग्रवेल फिल्टर लगा रहे हों तो इसके सभी भागों को निर्देशानुसार फिट कर के टैंक के तल पर रखें।
4. इसमें लगाई जाने वाली सभी वस्तुओं को पानी से अच्छी तरह से धोएँ। सबसे पहले ग्रवेल को कई बार पानी से धोएँ जब तक कि अच्छी तरह से साफ न हो जाए। सजाने वाले पत्थरों को कई बार पाने से धोएँ। यदि ड्रिफ्ट वुड इस्तेमाल कर रहे हो तो इसे कुछ दिनों पहले ही पानी में भिगो कर रखे।
5. यदि आप बड़े पत्थर या राक्स का इस्तेमाल कर रहे हों तो इन्हें सबसे पहले फिल्टर प्लेट पर रखें और इस पर पहले से धोई हुई ग्रवल की तह को इस तरह से बिछाएँ कि इसका स्लोप पीछे से आगे कि तरफ दिखाई दे।
6. इसमें लगाए जाने वाले अन्य बड़े साज सज्जा के समान इनकी स्थिति के अनुसार व्यवस्थित करें।
7. एयर ट्यूबिंग और एयर स्टोन्स को ग्रवेल में छिपाते हुए रबर सकर कि मदद से अच्छी तरह फिक्स करें।
8. यदि हीटर लगाना है तो इसे लगा कर इसके तार को अच्छी तरह से राक्स या अन्य सजावटी सामानो के पीछे अच्छी तरह से छुपाएं। यदि सजावटी प्लास्टिक पौधों को लगाना है तो इन्हे इसी समय यथावत स्थान पर अच्छी तरह से लगाएँ।
9. अब सावधानी पूर्वक इसमें धीरे धीरे पानी इस तरह भरें जिससे इसमे सजाई गयी वस्तुएँ और ग्रवेल अस्त व्यस्त न हों। पानी के प्रवाह को कम करने के लिये ग्रवेल पर कोई प्लेट रख दें। अब इसमें लगाए गए सभी उपकरणों को चालू करके देखें कि सभी यथावत काम कर रहे हैं या नहीं। शुरू में पानी थोड़ा सा धूमिल और गंदा सा दिखाई देता है इसलिए टैंक को सेट होने के लिये फिल्टर्स को एक दो दिनों तक चालू रख कर छोड़ दें जिससे पानी बिलकुल साफ हो जाएगा।
10. टैंककवर पर लाइट फिटिंग्स को फिट कर के टैंक पर ठीक तरह से लगाएँ और लाइट को चालू करें।
11. टैंक का मोआयना करें और देखें कि सब कुछ यथावत चल रहा है या नहीं। लैंडस्केपिंग में कहीं कोई बदलाव करना है तो इच्छानुसार करें।
12. टैंक अच्छी तरह से सेट हो जाने पर अब इसमें मछलियाँ डाल सकते हैं। इसमें जिस तरह कि मछलियाँ आप रखना चाहतें हैं उन्हें उन्हें एक साथ न खरीद कर थोड़ी थोड़ी खरीद कर लाएँ। जिस पोलिथीन थैली में मछलियाँ लाएँ हैं उसे कुछ देर तक पानी की सतह पर ही तैरता हुआ रखे जिससे पानी का तापक्रम समान हो जाए।

एक्वेरियम को अच्छी तरह व्यवस्थित रखने की कुछ युक्तियाँ

- एक्वेरियम का प्रतिदिन अवलोकन करें कहीं कोई मछ्ली बीमार या विचलित तो नहीं दिखाई दे रही है।
- सभी उपकरण ठीक तरह से काम कर रहे हैं।
- यदि कहीं कोई मछ्ली मर गई हो तो फौरन उसे निकालें।
- दिन में दो बार खाना थोड़ा थोड़ा डालें।
- सप्ताह में एक बार 10 से 20: पानी को बदलें।
- काँच और अन्य उपकरणो को सप्ताह में एक साफ करें।

प्रजनन

मध्य हिमालय क्षेत्र में सजावटी मछलियां: गोल्ड फिश तथा कोई कार्प का सफल प्रजनन एवं पालन-पोषण

आर.एस. पतियाल, सुरेश चन्द्रा राजेश एम. बीजू सैम कमलम एव अमित कुमार जोशी
भा.कृ.अनु.परि.–भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

ठण्डे जल वाली अंलकारिक मछलियों में गोल्ड फिश तथा कोई कार्प का प्रजनन प्रचलित है। इनके अण्डे स्वभावतः से चिपचिपे होते हैं।

अण्डे देने वाली मछली				बच्चे देने वाली मछली
चिपकने वाले अण्डे देने वाली मछली Eg:- Gold Fish Koi Carp	बिना चिपकने वाले अण्डे देने वाली Eg:- Zobra Fish	घोसला बनाने वाली Eg:- Guramis	अण्डा जमा करने वाले Eg:- Rasbora	Eg :- Guppy, platy, swordtail, Black Moli

प्रारम्भिक अवस्था में नर और मादा मछली समान आकार व प्रकार की होती है। प्रजनन काल के दौरान मादा मछली की परिपक्वता का अंदाजा उसके कोमल व फूले पेट को छू कर व गुदा का लाल रंग देखकर एवं गर्भाशय पर हल्का दबाव देकर लगाया जा सकता है कि वह प्रजनन के लिए तैयार है अथवा नहीं। नर मछली के गुदा के पास हल्का दबाव दिया जाये तो शुक्र रस का तेज प्रवाह इसके परिपक्व होने की पुष्टि करता है।

कोई कार्प नर व मादा मछलियों को कृत्रिम प्रजनन हेतु हार्मोन की सुई लगाई जाती है जिससे अण्डे या बच्चे बाहर निकल सकें। एक–दो नर का शुक्र रस (मिल्ट) एक मादा से निकले अण्डों के निशेचन हेतु पर्याप्त होता है। इन मछलियों के अण्डे चिप–चिपे होते हैं इसलिए इनको प्रजनन के दौरान हाइड्रिला या प्लास्टिक के कट्टो के धागों का गुच्छा बना कर टैंक में परपिक्व मछलियों के साथ डाल देना चाहिए। मादा मछली, हॉर्मोन की सुई लगने के लगभग 14 से 18 घण्टें बाद अण्डे बाहर निकालती है। निकले अण्डे हाईड्रिला की पत्ती से चिपक जाते हैं तथा मादा के पश्चात् नर भी अपने शुक्र रस को निष्कारित करते है।

एक गोल्ड फिश लगभग 2000–3000 तथा कोई कार्प 1,00000–1,50000 निष्कारित करती है।

निषेचित अण्डे गोलाकार, चिपचिपे व पारदर्शी होते हैं जबकि अनिषेचित अण्डे अपारदर्शी होते हैं। परिपक्व मछलियों का प्रजनन करने के लिए उनका पालन पोषण उचित प्रकार से करना चाहिए ताकि 90 प्रतिशत से अधिक अण्डे निशेचित हो सकें। हैचरी के अनुकूल वातावरण में 15–23°C से.ग्रे. तापक्रम पर 72–120 घण्टो में गोल्ड कार्प तथा 16–23°C से.ग्रे तापक्रम पर 84–144 घंटों में कोई कार्प का प्रस्फुटन (हैचिंग) एवं 2–3 दिनों में अण्डपीत (योकसैक) का पूर्ण अवशोषण हो जाता है। प्रजनन के दौरान जल की गुणवत्ता का अधिकतम ध्यान रखना चाहिए। ठण्डे जल की मछली के जल की गुणवत्ता का मापदंड (1मि.ग्रा./लीटर = 1 पी.पी.एम) स्वतन्त्र अमोनिया – 0.02 मि.ग्रा./लीटर, नाइट्राइट (No2) – 0.2 मि.ग्रा./लीटर, खुली खुली आक्सीजन निम्नतम 5–6 मि. ग्रा./लीटर, तथा नाइट्रेट – अधिकतम 50 मि.ग्रा./लीटर तक रखना आवश्यक है। कोई कार्प तथा गोल्ड कार्प के जीरा (फ्राई) जिस टैंक में पाले जा रहे हों वह स्वच्छ होना चाहिए तथा ऑक्सीजन का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। अण्डपीत का पूर्ण अवशोशण हो जाने पर बीजों को जीवित तथा कृत्रिम भोजन देना चाहिए।जीवित भोजन में प्लवक पानी में घोलकर देना उत्तम होता है। जीवित भोजन उपलब्ध न होने पर बीजों को कृत्रिम भोजन जैसे कि उबले अण्डे की जर्दी पानी में घोल के प्रत्येक 2 घण्टों में देना चाहिए।

मछलियों के बीजों का पालन एवं पोषण

तालाब में मछलियो का संचय दर दस मछली/तालाब (जीरा अवस्था के साथ)

प्रजननः गोल्ड फिश एवं कोई कार्प

डालना उचित रहता है। मछली को तालाब में डालने से पहले उपलब्ध स्थान के अनुसार तालाब बनाकर मछलियों का पालन किया जाता है। तालाब छोटे लगभग 1 X 2 X 0.5 फीट तथा बड़े बनाये जा सकते है। इसके बाद पानी में प्लवक की मात्रा बढ़ाने के लिए बीजों के संग्रह के 2 सप्ताह पूर्व जल में खाद जैसे कि गोबर 10000–15000 किग्रा/है0. डालना चाहिए। मछलियों के बीजों को नर्सरी तालाब में डालने के एक महीने पूर्व तालाब की तैयारी शुरु कर देनी चाहिए। सर्वप्रथम यह जॉच लेना चाहिए कि तालाब में बड़ी तथा जंगली मछलियां तो नहीं है। तालाब में संचित मछलियों के लिये प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक खाद्य (प्लवकों) उपलब्ध कराने तथा जलीय परिवेश को उत्तम बनाए रखने के लिये विभिन्न प्रकार के कार्बनिक एवं अकार्बनिक खादों का उपयोग किया जाता हैं। इससे वर्ष भर मछलियों को प्राकृतिक आहार मिलता रहता है, साथ में तालाब का पारिस्थितिकी तन्त्र भी सन्तुलित रहता है। एक सामान्य तालाब को उत्पादक बनाने के लिये गोबर की खाद के अलावा 100 किग्रा0 नाइट्रोजन एवं 50 किग्रा0 फास्फोरस की मात्रा की जरूरत प्रति हे0 प्रति वर्ष पड़ती है। यह मात्रा 250 किग्रा0 यूरिया एवं 320 किग्रा0 फारफोरस जिसमें फारफोरस हो का प्रयोग करके पूर्ण की जा सकती है। यह मात्रा तालाब के पानी की गुणवता के अनुसार कुछ घटाई या बढाई जा सकती हैं रासायनिक एवं कार्बनिक खादों (गोबर इत्यादि) का 15 दिन के अन्तराल में देना ज्यादा उपयोगी है।मछलियों के बीजों को नर्सरी तालाब में डालने से पूर्व पानी की गुणवत्ता को जॉच लेना चाहिए तथा यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि तालाब में लम्बी घास तथा कीड़े न हो।तालाब में कीड़े उपस्थित होने की स्थिति में 50 किग्रा./है0. सरसों या नारियल का तेल तथा 18 किग्रा./है0. साबुन के घोल को मिलाकर बीजों के संग्रह के 2 दिन पूर्व तालाब में डालना चाहिए।

भोजन

उपलब्धता तथा परिस्थितियों के अनुसार इन मछलियो को विभिन्न प्रकार के आहार दिए जा सकते है। बासी रोटियों को सुखाकर उसको मिक्सी में बारीक पीसकर भी चारा दिया जा सकता है। आजकल बाजार में मछलियों के लिए कृत्रिम अर्थात् तैयार आहार उपलब्ध है। सामान्यता 80 प्रतिशत घरों में अलंकारिक मछलियों को यही कृत्रिम भोजन दिया जाता है।अंलकारिक मछलियों के भोजन में प्रोटीन 30–40 प्रतिशत, वसा 4–8 प्रतिशत, और कार्बोहाइड्रेट 30–50 प्रतिशत होना चाहिए। मछली के बीजों के भोजन में (40–50 प्रतिशत) प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। इसके अलावा 1 प्रतिशत विटामिन व मिनरल का चूर्ण भी इस आहार में होना चाहिए। कृत्रिम भोजन के साथ–साथ अंलकारिक मछलियों को Infusoria, (इनफ्यूसोरिया) Artemia, (अर्टिमिया) Daphnia, Blood worms, Tubifex, Water fleas, sudge worm, mosquito larva Copphed Earthworm जैसा जीवित भोजन भी देना चाहिए।

घरेलू भोजन जैसे गेहूं से बना ब्रेड और चावल भी मछलियों को आहार में दिया जाता है। गोल्ड फिश तथा कोई कार्प

एक सर्वहारी जीव है। समान्यता भोजन में पेड़–पौधे, कीड़े जैसे– मच्छर के लार्वा, Small Rustaceans प्राणि प्लवक (Zooplancton) खाती है। इनके भोजन में प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। पालतू आवस्था में इनको जीवित भोजन, घरेलू भोजन के साथ–साथ कृत्रिम और पहले बना हुआ तैयार भोजन दिया जा सकता है। भोजन की मात्रा तथा प्रकार मछलियों को आकार, प्रजाति तथा मौसम के आधार पर देनी चाहिए। भोजन जरूरत के अनुसार दिन में दो बार दिया जाता है। अधिक मात्रा में भोजन दिये जाने से बचना चाहिए क्योंकि अधिक मात्रा में दिये जाने वाला भोजन पानी की गुणवत्ता को कम कर देता हैं।

हिल ट्राउट (बेरिलियस बेंडेलिसिज) का प्रजनन एवं भ्रूणीय विकास का अध्ययन

आर.एस. पतियाल, नेहा सक्सेना, मीर जावेद
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

सारांश

बेरिलिस बेन्डेलिसिज (वंश साइप्रिनिड) सामान्यता हिल ट्राउट के नाम से जानी जाती है। यह मछली द0 एशिया के साफ, उथले और ठण्डे जल में प्रवास करती है। इस अध्ययन द्वारा पहली बार प्रयोगशाला में बेरिलियस बेन्डेलिसिज के प्रजनन, भ्रूणीय विकास तथा लार्वा विकास का वर्णन किया जा रहा है। यह मछली मार्च से अप्रैल के मध्य अंडे देती है। तालाबों में ओवाटाइड द्वारा बेरिलिस बेन्डेलिसिज का प्रजनन शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल द्वारा किया गया है।

परिचय

हिल ट्राउट, (वंश–साइप्रिनिड) सामान्यता साफ उथले, ठण्डे जल में प्रवास करती है (गुरूंग इत्यादी 200)। यह द0 पूर्व एशिया के उच्च स्थानों पर पाई जाने वाली मछली है। यह मछली सामान्यता भारत, बांग्लादेश, नेपाल (तलवार एवं झिंगरन 1991) म्यांमार, पाकिस्तान, थाईलैण्ड, और श्रीलंका में पाई जाती है। भारत में इस मछली की प्रजातियाँ गंगा व ब्रह्मपुत्र के अपवहन क्षेत्रों तथा हिमालय की तलहटी में मिलती है। इस मछली का संकुचित शरीर, शरीर के पार्श्व पक्ष पर काले व नीले रंग के उर्ध्वाधर बैंड और मूल शरीर के मध्य के पीछे से पृष्ठीय पंख की उत्पत्ति आदि इस मछली की प्रमुख विशेषताऐं हैं।

वयस्क मछली सामान्यतः नदी, नालों, छोटी नदियों, धाराओं तथा पहाड़ों की तलहटी पर पथरीले तल में पाई जाती है। आई. सी.यू.एन. की लाल सूची के अनुसार इस मछली को संकटग्रस्त मछली की श्रेणी में रखा गया है। यद्यपि यह मछली हिमालय की नदियों में खतरे पर है (कुरूप इत्यादी 2004)। बेरिलिस बेन्डेलिसिज मत्स्य पालकों के बीच एक लोकप्रिय सजावटी मछली के साथ – साथ अपने भोजन में महत्व के कारण देहरादून व उत्तर प्रदेश में प्रसिद्ध है। हाल के दिनों में इस प्रजाति को काफी नुकसान पहुंचा है। इस कारण प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम करने तथा मांग की पूर्ति हेतु इस प्रजाति के प्रजनन एवं संरक्षण को ही एक मात्र उपाय के रूप में देखा गया है (स्केब इत्यादी 2011)।

सामग्री एवं विधियाँ

तालाबों में प्रजननः प्रजनक मण्डार का संचयन एवं रखरखाव

मछलियों को कुमाऊं क्षेत्र की गोला नदी (290 17′ 25′′ N 790 32′ 143′) से एकत्र कर उनका कीटाणु शोधन के पश्चात शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय भीमताल में मत्स्य फार्म में सीमेंट के तालाबों में पालन–पोषण किया गया। मछली को भोजन में प्रतिपूरक आहार, 33 प्रतिशत कच्चा प्रोटीन, 11.1 प्रतिशत कच्चा फाइबर, 33 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट खिलाया गया। उचित पर्यावरण में उनका पालन और रख रखाव के बाद लिंग भेद के अनुसार स्वस्थ व प्रौढ़ प्रजनकों को चुना गया तथा इनको एफ.आर.पी. ट्रफों (200सेमी. x 200सेमी. x 200सेमी.) में स्थानान्तरित किया गया। एफ.आर.पी. ट्रफों में पानी के प्रवाह की उचित व्यवस्था की गयी। नर व मादा मछलियों को 1:1 में रखा गया। शाम के समय मादा प्रजनकों को उनके शरीर के भार के 0.6 मिली/किग्रा. तथा नर प्रजनकों को उनके शरीर के भार के 0.3 मिली/किग्रा. के अनुसार इन्टरापेरिटोनियल, हारमोन ओवाटाइड किया गया। लगभग 12 –15 घण्टे बाद मादा मछली से अण्डे आयताकार काँच की ट्रे में निकाले गऐ। बाद में निकाले गए अण्डों को शुक्राणुओं से निशेचित करवाया गया। 0.9 प्रतिशत नमक के घोल में इस मिश्रण को हल्के हाथों से पंख द्वारा मिलाया गया तथा अतिरिक्त मिल्ट को अण्डों से निकालने के लिए अण्डो को ताजे जल से कई बार धोया गया। कुछ समय पश्चात निशेचित अण्डों को सेंने के लिए ट्रफो से ट्रे में स्थानान्तरित किया गया।

परिणामस्वरूप नवोद्भिद् लार्वे पारदर्शी पीले रंग की जर्दी के साथ, 5.6 से 0.56 मिमी0 (4.75 –6.71) आकार के प्राप्त हुए। जिनमें वी आकार का म्योमर्स उपस्थित था। पूंछ का पंख गोलाकार, मुड़ा हुआ तथा लार्वा में छोटी रंगीन, चमकीली आँख उपस्थित थी। 12 घण्टों के उद्मायन के पश्चात लार्वा की कुल लम्बाई 5.6–6.7 मिमी0 थी। तंत्रिका तंत्र पृष्ठ–दंड और पाचन तत्रं अलग – अलग पहचाने जा सकते थे। धीरे – धीरे पृष्ठ दंड पूंछ की ओर संकरा होता जाता है। इस में अल्प विकसित उत्सर्जक तंत्र भी देखा गया। आँख के पास श्रवण कैप्सूल दिखाई देने लगे थे। कान की पुटिकाओं के भीतर दो ओटोलिंट्स (Otolitns) काले बिन्दु की तरह दिखाई देने लगे।

एक दिन बाद का लार्वा

लार्वा की कुल लम्बाई 6.07 ± 3.1 (5.6–6.7) मि.मी. थी। उपरी तथा निचले जबडों का निर्माण होना शुरु हो गया था किन्तु मुंह व गुदा का छिद्र अभी तक नहीं खुला था। जर्दी की मात्रा काफी कम हो गयी थी। अल्पविकसित गिल द्वार अलग से पहचाने जा सकते थे। धीरे – धीरे दिल की धड़कन 116 –120 स्पन्दन / मिनट तक बढ़ गयी और थोड़ा रंगीन रक्त पूरे परिसंरण तंत्र में दिखाई देने लगा। लार्वा धीमी गति से उपर और नीचे गति करने लगे थे। आप्टिक पुटिका दिखाई देने लगी थी तथा नथुने बनने लगे थे।

दो दिन बाद

लार्वा की कुल लम्बाई 0 6.5 मिमी0 ± 0.38 मिमी0 (5.80–7.09 मिमी) हो गयी व जर्दी की थैली लगभग समाप्त हो गई। कुछ लार्वो ने बाहर से भोजन खाना आरम्भ कर दिया था आँख की मांसलता पूरी तरह से विकसित हो गई एवं क्षैतिज गति होना भी शुरु हो गई थी। ओपरकुलम (Operiсulum) के आगे का विस्तार देखा गया था। प्लीहा और यकृत का विकास शुरु हो गया था।

तीन दिन बाद

लार्वा की कुल लम्बाई 7.3 ± 0.13 मिमी0 (7.10 – 7.67 मीमी0) थी। लार्वा के दिल की धड़कन (130 स्पन्दन / मिनट) अधिक सशक्त हो गई थी। सभी लार्वों ने बाहर से भोजन खाना शुरु कर दिया तथा जर्दी की थैली पूरी तरह से समाप्ति हो गई थी तथा मुँह दिखाई देने लगा था। पैक्टोरल फिन अपनी मूल स्थिति पर आने लग गऐ थे। मिलानोपोर पूरे शरीर में फैल गया था, परन्तु सिर व पृष्ठीय पूंछ पर वर्णक की अधिकता थी। पाचन तंत्र अच्छी तरह से विकसित हो चुका था। ऐअर ब्लैडर दिखाई देने लगे।

पाँच दिन बाद

लार्वा की कुल ल0 8.22 मिमी0 ± 1.06 (7.15 – 9.25 मिमी0) थी। पाचन तंत्र आहार से पूरी तरह भरा हुआ था। बाहर से यकृत, अग्न्याशय तथा ऐअर ब्लैडर साफ –साफ दिखाई दे रहे थे। मस्तिष्क के बुनियादी घटकों का विकास हो गया था। सिर और शरीर के पार्श्व भाग पर रंजकता अधिक थी।

9 दिन बाद

लार्वा की लम्बाई 10.11 मिमी0 ± 5.2 (9. 2–11.02 मिमी0), पृष्ठीय तथा गुदा फिन को आसानी से अलग–अलग पहचाना जा सकता था। आहार नाल भोजन से भरी हुई थी। बाहर से गिल संरचना साफ – साफ दिखाई दे रही थी।

15 दिन बाद

लार्वा की कुल लम्बाई 12.0 मिमी0 ± 0.5 (11.09 –13.0 मिमी0) तथा दुम के फिन के आधार पर एक काला धब्बा दिखाई देने लगा था। ऐअर ब्लैडर में दो कक्ष दिखाई देने लगे थे। पूंछ के पंख की धारियां और अधिक स्पश्ट हो गई थी। सघन रंजकता पूरे शरीर में दिखायी दिऐ।

21 दिन बाद

लार्वा की कुल लम्बाई 12.07 मिमी0 ± 1.19 (11.0 –15.0 मिमी0) थी। सभी पंख अलग एवं पंखों की धारियां पूर्ण रूप से विकसित थी। पैक्टोरल फिन के नीचे उतक दिखाई दिऐ।

30 दिन बाद

लार्वा की लम्बाई 14.1 मिमी0 ± 0.88 (17.0 – 20.0 मिमी0) तथा पैक्टोरल में शल्क दिखाई देने शुरु हो गये थे। मुँह वयस्क की भांति दिखाई देने लगा तथा निचला जबड़ा उपरी जबड़े से छोटा दिखायी दिया।

45 दिन बाद

लार्वा की कुल लम्बाई 18.6 मिमी0 ± 0.88 (17.0 – 20.2 मिमी0) थी। शरीर के पार्श्व भाग पर उर्ध्वांधर बैण्ड की उपस्थिति को छोड़कर लार्वा वयस्क का लघु रुप प्रदर्शित कर रहा था।

60 दिन बाद

लार्वा की कुल लम्बाई 20.66 मिमी0 ± 2.90 (16.0–26.0 मिमी0) थी। शरीर के पार्श्व भाग में नीले रंग के छोटे – छोटे बैण्ड दिखाई देने लगे।

विचार विमर्श (Discussion)

यह अध्ययन तालाब में प्रजनन, अंडे व लार्वा के प्रारंभिक विकास का वर्णन कर रहा है। जानकारी के अनुसार तालाबों में प्रजनन, भ्रूण तथा लार्वा को विकसित करने का यह पहला प्रयास है। अंडों का सफल उद्‌भवन और लार्वा विकास के लिए अण्डों का आकार तथा अंडों की गुणवत्ता एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान अध्यय के अनुसार, बेरिलियस बेंडेलिसिज के लार्वा का विकास उश्मायन के 30 दिन बाद पूरा होता है और 60 दिन बाद इसका आकार, रंजकता पैटर्न आदि वयस्कों की भांति हो जाती है। इस तरह यह किशोरावस्था में पहुँच जाता है। बेरिलियस बेंडेलिसिज के लार्वा विकास से सम्बन्धित यह अध्ययन साइप्रिनिडी कुल की दूसरी मछलियों जैसे बेरिलियस कनेरेंसिज, बारबस शारपई, टूटर एवं खुद्री की तरह ही है।

इस अध्ययन में के द्वारा बेरिलियस बेंडेलिसिज के भ्रूण के विभिन्न रुपात्मक विकास और लार्वा ओंटेजिनी के साथ – साथ अंग विकास के विभिन्न चरणों में जाँच की गई है।

बेरिलियस बेंडेलिसिज की पहचानः बांया चित्र मादा व दायां चित्र नर

परिपक्व नर व मादा बेरिलियस बेंडेलिसिज

बेरिलियस बेंडेलिसिज के निषेचित अंडे

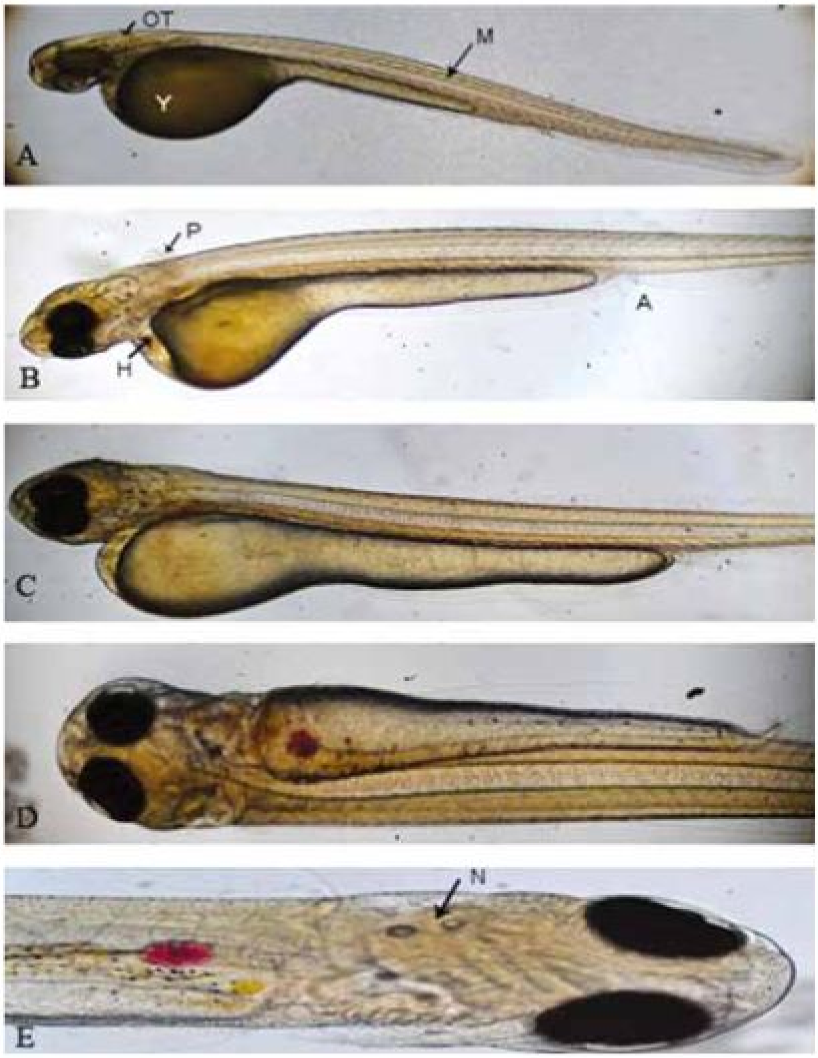

बेरिलियस बेंडेलिसिज के लार्वा का विकास।
ए. नवोद्भिद् लार्वा; बी. 12 घण्टे बाद का लार्वा; सी. एक दिन बाद का लार्वा; डी. 21 दिन बाद का लार्वा ई. 31 दिन बाद का लार्वा

पर्वतीय क्षेत्रों में कामन कार्प (साइप्रिनस कार्पियो) का प्रजनन एवं बीज उत्पादन

सुरेश चन्द्रा
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, चम्पावत केन्द्र

कॉमन कार्प वस्तुतः एक विदेशी मछली है। जिसकी प्रमुख रूप से तीन उपजातियां पायी जाती है। जैसे की मिरर कार्प, स्केल कार्प एवं लैदर कार्प भारत में स्केल कार्प का आगमन सन् 1957 में हुआ था जो कि बैंकाक से लायी गयी थी इसलिये इसको बैंकाक स्टेन भी कहते है। एशिया में जलजीव पालन में एक प्रमुख मत्स्य है। जो मैदानी क्षेत्रों में रोहू, कतला, मृगल, ग्रास कार्प एवं सिल्वर कार्प के साथ समन्वित मत्स्य पालन तकनीक में पाली जाती है किन्तु मध्य हिमालयी क्षेत्रों में यह सिल्वर कार्प एवं ग्रास कार्प के साथ मुख्य रूप से पाली जाती है। इस नई समन्वित मत्स्य में एक वर्ग मीटर में 3–4 अंगुलिकायें (1–2इंच) 40–45 प्रतिशत ग्रास कार्प, 30–35 प्रतिशत कॉमन कार्प तथा 20–30 प्रतिशत सिल्वर कार्प के साथ पाली जाती है। सप्ताह में प्रतिदिन कृत्रिम आहार जिसमें 40 प्रतिशत खली, 30 प्रतिशत चावल का चौकर, 10 प्रतिशत गेहूँ का चौकर तथा 10 प्रतिशत सोयाबीन का आटा होता है जो कि मछली के वजन का 2–3 प्रतिशत की दर से दिया जाता है। पानी की गुणवत्ता सुचारू रूप से हो इसके लिए महिने में 2–3 बार चूना 400 किग्रा प्रति हैक्टे. तथा लाल दवा 1लीटर प्रति हैक्टे. की दर से छिड़काव करना उचित होता है। इस प्रकार वैज्ञानिक तरीका अपनाकर हम अच्छा मत्स्य उत्पादन ले सकते हैं।

प्रजनन

कॉमन कार्प एक बहुप्रजनक मछली है। मैदानी इलाकों के तालाबों व झीलों में इसका प्राकृतिक प्रजनन होता है, परन्तु वहाँ बच्चों की उत्तरजीविता प्रायः कम पाई जाती है। किन्तु पहाड़ी इलाकों में इसका प्रजनन प्राकृतिक रूप से होने में कठिनाई होती है। अतः सकल बीज उत्पादन के लिए नियन्त्रित अवस्था प्रजनन आवश्यक है। प्रजनन के लिए पूर्ण रूप से प्रजनकों का चयन आवश्यक है ताकि प्रजनन के आशातीत परिणाम प्राप्त किये जा सकें।

प्रजनन विधि

मैदानी क्षेत्रों में कॉमन कार्प प्रायः पूरे वर्ष प्रजनन करती है किन्तु प्रजनन का मुख्यतः दो समय स्पष्ट देखने में आता है। वर्षा ऋतु एवं शरद ऋत जब जल का तापमान 28 से 30°C तक हो जाता है। पहाड़ी क्षेत्रों में यह अप्रैल से जून के बीच प्रजनन करती है क्योंकि पहाड़ी क्षेत्रों में जल का तापमान अप्रैल के बाद ही बढ़ता है।

नर व मादा प्रजनकों की पहचान

पहाड़ी इलाकों में अप्रैल से जून के बीच इनका प्रजनन होता है। स्थानीय तापमान के उपर यह समय परिवर्तित हो सकता है, अतः नर व मादा प्रजनकों की अवस्था की पहचान करते रहना चाहिए। प्रजनकों (ब्रूड फिश) का चयन करते समय नर और मादा की पहचान निम्न लक्षणों के आधार पर की जा सकती है।

नर प्रजनक

1. पेक्टोरल पंख छूने पर खुरदरा प्रतीत होता हैं।
2. जननांग में कोई उभार नहीं होता है। बल्कि यह धॅसा हुआ होता है।
3. पेट सधारण रूप से उभरा हुआ प्रतीत होता है।
4. पेट पर गुर्दे के निकट दबाव डालने पर सफेद दूध जैसा पदार्थ (मिल्ट) निकलता है।

नर मछली

मादा प्रजनक

1. पेक्टोरल पंख में खुरदुरापन नहीं होता है।
2. जननांग उभरा और लालिमा लिए हुए होता है।
3. अण्डों की बजह से पेट काफी उभार लिए (फूला हुआ) प्रतीत होता है।
4. पेट पर गुर्दा के निकट दबाव डालने पर अण्डे बाहर निकलते हुए प्रतीत होते हैं।

मादा मछली

प्रजनकों का चयन

प्रजनन हेतु जोड़ा बनाने के लिए प्रजनकों को तालाब से सवधानीपूर्वक निकालकर नर तथा मादा प्रजनकों को अलग–अलग स्थान पर रखते हैं। प्रजनकों के प्रजनन के लिए रखते समय नर मादा को वजन में बराबर तथा 1 मादा के साथ 2 नर अथवा 2 मादा के साथ 3 नर की संख्या में रखते हैं।

प्रजनन स्थान

कॉमन कार्प का प्रजनन साधारणतः कपड़े से बने प्रजनन हापे में / प्लास्टिक पूल में/ फाइबर ग्लास टैंक में कराया जाता है।

प्रजनन हापा

विधि

प्रजनकों के जोड़े बनाने के पश्चात उन्हें प्रजनन हापाओं में अथवा सीमेंन्ट या फाइबर ग्लास के टैंकों में छोड़ दिया जाता है। अण्डे की चिपकने की प्रवृति के करण चिपकने हेतु सतह प्रदान करने के लिए हापा में जलीय पौधे जैसे हइड्रिला या जल कुंभी जड़ सहित आदि को साफ पानी में धोकर समान रूप से फैला दिया जाता है। साधारणतः 1 किग्रा की मादा के लिए कई किग्रा जलीय पौधे रखे जाते हैं। प्रजनन के लिए प्लास्टिक की स्ट्रिप काटकर उसका भी प्रयोग किया जाता है। प्रजनन के लिए 28–32° सेन्टिग्रेट तापमान उचित है। नर मादा प्रजनकों में 10–12 घण्टे में अण्डे जनन की प्रक्रिया पूरी हो जाती है। प्रजनन प्रक्रिया को सरल बनाने लिए कृत्रिम हार्मोन्स जैसे– ओवाप्रिम, ओवाटाइड, वोवा एफ एवं पीयूष ग्रन्थि का घोल इत्यादि का प्रयोग भी किया जा सकता है। इन हार्मोन्स की मात्रा प्रजनकों की परिपक्वता के अनुसार 0.1–0.2 मि. ली. /किग्रा. मछली होती है।

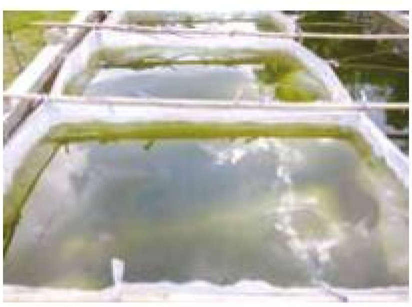

प्रजनन के बाद अण्डे जलीय पौधे की सतह से चिपक जाते हैं। प्रजनन के बाद प्रजनकों को हापा अथवा टैंकों से बाहर निकाल देना चाहिए। 1 किग्रा मादा औसतन 1 लाख अण्डे देती है। निषेचित और अनिषेचित अंगों का रंग देखकर उनकी पहचान की जा सकती है। निषेचित अण्डे मटमैले पीले रंग के होते हैं जबकि अनिषेचित अण्डे दुधिया रंग के दिखई देते हैं। तथा निषेचित अण्डों की तुलना में अनिषेचित अण्डे आसानी से दिखाई देते हैं।

हैचिंग

अण्डे लगे हुए जलीय पौधों को हैचिंग हापा में समान रूप से फैलाकर रख दिया जाता है। अण्डों से (हैचलिंग जीरा) निकलने की क्रिया 28–32° से.ग्रे. जलीय तापमान पर प्रायः 48 घंटों में पूरी हो जाती है।

कम तापमान पर हैचिंग में अधिक समय लगता है। हैचिंग प्रक्रिया पूरी हो जाने के बाद जलीय पौधों को हापा से बाहर निकाल देना चाहिए तथा हैचलिंग को हापा में ही रहने देते हैं। हैचिंग के 72 घंटे (3 दिन) के बाद हैचलिंग का पीतक (योक) पूरी तरह खत्म हो जाता है। हैचलिंग इसी योग का 72 घंटे तक खाना लेती तथा उसके बाद जीरे को बाहरी भोजन की आवश्यकता पड़ती है। अतः उनको मत्स्य बीज के लिए तैयार नर्सरी तालाबों में संग्रहित कर दिया जाता है।

प्रजनन हेतु सावधानियाँ

प्रजनन काल के 1 माह पूर्व नर तथा मादा प्रजनकों को अलग–अलग तालाबों में रखना चाहिए। नर तथा मादा प्रजनकों को एक ही तालाब में रखने से अनियन्त्रित अण्डजनन हो सकता है।

कॉमन कार्प के प्रजनकों को रखने वाले तालाबों में पानी की सतह तथा पानी के अन्दर घास अथवा जलीय पौधे नहीं होने चाहिए। कॉमन कार्प प्रजनकों को प्रजनन के लिए रखने से पहले नर तथा मादा का चयन भली भाँति कर लेनी चाहिए क्योंकि नर तथा मादा के चयन में शारीरिक बनावट एक जैसी दिखने के कारण त्रुटि हो सकती है।

चूंकि कॉमन कार्प एक बहुप्रजनक मछली है। अतः इसका प्रजनन किसी भी ऋतु में आसानी से कराया जा सकता है। मत्स्य कृषक इस तकनीक द्वारा कम लागत का उपयोग अपनाकर स्वरोजगार के साथ–साथ अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं।

सहभागिता

मीठे पानी की मछलियों के उत्पादन में महिलाओं की भूमिका

नीतू शाही

भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

भारत विश्व में मीठे पानी की मछलियों के सबसे बड़े उत्पादक देशों में से एक है। एशिया का दूसरा सबसे बड़ा मीठे पानी का स्त्रोत यहाँ स्थित है। लेकिन अधिकांश मीठे पानी के स्त्रोतों का उपयोग मत्स्य उत्पादन के लिए नही हो पाया है। इस प्रकार ग्रामीण महिलाएं इन जलाशयों में मत्स्य उत्पादन द्वारा अतिरिक्त आय और अधिक प्रोटीनयुक्त खाद्य का उत्पादन कर सकती है। वे निम्न तकनीकियों को अपनाकर मत्स्य पालन से आय अर्जित कर सकती है

सजावटी मछलियों का उत्पादन तथा प्रजनन

सजावटी मछलियों का उत्पादन और प्रजनन अत्यधिक लाभप्रद है जो कम पूंजी तथा कम स्थान लेता है। इसमें प्रारम्भ के समय अधिक निवेश की आवश्यकता नही होती। यह बहुत छोटे स्थान में कम टैंको में किया जा सकता हैं। गप्पिज, मॉलिज, फाइटर फिश अन्य मूल प्रजातियों का प्रजनन भारत के दक्षिण भाग की शहरी और ग्रामीण महिलाओं में अतिरिक्त आय स्त्रोत के रूप में सामान्य व्यवसाय है। यह सामान्यतः घरों के पीछे के आंगनो में छोटे सीमेन्ट या प्लास्टिक टैंकों में किया जाता है।

खाद्य मछलियों का संवर्द्धन

असम, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और अन्य उत्तर पूर्वी राज्यों के ग्रामों में घरों के पीछे आंगन में तालाब सामान्यतः पायें जाते है। इन तालाबों में मेजर और माइनर कार्पो के साथ कैटफिश भी पाली जाती है। रसोई घरों से निकला अपशिष्ट इन मछलियों के भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है तथा तालाब को मुर्गियों के मल तथा गाय के गोबर द्वारा उर्वरित किया जाता है। इस प्रकार उत्पन्न अधिकांश कार्बनिक अपशिश्ट को प्रोटीनयुक्त मछली में परिवर्तित किया जाता है, जो कि परिवार को प्रोटीनयुक्त भोजन देने के साथ घर की आय को बढाता है। इस तंत्र में मछलियों के उत्पादन में लागत मछलियों के व्यवसयिक उत्पादन की तुलना में बहुत कम होती है। 200 मी0 2 क्षेत्रफल के तालाब से लगभग 100 किग्रा0 मछली प्रति वर्ष मिलना संभव है। तालाबों के बंधों का उपयोग अतिरिक्त आय के स्त्रोत के लिए सब्जी उत्पादन तथा मुर्गी पालन के लिए उपयुक्त स्थान के रूप में किया जा सकता है, इन तालाबों का प्रयोग मछली के बीजों के पालन पोषण के लिए भी किया जा सकता है।

1 मछली पकड़ने के सामान का निर्माण

मछलियों के परिवहन के लिए मछली पकडने का जाल, मछलियों के फंदे तथा टोकरियों के निर्माण को महिलाएं कुटीर उद्योग के रूप में अपना सकती है। राधेश्याम तथा सहयोगियों (1988) द्वारा उड़ीसा में किया गया अध्ययन यह दर्शाता

है कि एक बार प्रशिक्षित करने पर महिलाऐं जाल निर्माण करके खेतिहर मजदूरी की अपेक्षा अधिक आय अर्जित कर सकती है। महिलाऐं बर्फ के साथ ताजी मछली को पैक करने के लिए बडी टोकरियॉ बनाकर भी निश्चित रूप से लाभन्वित होंगी, जैसे कि सभी महत्वपूर्ण मत्स्य उत्पादन केन्द्रों में इनकी बहुत मांग है।

2 मछलियों का विपणन

भारत मे मीठे पानी की मछलियॉ अधिकतर पुरूषों द्वारा विपणित की जाती रही हैं। जबकि परम्परागत रूप से समुद्री मछलियों का खुदरा विपणन महिलाओं द्वारा किया जाता है। अधिक औद्योगिकरण के साथ मछली और मछली के उत्पादों के लिए अवशीतन तथा रेफ्रिजेरेटेड बिक्री केन्द्र अधिक संख्या में स्थापित किये जाने के लिए बाध्य कर रहे हैं। जैसे की महिलाएं मछलियों के खुदरा बाजार के लिए अधिक उपयुक्त हैं, उन्हें ऐसे बिक्री केन्द्रो का संचालन करने के लिये उपयुक्त प्रोत्साहन जैसे– कम ब्याज दरों पर लोन देकर निवेश तथा कार्यशील पूंजी के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

3 मछली के उत्पाद तथा सह उत्पादों की तैयारी

मत्स्य पालन के माध्यम से मछली उत्पादन में वृद्धि के साथ प्राथमिक उत्पादकों के हितों की रक्षा के लिए और साथ ही बाहरी उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शायद जल्द ही प्रयोग करने के लिए तैयार उत्पादों का निर्माण आवश्यक हो जाएगा। शहरीकरण की तेज रफतार आगे आने वाले वर्षों में जमे हुए फीसेटस की मांग विशेषकर उच्च और मध्यम वर्ग के बीच बढा सकती है। इसी प्रकार ऐसे हल्के तले और जमे हुए मछली के उत्पाद का भी शहरी क्षेत्रों में बाजार ढूंढना चाहिए। ग्रामीण महिलाओं को इस तरह के उत्पादों की तैयारी में उचित प्रकार से प्रशिक्षण और रोजगार दिया जा सकता है। कुछ प्रजातियाँ जैसे कि सिल्वर कार्प और ग्रास कार्प को जब शुद्ध रूप में बेचा जाता है तो एक अच्छा मूल्य प्राप्त नही होता, तो इन मछलियों के पालन का शुद्ध रिटर्न बढाने के लिए इन्हें उचित ढंग से संसाधित करके बाजार में अन्य रूपों में बेचा जा सकता है।

उत्तराखण्ड के जनजातीय क्षेत्र में निदेशालय द्वारा मत्स्य उत्पादन–प्रदर्शन

दिनाँक 11.02.2016 को शी.ज.मा.अनु. निदेशालय, भीमताल द्वारा उत्तराखण्ड के ऊधमसिंह नगर जिले के थारू–थिसोर ग्राम में 70 पुरूष एवं महिला मत्स्य उत्पादकों के समक्ष 1 वर्ष में पाली गयी मछलियों का तालाब में जाकर प्रदर्शन किया गया। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य जनजाति समूहों में मत्स्य पालन के प्रति जन–जाग्रति लाना था ताकि उनकी सामाजिक– आर्थिक स्थिति बेहतर हो सके। इस कार्यक्रम में वैज्ञानिकों एवं मत्स्य कृषकों के मध्य मत्स्य पालन से जुड़ी समस्याओं पर भी चर्चा हुयी, साथ ही श्री सुखदेव सिंह द्वारा एक वर्ष में पाली गयी मत्स्य सम्पदा का भी प्रदर्शन हुआ। कार्यक्रम में दो प्रगतिशील कृषक श्री सुखदेव सिंह एवं श्री लक्ष्मण सिंह को 'सराहना पत्र' भी प्रदान किए गए। निदेशक डॉ0 ए.के.सिंह ने कृषकों से आग्रह किया कि वे फार्मों के स्थायित्व के लिए एकीकृत विधि को अपनाऐं। कार्यक्रम का आयोजन डॉ. आर.एस.पतियाल, प्रभारी जनजाति उपयोजना द्वारा किया गया। कार्यक्रम को सफल बनाने में डॉ प्रेम कुमार, डॉ एन.एन. पाण्डे एवं श्री अमित कुमार जोशी ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

शीतजल मात्स्यिकी द्वारा जीविकोपार्जन एवं महिलाओं की सहभागिता

ब्रजेश चन्द्र त्यागी, (सेवानिवृत्त)
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल –263136

भूमिका

बहुत वर्ष पहले 1976 में कृषि आयोग ने भारत में उपलब्ध जल स्रोतों के महत्व को पहचानते हुए यह सुझाव दिया था कि पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित नदियां, जलाशय, तालाबों आदि में उपलब्ध मत्स्य संपदा, उसके विकास तथा मत्स्य पालन के कार्यक्रमों की रूप रेखा तय कर अनुसंधान किया जाए जिससे इस क्षेत्र में मत्स्य सम्पदा को सुरक्षित रख विकास सम्भव हो और मत्स्य पालन की नयी तकनीक विधियां विकसित कर मत्स्य उत्पादन बढ़ाया जा सके। इसी उददेश्य को प्राप्त करने हेतु केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान बैरकपुर में शीतजल मात्स्यिकी प्रकोष्ठ का गठन हुआ और अंततः इस केन्द्रीय शीतजल मत्स्य अनुसंधान निदेशालय का दर्जा देकर भीमताल में स्थापित किया गया। मत्स्य अनुसंधान क्षेत्र में काफी कार्य हुआ और नई तकनीक भी विकसित हुयी परन्तु नयी तकनीक पर्वतीय क्षेत्रों के अनुकूल नही बन सकी।

पर्वतीय क्षेत्रों में विषम भौगोलिक परिस्थितियां, साधनों की कमी तथा विभिन्न जलवायु व लोगों का रहन सहन में विविधिकरण होने के कारण मत्स्य उत्पादन तकनीक का विकास करना वास्तव में एक चुनौती थी जिसे केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान निदेशालय भीमताल के वैज्ञानिकों ने स्वीकारा और लगभग 8 वर्षों के अथक प्रयास व अनुसंधान के बाद पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन की नयी तकनीक प्रस्तुत की। इस तकनीक को अपनाते हुए न केवल उत्तराखण्ड बल्कि हिमाचल, सिक्किम, अरूणाचल, मणीपुर, मेघालय आदि के मत्स्य पालक मत्स्य उत्पादन बढ़ाकर अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं और कुपोषण को खत्म करने के साथ अपनी आमदनी में भी बढ़ोत्तरी कर रहे हैं।

मत्स्य पालन के सिद्धान्त

मैदानी क्षेत्रों अथवा समुद्र में उपलब्ध जल की परिस्थितिकी पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध जल स्रोत से भिन्न होती है। पर्वतीय क्षेत्रों में पानी का तापक्रम तथा स्थिति उस जल स्रोत के स्थान, उंचाई पर स्थिति, जल प्राप्त करने के स्रोत आदि पर निर्भर करती है। अतः मैदानी क्षेत्रों में पाली जाने वाली मछलियाँ यहां रहकर बढ़ नही सकती क्योंकि मछली के शरीर का तापक्रम अस्थिर होता है। वह जिस जल क्षेत्र में रहती है उसी के अनुसार मछली के शरीर का तापमान होता है। मछली की वृद्धि जल के तापमान और जल क्षेत्र में उपलब्ध खाद्य पर निर्भर रहती है।

दूसरे, हर प्रजाति की वृद्धि, पालन योग्य क्षमता इस बात पर भी निर्भर करती है कि मछली का जनेटिक प्रकार, जाति कैसी है? तथा रहने अथवा वृद्धि करने हेतु तापक्रम सीमा क्या है?

तीसरे, जल क्षेत्र में उपलब्ध खाद्य अथवा बाहर से दिया जाने वाला भोजन कैसा है? और मछली उसे कैसे ग्राह्य करती है? यह भी पर्वतीय क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण है।

चौथा, मत्स्य पालन योग्य प्रजाति की प्रजनन क्षमता, प्रजनन करने का तरीका, उत्प्रेरित प्रजनन द्वारा मत्स्य बीज का उत्पादन आदि ऐसे ही पहलू हैं जिनका ज्ञान न केवल आवश्यक हैं बल्कि इच्छानुसार मत्स्य बीज की उपलब्धता अतिआवश्यक है।

पांचवी बात यह है कि पालने योग्य प्रजाति अन्य प्रजातियों के साथ तालाब में रहने, खाने व वृद्धि के लिए मुकाबला न करती हो तथा रोग न होने या रोग से लड़ने की क्षमता भी ठीक हो।

छठी बात यह है कि मत्स्य पालक को मछली प्रजाति, भोजन, जल पारिस्थितिकी आदि का उचित ज्ञान हो जिससे वह ठीक समय पर फैसले ले सके और सभी पहलुओं में समन्वय बैठा कर मत्स्य उत्पादन बढ़ाकर अपनी सम्पन्नता में वृद्धि कर सके।

पर्वतीय क्षेत्रों में शीतजल

पर्वतीय क्षेत्रों में वे जल स्रोत जहां पानी का तापक्रम 20 डिग्री से.ग्रे. से उपर न जाता हो, शीतजल कहलाते हैं। दूसरे हम यह भी कह सकते हैं कि जिन जल क्षेत्रों में साल्मोनिडी परिवार की मछलियां रह सकती हैं ऐसे ही जल स्रोतों को शीतजल कहा जा सकता है।

भारत के जम्मू कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखण्ड, सिक्किम, मेघालय, अरूणाचल, मनीपुर तथा पश्चिमी बंगाल का उत्तरी क्षेत्र, तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक के कुछ पठारी क्षेत्रों में शीतजल स्रोत उपलब्ध हैं। इनकी संख्या अथवा क्षेत्रफल का सही आंकलन तो नही है परन्तु यह कहा जा सकता है कि शीतजल मात्स्यिकी के विकास की अपार संभावनाऐं हैं। उपर अंकित किऐ गऐ राज्यों में मत्स्य पालन के हिसाब से प्रत्येक राज्य को तीन श्रेणी में बांट सकते हैं :

1. ट्राउट क्षेत्र (ब्राउन, स्नो तथा रेन्बो ट्राउट) 20–30 प्रतिशत समुद्र तल से 1800 मी. से उपर
2. चाइनीज कार्प क्षेत्र (ग्रास, कामन, सिल्वर कार्प महासीर) 40–60 प्रतिशत समुद्र तल से 800–1800 मी. से उपर
3. भारतीय मेजर कार्प क्षेत्र (रोहू, कतला,मृगल, कामन कार्प) 15–20 प्रतिशत समुद्र तल से 700 मी.

मत्स्य सम्पदा

पर्वतीय क्षेत्रों के जल स्रोतों में लगभग 258 प्रजाति की ही मछलियां पायी जाती हैं परन्तु मत्स्य वृद्धि/पालन योग्य प्रजाति कुछ ही है और उनके खाने, प्रजनन आदि की समस्याएँ होने के कारण उनका मत्स्य पालन में उपयोग न हो सका। अतः कुछ प्रजाति जैसे रेन्बो ट्राउट, चाइनीज कार्प आदि को शीतजल क्षेत्रों में लाया गया और सफलतापूर्वक पाला जा रहा है।

शीतजल क्षेत्रों में मत्स्य पालन

स्वतंत्रता के पूर्व भी शीतजल क्षेत्रों में मत्स्य पालन की कोशिश की गयी तथा ब्राउन ट्राउट, रेन्बो ट्राउट, कामन कार्प का समावेश किया गया परन्तु वर्ष 1994 तक की स्थिति का अगर अवलोकन करें तो निष्कर्ष है कि :

- जल स्रोत अच्छे, बढ़िया और उत्पादन योग्य हैं
- मत्स्य उत्पादन कम किन्तु उत्तम होगा
- ब्राउन ट्राउट, रेन्बो ट्राउट पाली जा रही है किन्तु केवल राजकीय फार्मों/संस्थानों में
- इसी प्रकार कामन कार्प की कहानी है
- मत्स्य पालन में महासीर, स्नो ट्राउट, दूसरी प्रजातियां, चाइनीज कार्प आदि का न अध्ययन और न ही पालन किया गया
- शीतजल क्षेत्रों में अधिकतर जल क्षेत्रों के सर्वे, परिस्थितिकी, आदि पर ही अनुसंधान कार्य होता रहा है। छोटे व मध्यम आकार के तालाबों में मत्स्य पालन विषय पर कोई विशेष कार्ययोजना नही बन सकी

केन्द्रीय शीतजल मत्स्य अनुसंधान निदेशालय की भूमिका

अब तक हुए कार्यो की समीक्षा करते हुए वर्ष 1994 में निदेशालय के वैज्ञानिकों ने पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन की नयी तकनीकियां विकसित करने हेतु एक कार्यक्रम तय किया जिसका उद्देश्य था कि पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक क्षेत्र में उपयोगी, कम लागत वाली, आसान प्रबन्धन वाली तकनीक विकसित की जाय जो मत्स्य पालकों को सस्ता, अधिक कीमत तथा नगण्य लागत दे सके।

अतः कार्प प्रजाति, ट्राउट, रेन्बो ट्राउट, महासीर, स्नो ट्राउट आदि अन्य प्रजाति का विशेश अध्ययन किया गया। इसके पहलू थे :

1. प्रजाति का जैनेटिक प्रकार व क्षमता
2. वृद्धि के लिए तापक्रम, प्राणवायु, तथा अन्य कारकों की आवश्यक सीमा
3. प्रजाति की वृद्धि, रोगों से लड़ने की क्षमता/बचाव
4. प्रजाति का दूसरी प्रजातियों के साथ रहने, खाने में सहभागिता
5. पालन योग्य प्रजातियों का प्रजनन व बीज उत्पादन /उपलब्धता
6. प्रजातियों के रख रखाव /पालन के साधन, ज्ञान, व्यय तथा आमदनी का ब्यौरा

इन सभी पहलुओ पर अध्ययन किया गया। विस्तृत अध्ययन चम्पावत मत्स्य प्रक्षेत्र में वर्ष 1994–98 के मध्य पूरा किया गया। अध्ययन के बाद परिणाम बड़े ही उत्साहजनक रहे। अध्ययन के बाद यह निष्कर्ष निकला कि रेन्बो ट्राउट अत्यधिक लागत होने के कारण तथा सुदूर बाजार आदि के कारण कुछ ही क्षेत्रों में प्रोत्साहित किया जाए। ब्राउन ट्राउट तथा स्नो ट्राउट की प्रजनन तकनीक विकसित कर बीज उत्पादन बढ़ाकर जल स्रोतों में संचयित किया जाए।

सभी प्रजातियों में चाइनीज कार्प बड़ी ही सटीक प्रजाति पायी गई और अधिक कार्य क्षेत्र, कम लागत तथा आसान प्रबन्धन आदि को ध्यान में रखकर समन्वित मत्स्य पालन तकनीक विकसित की गयी। चाइनीज कार्प की विशेषता है :

1. सभी जगह उपलब्ध तथा खाने योग्य मछलियों ज्यादा मांग

2. प्रजनन तथा बीज उत्पादन आसान
3. रहने तथा बृद्धि के लिए पानी के तापक्रम की बड़ी सीमा (4–32 डिग्री)
4. तेज वृद्धि 500 –800 ग्राम/7–8 माह में (19–26 डिग्री)
5. प्राण वायु की आवश्यकता कम अतः अधिक घनत्व में संचय (2–4 मछली/मीटर)
6. तालाब, भोजन, रसोई का बचा भोज्य पदार्थों के उपयोग करने की क्षमता
7. अत्यधिक मांग व आसान प्रबन्धन
8. मत्स्य पालन के लिए अति उत्तम (800–2000 मीटर के बीच)

अतः इसी आधार पर चाइनीज कार्प और महासीर मछली को उपयोग करते हुए समन्वित मत्स्य पालन तकनीक का विकास किया गया यह तकनीक संक्षेप में इस प्रकार है :

समन्वित मत्स्य पालन तकनीक

1. समुद्र तल से 800–2000 मी. के बीच जल क्षेत्रों के लिए उपयुक्त
2. खाने योग्य उत्पादन केवल 8 माह में मध्य मार्च से नवम्बर के बीच
3. छोटे से बड़े तालाब तक सम्भव 100–400 मी. जल क्षेत्र
4. कम पानी की आवश्यकता 1.6–2.0 मीटर गहराई
5. मत्स्य घनत्व 2.8–3.2 मछली/मी.
6. प्रजाति : ग्रास कार्प 40–50, सिल्वर कार्प 20–25, कामन कार्प 30–40 महासीर 6–10 जिनका आकार 60–8 मिमी. हो
7. 300–450 किग्रा. चूना/प्रत्येक ळे0/वर्ष, प्रत्येक बारहवें दिन
8. केवल गोबर की खाद
9. साधारण प्रबन्धन
10. उत्पादन लागत करीब 30–40 रू./किग्रा
11. बिक्री मूल्य करीब 100–120 रू./किग्रा

विकसित तकनीक का प्रसार एवं ग्राहयता

वर्ष 1998 से 2004 के बीच इस तकनीक को और उपयुक्त, समग्र बनाया गया और सर्वप्रथम गांव तौली, पाटी क्षेत्र जिला चम्पावत में आरम्भ कर उत्तराखण्ड के अन्य जिले–नैनीताल, पिथौरागढ़ अल्मोड़ा, बागेश्वर,देहरादून चम्पावत में भी मत्स्य पालकों ने इस तकनीक को बड़े उत्साह से अपनाया।इससे पहले जहां मत्स्य पालन का कृषि आमदनी में कोई योगदान नही था अपना एक उचित स्थान प्राप्त कर लिया। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कृषि से आमदनी 51 प्रतिशत, पशुपालन से 14 प्रतिशत, बाग नर्सरी से 5, तथा मत्स्य पालन से 30 प्रतिशत आमदनी अंकित की गयी जो अपने में एक उपलब्धि थी।

आगे प्राप्त आंकड़ों के आधार पर इस तकनीक में अनेक बदलाव कर दो नए प्रारूप तैयार किऐ गऐ। इन्हे न केवल उत्तराखण्ड बल्कि अरूणावल, मनीपुर, मेघालय, सिक्किम, उत्तर पश्चिमी बंगाल के चुने हुए क्षेत्रों में 2005–2010 के बीच प्रदर्शन किया गया। लगभग 390 मत्स्य पालकों ने इस तकनीक को अपनाया।

किसी भी मत्स्य पालक ने इस तकनीक द्वारा मत्स्य उत्पादन के कार्यक्रम का त्याग नही किया है। यही इसकी सफलता की कहानी है।

तकनीक का विविधीकरण

पर्वतीय क्षेत्रों में प्राप्त सफलता से उत्साहित होकर केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान निदेशालय भीमताल के वैज्ञानिकों ने इस मत्स्य पालन तकनीक को आधार बनाकर निम्न तकनीक विकसित की हैं। ये सभी तकनीक मत्स्य पालकों द्वारा अपनायी जा चुकी हैं :

1. धान–मत्स्य पालन एक साथ अरूणाचल के जीरो माडल को विकसित कर इसे अरूणाचल, मणीपुर, और मेघालय में लागू किया
2. पशुपालन–मत्स्य पालन एक साथ
3. बहते पानी में सघन मत्स्य पालन सिक्किम, उत्तर पश्चिमी बंगाल, उत्तराखण्ड में इसे अपनाया गया।

भविष्य

इस तकनीक से मत्स्य पालकों को बराबर लाभ मिलता रहेगा। केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान निदेशालय भी समय समय पर इस की समीक्षा कर वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर इस तकनीक को और उपयुक्त एवं ग्राहय योग्य बनाने में अपना योगदान देता रहेगा।

पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन में महिलाओं की सहभागिता

वर्ष 1979 में तथा 2000 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं के सशक्तिकरण को लेकर कई प्रस्ताव पास किए हैं। सभी 193 देशों तथा अर्न्तराष्ट्रीय संस्थाऐं महिलाओं की सभी कार्यो में भागीदारी तथा समाज में उचित स्थान प्राप्त करने के लिऐ प्रयत्नशील हैं। भारत सरकार भी अपनी नीतियों एवं कार्यप्रणाली में बदलाव लाकर महिला उत्थान, शिक्षा आदि क्षेत्रों में सराहनीय कार्य कर रही है।

भारत में कृषि तथा कृषि से जुड़े कार्यों में महिलाऐ महत्वपूर्ण योगदान दे रही है परन्तु उनके योगदान को सराहा नही जाता और अनुपात भी कम है। इस विषय पर अध्ययन भी नही किऐ गऐ हैं। अतः सही स्थिति का आंकलन करना मुश्किल है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कुछ संस्थानों द्वारा कृषि व मत्स्य पालन में महिलाओं की हिस्सेदारी व समस्याओं को छुआ गया है। वर्ष 2008 के आंकड़ों के अनुसार 5.4 मिलियन महिलाऐं मत्स्य कार्यों से जुड़ी है। यह कुल जनसंख्या का 12 प्रतिशत है। मछली खाद्य संरक्षण, बिक्री आदि में इनकी संख्या अधिक है। पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन में महिलाओं का योगदान/आवश्यकता पर कोई भी आंकड़े उपलब्ध नही है। फिर भी एक अनुमान के अनुसार पूर्वी राज्यों में लगभग 24 प्रतिशत महिलाएं मत्स्य पालन में अपना योगदान देती है।

महिलाओं को शिक्षा, सामाजिक चेतना को बढ़ाकर तथा पर्वतीय क्षेत्रों में महिलाओं के आने जाने की व्यवस्था आदि समस्याओं को दूर कर महिलाओं को मत्स्य पालन में उचित प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है।

महिलाएं तेजी से, सुन्दरता से समय पूर्वक अपने कर्तव्यों को पालन करने में सक्षम होती हैं अतः उनकी सहभागिता न केवल मत्स्य उत्पादन बढ़ाने में बल्कि पारिवारिक, वित्तिय स्थिति को सम्पन्न करने के लिए आवश्यक है।

संरक्षण

जल-दमयन्ती ताल भीमताल में महाशीर संरक्षण: आस्था एवं परंपरा

आर. एस. पतियाल, ज्योति सती, प्रेम कुमार, एन.एन पांडे एवं अमित कुमार जोशी

भा.कृ.अनु.परि.–भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

पूरी दुनिया की तरह भारत वर्ष में भी मीठे पानी की मछलियों की जनसँख्या में तेजी से गिरावट आ रही है. काली रोहू, सुनहरी महाशीर, स्नो ट्राउट, रेनबो ट्राउट, ब्राउन ट्राउट, राइम्स बोला जैसी महत्वपूर्ण प्रजातियों की जनसँख्या दिन प्रतिदिन घटती जा रही है. इनकी गिरावट का मुख्य कारण इनके निवास स्थानों का विनाश एवं परिवर्तन, अत्यधिक मात्रा में इनका उपभोग तथा प्रदूषण है। अतः इन जैव विविधता का संरक्षण अति आवश्यक है। इन जैव विविधता के संरक्षण के लिए सरकार द्वारा कई महत्वपूर्ण कदम उठाये जा रहे हैं, जैसे की मछली पालन, मछली के बीजों को नदियों में छोड़ा जाना, मछली वाटिका में इनका संरक्षण इत्यादि। इसके अलावा हमारी धार्मिक भावनाये भी इनके संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। जैसे की ऋषिकेश, हर की पौड़ी (हरिद्वार), बैजनाथ, पुष्कर तालाब इत्यादि में तथा इन पवित्र व पूज्य स्थानों के आस पास के क्षेत्रों में पाई जाने वाली मछलियों को पूजा जाता है। स्थानीय नागरिकों द्वारा इन्हे संरक्षण प्राप्त है। प्राचीन काल से महाशीर मछली, भारतीयों की आस्था एवं परंपरा से जुडी हुई है। हिमाचल प्रदेश के कुछ भागो में महाशीर को ईश्वर की तरह पूजा जाता है। इन स्थानों में महाशीर को भोजन खिलाया जाता है एवं संरक्षण दिया जाता है। भीमताल के निकट मेहरा गाँव स्थित नलदमयंती ताल में भी धार्मिक भावनाओं के तहत सुनहरी महाशीर का द्वापर युग से पालन एवं संरक्षण किया जा रहा है। जिसके पीछे एक प्रसिद्ध लोककथा प्रचलित है।

राजा नल अयोध्या के राजा थे। एक दिन राजा नल वन जंगल में शिकार के लिये गये उसे वहां एक खुबसूरत हंस ने आकर्षित किया। वह उसका शिकार करने के लिये उसके पास पहुंचे और जैसे उसने तीरकमान उठाया तो हंस राजा से बोला कि हे महाराज! आप मुझे मार कर क्या प्राप्त करेंगे? आप इतने खुबसूरत और बलशाली है। फिर उसने अपनी जान बचाने के लिये रानी दमयन्ती की खुबसूरती का विवरण राजा नल के सामने कर दिया। रानी दमयन्ती की खुबसूरती के बारे में सुनते ही राजा नल रानी दमयन्ती की तरफ प्रभावित हुआ और उसने हंस के द्वारा रानी दमयन्ती को स्वंयम्बर के लिये संदेशा भेजा। संदेशा मिलने पर रानी दमयन्ती के मन में खुशी की लहर उठ गयी और उन्होनें स्वंयम्बर स्वीकार कर लिया। अब राजा के राजमहल में उल्लास का वातावरण जग गया और धूमधाम से राजा स्वंयम्बर की व्यवस्था में लग गया। स्वंयम्बर की एक शाम से पहले राजा अपने कक्ष में कुछ सोच विचार कर रहा था और तभी उसके सामने चार देवता प्रकट हुए। राजा ने परेशान होते हुए और हाथ जोड़कर उन्हें नमन किया। राजा ने देवताओं से वहां आने का कारण पूंछा और देवता बोले की स्वंयम्बर में दमयन्ती उन चारों में से किसी एक को वर चुने। यह सुनते ही राजा नल थोड़े से उदास हो गये और बोले हे प्रभु! मै भी एक मनुष्य हूँ और मेरी भी स्वंयम्बर की करने की इच्छा है, क्योंकि मैं दमयन्ती से प्रेम करता हूँ। आखिरकार देवताओं ने राजा नल को दूत बनाकर रानी दमयन्ती के पास स्वंयम्बर में आने का संदेशा भेजा और संदेशे में लिखा था कि रानी दमयन्ती को चार देवताओं और राजा में से किसी एक को वरमाला डालनी होगी। रानी अपने मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना की, कि उसे धर्मसंकट से निकलने की शक्ति दें। आखिरकार स्वंयम्बर का दिन आया जिसका सबको बेसब्री से इन्तजार था। राजा नल और चार देवताओं के प्रस्थान करते ही पूरा महल जगमगा उठा। रानी दमयन्ती के बाहर आने से पहले सभी देवताओं ने राजा नल का रूप ले लिया। पांच एक जैसे रूप के व्यक्ति देखकर वो चकित रह गयी और उसने अपने मन में ईश्वर से प्रार्थना की, कि अगर वो राजा नल से सच्चा प्रेम करती है तो उसे पहचानने की शक्ति दें। रानी दमयन्ती ने पांचों मनुष्यों की ओर बड़ी गौर से देखा जिनमें से केवल एक व्यक्ति के पैर धरती से लगे हुए थे और बाकी चार के पैर धरती से ऊपर थे (देवता)। रानी को इस बात का यकीन हो गया की यही राजा नल हैं और उन्होनें वरमाला उनके गले में डाल दी। सभी देवता अपने रूप में फिर से आ गये और उन्होनें दोनों को आर्शीवाद दिया और चले गये। देवताओं को वापसी के सफर

में कलयुग तथा शनी देवता मिले और उन्होनें उनसे धरती पर जाने का कारण पूंछा। देवताओं सारी कहानी दोनो को सुनायी और सुनते ही कलयुग तथा शनी को क्रोध आ गया और उन्होंने पूछा की रानी दमयन्ती ने आप में से किसी को वरमाला क्यों नही डाली? अगले दिन दोनों राजमहल में, राजा नल और दमयन्ती के पारा रूप बदल कर पंहुच गये और उन्होनें अपने लिये राजा से कुछ जगह रहने के लिये मांगी। राजा ने उनकी इच्छा पूरी कर दी। देवताओं के साथ हुए अपमान का बदला लेने के लिये दोनों राजा के मुकट में सवार हो गये और वक्त के साथ ही राजा पर उन दोनों का प्रभाव पड़ने लगा और राजा को उनकी शक्ति के प्रभाव की वजह से जुए आदि की लत लग गयी ओर वह धीरे–धीरे सारा राजकोश हारता चला गया। यह देखकर उसके भाई ने उसको 14 साल का बनवास दे दिया। इन सब चीजों से परेशान राजा नल–दमयन्ती को लेकर नंगे पैर घने जंगलो की तरफ निकल पड़ा और मेहरगांव के पास की जगह पर रहने का मन बनाया और अपना एक रहने का छोटा सा महल बना दिया। वक्त साथ दोनों के जख्म भरते चले गये और दोनों खुशी–खुशी जीवन व्यतीत करने लगे। राजा नल अक्सर शिकार पर रानीवाग जाया करता और वहां से कुछ खाने के लिए शिकार मारकर ले आता था। रानीवाग में रानी जिया का राज्य था। एक दिन रानी नदी के किनारे स्नान कर रही थी और उनकी नजर राजा नल पर पड़ी जो शिकार करने में व्यस्त थे। रानी स्नान करके अपने महल को प्रस्थान कर गयी। अगले दिन जब रानी जिया फिर नदी के किनारे स्नान करने आयी तो उनकी नजर फिर से राजा नल पर पड़ी और उनके स्नान में खलल पड़ गया तो रानी जिया ने गुस्से में आकर कालभैरव को पुकारा और उससे अपने कष्ट बताया। कालभैरव ने राजा के बारे में सब कुछ पता किया और फिर राजा के मेहरा गॉव स्थित महल के पास पहुंच गया। और उसकी नजर रानी दमयन्ती पर पड़ गयी। जब राजा नल शिकार पर रानीवाग जाता तो कालभैरव पीछे से रानी दमयन्ती के महल के बाहर छिप कर आँऊ–आँऊ की आवाज निकालता जिस वजह से रानी बहुत परेशान रहती थी। इस परेशानी की वजह से रानी बहुत दुवली–पतली हो गयी थी। जब राजा नल एक दिन शिकार पर जाने से पहले रानी से उसके कमजोर होने का कारण पूंछा तो रानी ने सब कुछ राजा को बता दिया कि उसके जाने के बाद आँऊ–आँऊ की आवाज महल में आती है। राजा नल ने शिकार पर ना जाकर महल में रहकर इस आवाज की तह तक पहुंचने का मन बनाया। रानी दमयन्ती उसी समय मछलियां काट कर उनमें हल्दी लगा रही थी। राजा महल के पारा में छिप गया और जब आँऊ–आँऊ की आवाज आने लगी, जिसके उत्तर में राजा ने कहा आ जा। ये कहते ही कालभैरव वहां आ गए और राजा नल और दमयन्ती के सहित पूरा महल जमीन में धस गया और पानी का उवाल आ गया और पूरी जगह पानी से भर गयी। जो मछलियां रानी ने काटी हुई थी वो सब पानी में गिरते ही जीवित हो उठी। तभी से इन मछलियों से धार्मिक भावनाए जुडी हुई है। ऐसा माना जाता है की जो भी मनुष्य इन मछलियों का शिकार व सेवन करता है उस को कालभैरव का प्रकोप सहना पड़ता है। तभी से लोगो द्वारा इन मछलियों को पूजा जाता है तथा इनका सेवन वर्जित है और अब वो जगह नल दमयन्ती ताल के नाम से प्रसिद्ध है।

उन्नीसवी एवं बीसवी शताब्दी के आरम्भ में भारत की नदियों में महाशीर की बहुलता थी, परन्तु आज मानव द्वारा किये गए भौतिक विकास, ओद्योगीकरण तथा छोटी मछलियों एवं प्रजनन मछलियों का शिकार, प्रजनन एवं संरक्षण क्षेत्रो के विनाश इत्यादि के कारण महाशीर मछली विनाश के कागार पर आ गई है। राष्ट्रीय कृषि आयोग 1976 के संरक्षण में महाशीर की संख्या में हो रही कमी का उल्लेख किया गया है। इन मछलियो के संरक्षण हेतु सरकार द्वारा कई महत्वपूर्ण कदन उठाये जा रहे है जिसके तहत महाशीर को उत्तराखंड सहित अन्य 4 राज्यो की राज्य मछली घोषित किया गया है। महाशीर मछलियों के संरक्षण हेतु हमारे धार्मिक स्थानो में उठाये जा रहे कदम सहरानीय है जैसे की नलदमयंती तथा बैजनाथ में इन मछलियों को संरक्षण प्राप्त है। जो इस जैव विविधता के आस्तित्व को बचाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

"वहां के लोगों का आज भी ये मानना है कि
जो व्यक्ति भी नल दमयन्ती और नाग शिव का नाम लेगा या जाप सच्चे दिल से करेगा
उसको अपने जीवन काल में कोई कष्ट नहीं होगा"

मत्स्य जननद्रव्य संरक्षण: एक आवश्यक कदम

बासुदेव कुशवाहा, एस. के. श्रीवास्तव, मोहित तिवारी, रविन्द्र कुमार एवं एन. एस. नागपुरे
भा.कृ.अनु.परि.–राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ

जैवविविधता पर कार्य करने वाले विश्वभर के अनुसंधानकर्ताओं का मानना है कि विश्व की कई पादप एवं जन्तु प्रजातियॉं खत्म हो चुकी और तमाम विलुप्त होने के कगार पर है। आश्चर्य की बात यह है कि इन प्रजातियों के खत्म होने के लिए मानव द्वारा किए जा रहे विकास सम्बन्धी गतिविधियां लगभग पूर्णतया जिम्मेदार है।

जैविक संसाधनों के क्षरण के प्रति बढ़ती चिंता के फलस्वरूप सन् 1992 में कन्वेंशन ऑन बायोलॉजिकल डायवर्सिटी की स्थापना की गयी। इसके उपरान्त भारत में जैव–विविधता कानून 2002 (बायोलॉजिकल डायवर्सिटी एक्ट 2002) के नाम से एक वृहद कानून बना तथा जैव–विविधता नियम 2004 में लागू किया गया जिसके द्वारा जैविक संसाधनों पर बढ़ते दबाव से निपटा जा सके। हमारे अपने अस्तित्व को बनाये रखने हेतु जैव–संरक्षण एवं जैव–विविधता हेतु एक मजबूत संस्थागत आधार की मॉंग है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा जैविक विविधता पर मार्च, 2006 में रियो डे जिनेरियो, ब्राजील में आयोजित सम्मेलन में जैविक सुरक्षा के प्रति अधिक जागरूकता का आह्वान किया गया।

एक कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत में मत्स्य पालन का व्यवसाय काफी महत्वपूर्ण है। कुछ दशकों पहले देश में मत्स्य पालन, उत्पादन एवं प्रग्रहण पूर्णतया प्राकृतिक जलश्रोतों तक ही सीमित था। मत्स्य प्रग्रहण का काम मुख्यतः समुद्र से एवं छोटे स्तर पर अन्तर्स्थलीय जलक्षेत्रों जैसे कि नदियों, तालाबों एवं पोखरों से किया जाता रहा है किन्तु अब मत्स्य वैज्ञानिकों ने अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी के स्रोतों में मत्स्य पालन की ओर विशेष ध्यान देना प्रारंभ किया है। इन्हीं प्रयासों के परिणाम स्वरूप आज हमारा राष्ट्रीय मत्स्य उत्पादन 64 लाख टन से भी ज्यादा हो गया है जिसमें से अन्तर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन लगभग 34.59 लाख टन तथा समुद्री मत्स्य उत्पादन 29.42 लाख टन है। यह बात भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि समुद्री मत्स्य संपदा का अत्यधिक दोहन हो चुका है और अब इससे अधिक उत्पादन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। अतएव हमें अधिकांश ध्यान अन्तर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन की ओर ही देना होगा ताकि हम जलकृषि द्वारा अपने राष्ट्रीय मत्स्य उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें। स्थायी तौर पर मत्स्य उत्पादन में वृद्धि के लिये देश के अन्तर्स्थलीय तथा समुद्री मात्स्यिकी में सुधार, प्रसार एवं मृदुजल जीव पालन में वृद्धि के साथ–2 मत्स्य जननद्रव्य जैव विविधता के संरक्षण पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।

मत्स्य जननद्रव्य विविधता

मत्स्य जनन द्रव्य विविधता के मामले में भारत बहुत ही धनी देश है। मत्स्य पालन हेतु परिवार्षिक अथवा मौसमी जल श्रोतों की उपलब्धता एक प्राथमिक आवश्यकता है। हमारे देश में लम्बे सामुद्र तट के अलावा कुल लगभग 29 हजार कि.मी. लंबी नदियॉं तथा 13 हजार कि.मी. लम्बी नहरें उपलब्ध हैं। इन बड़े जल स्रोतों के अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक कुदरती सक्षम जल संसाधन, जैसे–तालाब, पोखरे, जलाशय, सील, घेरी भेरी, दलदली जलस्रोत, नाले इत्यादि उपलबध हैं जिनका उपयोग परम्परागत ढंग से मछली उत्पादन हेतु किया गया है।

हमारे विभिन्न जल स्रोतों में कुल मिलाकर लगभग 2487 मत्स्य प्रजातियॉं पाई जाती हैं। इन प्रजातियों में विभिन्न प्रकार से, जैसे खाने योग्य, पालने योग्य, सजावटी एवं आखेट हेतु उपयोगी मछलियों में विभाजित किया गया है। इसके अलावा देश के क्षेत्र विशेष जैसे पश्चिमी घाट एवं पूर्वोतर राज्य मत्स्य जननद्रव्य विविधता के लिए धनी है।

मत्स्य जननद्रव्य विविधता का महत्व

मत्स्य जैव विविधता भविष्य में मछली उत्पादन बढ़ाने में बहुत योगदान कर सकती है। अभी हमारे देश में केवल गिनी चुनी देशी मछलियॉं जैसे रोहू, कतला (भाकुर), मृगल (नैन) तथा विदेशी कार्प मछलियॉं जैसे ग्रासकार्प एवं सिल्वर कार्प इत्यादि का ही पालन किया जाता है जबकि हमारे यहां मछली की बहुत सी ऐसी प्रजातियॉं हैं जिनकी उत्पादन क्षमता और बाजार भाव काफी अधिक है। अतः यदि प्रचलित मछलियों के अलावा दूसरी महत्वपूर्ण पालने योग्य मछलियॉं, यथा चिताला, कालवासु, बाटा इत्यादि, का पालन किया जाये तो मत्स्य किसानों को अधिक आय हो सकती है और इन मछलियों के पालन में आने से इनकी प्राकृतिक संपदा पर निर्भरता भी कम हो जाएगी। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रचलित मछलियों की किस्म में सुधार के लिए भी प्राकृतिक जल–स्रोतों में उपलब्ध उस प्रजाति की विविधता उपयोगी है। जैव तकनीकों के उपयोग से मछलियों का प्रयोग बहुत सी महत्वपूर्ण चीजें बनाने में किया जा सकता है इसलिए जितनी अधिक प्रजातियॉं हमारे पास उपलब्ध रहेंगी, भविष्य में उनसे नई उपयोगी चीजें बनाने की उतनी ही अधिक संभावना रहेगी।

मत्स्य जननद्रव्य विविधता में गिरावट के कारण

वर्तमान समय में बहुत सी महत्व–पूर्ण प्रजातियों की प्राकृतिक विविधता में कमी आ रही है तथा बहुत सी प्रजातियॉं धीरे–धीरे विलुप्त हो रही हैं। इस तरह मत्स्य जननद्रव्य विविधता में निरंतर कमी आने के कई महत्वपूर्ण कारण है।

- भारत आज विकसित देशों की श्रेणी में आने के लिए अग्रसर है।

जनसंख्या वृद्धि एवं क्रय व्यक्ति बढ़ने और खानपान में बदलाव की वजह से मछलियों के माँग में काफी इजाफा हुआ है। माँग बढ़ने एवं आपूर्ति कम होने के कारण प्राकृतिक संपदा का दोहन काफी तेजी से बढ़ा है।

- मछली पकड़ने के गलत तरीकों का प्रयोग करना भी एक महत्वपूर्ण कारक है। मछली पकड़ने हेतु निर्धारित मानकों से छोटे आकार के जाल प्रयोग करने से मछलियों के बच्चों का शिकार भी हो जाता है। इससे मछली पकड़ने वाले को तात्कालिक रूप से तो कुछ आय होती है किंतु कुल मिलाकर सम य के साथ मछलियों के उत्पादन में कमी आती है तथा भविष्य में मछलियों की जनसंख्या घटती जाती है।
- बढ़ते औद्योगिकीकरण, मानवीय हस्तक्षेप तथा जलवायु में आये बदलावों एवं नदियों पर बांध बनाए जाने इत्यादि के कारण प्राकृतिक जल स्रोतों में मछलियों को पालने व रहने योग्य उपयुक्त वातावरण नहीं मिल पा रहा है। इससे इन जल स्रोतों में मछलियों की विविधता में कमी आ रही है तथा बहुत सी मछलियाँ विलुप्त होने की कगार पर पहुंच गई हैं।
- आबादी बढ़ने के साथ–2 ही उद्योगों का भी तेजी से विकास हुआ है। इन उद्योगों एवं कारखानों से निकल रहे अवशिष्ट पदार्थों से जल स्रोतों का भारी मात्रा में प्रदूषण हुआ है। खेती में प्रयोग होने वाले रासायनिक पदार्थों, कीटनाशकों से भी जल का प्रदूषण बढ़ता है। कुछ जलीय वनस्पतियां यथा जलकुम्भी भी जल स्रोतों में फैलकर मछलियों की गतिविधियों को प्रभावित करती है। जलीय प्रदूषण मत्स्य जननद्रव्य में कमी का एक प्रमुख कारण है।
- पिछले कुछ वर्षों से एक और महत्व–पूर्ण तथ्य सामने आये है जिसमें कही–2 पर मत्स्य आखेट में अवैध तरीकों जैसे जल स्रोतों में विघ्न डालना, विस्फोटक डालना इत्यादि भी प्रयोग किये जाते हैं। ये तरीके मछलियों के लिये बहुत ही घातक है। इनसे गैर जरूरी मछलियाँ भी मर जाती हैं, जिससे धीरे–2 मछलियों की संख्या तथा विविधता दोनों में कमी आती रहती है।
- विदेशी मछलियों को पालने का प्रचलन तेजी से बढ़ता जा रहा है। ऐसी अवांछनीय विदेशी मछलियाँ भी अवैध रूप से पाली जा रहीं हैं जिनका हमारी स्थानीय मछलियों पर बहत प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। विदेशी मछलियों की संख्या में वृद्धि बहुत जल्दी होती हैं। स्थानीय मछलियाँ उनसे मुकाबला नहीं कर पातीं जिसके फलस्वरूप धीरे–धीरे स्थानीय मत्स्य जननद्रव्य विविधता में कमी आती जाती है।
- विदेशी मछलियों के पालन से एक और खतरा यह है कि पालने वाले तालाबों से इन मछलियों के प्राकृतिक जल स्रोतों में पहुंच जाने की स्थिति में (जिसकी प्रबल संभावना वर्षा ऋतु में बहुत होती है।) ये स्थानीय मछलियों के अस्तित्व को हो रहे खतरे को और बढ़ा देती है।

मत्स्य जननद्रव्य विविधता का संरक्षण कैसे किया जाय?

मुख्यतः उत्पादन योग्य मत्स्य प्रजातियों के पालन को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। मत्स्य पालन योग्य प्रजातियों को उनकी जनन आदतों के आधार पर दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वर्ग में वह मत्स्य प्रजातियों है जो कि तालाब में आसानी से प्रजनन कर सकती है, जैसे कि सिप्रिनस कार्पियों, ओस्फ्रोनिमस गोरमी, मॉगुर, सिंघी, चान्ना प्रजातियाँ एवं सुम्हा आदि। दूसरे वर्ग में वह मत्स्य प्रजातियाँ शामिल की गयी हैं जो कि बंधे हुये पानी में प्रजनन करने में सक्षम नहीं होती है। यह अपनी वंश वृद्धि हेतु प्रजनन बहते हुऐ पानी तथा नदी में करती हैं, जैसे कि भारतीय कार्प मछलियाँ, रोहू प्रजातियाँ, कतला एवं सिरेहनिस मृगाला, तथा विदेशी मछलियाँ यथा ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प एवं साल्मन प्रजातियाँ इत्यादि नदियों में ही प्रजनन करती हैं। भारत की प्रमुख कार्प मछलियाँ (मेजर कार्प) वर्षा के मौसम में जब नदियों में वर्षा जल की मात्रा अत्यधिक होती है तब ही प्रजनन करती है। मानसून के समय इन मछलियों के अनेक समूह प्रजनन क्रिया के उद्देश्य से ऊपरीधारा स्थलों से उथले स्थलों की ओर पलायन करते हैं। इसके अलावा मत्स्य जननद्रव्य विविधता को विलुप्त होने से बचाने के लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है :

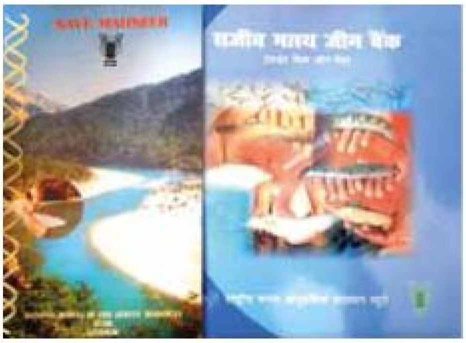

- प्राकृतिक जलस्रोतों से मछली पकड़ने का कार्य वैज्ञानिक तरीके से करें। ज्यादा छोटे आकार के जाल का प्रयोग न करें ताकि मछलियों के बच्चे ना पकडे जा सके तथा मछलियों के छोटे बच्चों एवं अण्डों के अवैध शिकार को रोकने के लिए सामाजिक प्रतिबंध लगाएं। अवैध तरीकों, जैसे जल स्रोतों में जहर डालना, विस्फोटक पदार्थ इत्यादि का प्रयोग कदापित ना करें।
- वैज्ञानिक तकनीकी अपनाकर अर्न्तस्थलीय जलकृषि द्वारा व्यापक स्तर पर संगठित मत्स्य पालन सुनिश्चित किया जाए जिससे कि मत्स्य उत्पादन इस स्तर तक बढे कि प्राकृतिक मत्स्य दोहन कम किया जा सके।
- मछलियों के वासस्थलों जैसे प्राकृतिक नदियों, नालों, जलाशयों, झीलों, इत्यादि के साथ छोड़छाड़ ना करें और उनकों यथावत् रहने दें। जल स्रोतों को प्रदूषित होने से बचाने में योगदान करें।
- विदेशी मछलियों के पालन में सावधानी बरतें ताकि वे प्राकृतिक जल स्रोतों जैसे जलाशयों, नदियों, नहरों, इत्यादि में ना जाने पाएं।

मत्स्य जननद्रव्य विविधता संरक्षण हेतु स्वयं जागरूक बनें तथा दसूरों को भी प्रेरित करें। स्थानीय मत्स्य जननद्रव्य संरक्षण समिति बनाएं एवं उनके द्वारा सामुदायिक संरक्षण कार्यक्रम सुनिश्चित करें। मनुष्य की ऐसी सभी गतिविधियों को निम्न स्तर तक लाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे कि मत्स्य संपदा का विलोपन संभव है। अंत में यह याद रखना होगा कि हमारे सहयोग से ही मत्स्य जननद्रव्य संरक्षण संभव है।

शी.मा.अनु. निदेशालय भीमताल द्वारा कोसी नदी में मत्स्य बीजों का संचयन

दिनांक 25 अप्रैल 2014 को शी.मा.अनु. निदेशालय भीमताल ने उत्तराखण्ड के रामनगर की कोसी नदी में सुनहरी महाशीर को बचाने तथा इसकी संख्या में वृद्दि करने के उद्‌देश्य से इसके बीजों के संचयन का एक सफल आयोजन किया। अनेक प्रतिष्ठित लोगों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया। इस अवसर पर हैचरी तथा तैरते हुए केजों में पाली–पोशी गयी सुनहरी महाशीर की वयस्क अंगुलिकाओं को रामनगर की कोसी नदी में छोड़ा गया। निदेशालय परिवार के वैज्ञानिकों, स्टाफ सदस्यों, वनाधिकारियों एवं स्थानीय जनता सम्बधित 30 से अधिक लोगों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया।

मध्य हिमालय में पादप जननद्रव्य के शोध गतिविधियों से आशायें, अपेक्षायें एवम् क्षरण रोकने के उपाय

कुलदीप सिंह नेगी, कमलेश चन्द्र मुनीम, अजय कुमार त्रिवेदी एवं पूरन सिंह मेहता
राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संस्थान ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र भवाली – 263132 निगलाट,
जिला – नैनीताल, उत्तराखण्ड

सार

पिछले तीन दशकों से कृषि वैज्ञानिक महसूस कर रहे हैं कि वर्तमान में उपयोग में आ रही अनेक परम्परागत खाद्य प्रदान करने वाली पादप प्रजातियां एवम् उनकी किस्मों का भविश्य में कम उपयोग में आने तथा उनके स्थान पर विकसित किस्मों को लगाने से पादप जननद्रव्यों का क्षरण सम्भावित है। हिमालयी वनस्पति का जिस तीव्र गति से इस समय विनाश हो रहा है वह आने वाले वर्षों में विश्व की एक ऐतिहासिक दुर्घटना साबित होगी। भावी पीढ़ी हमारे सामने यह अहम सवाल अर्थात यक्ष प्रश्न उठायेगी कि अनेक दुर्लभ उपयोगी पौधों को हमने उगाने व बढ़ाने की जगह, जिन्दा क्यों दफना दिया? विगत कुछ वर्षों में वैज्ञानिक समुदाय का ध्यान इस समस्या की ओर आकृष्ट हुआ है। संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवम् कृषि संगठनों का उद्देश्य पादप विविधता को संरक्षित रखने और विभिन्न पादप जातियों का संग्रह करना है। इन संघठनों का उद्देश्य पादप विविधता को संरक्षित रखने और विभिन्न पादप जातियों का संग्रह करना है। पादप आनुंवाशिक संसाधनों का संरक्षण कई प्रकार से किया जा सकता है। जैसे बीजों को उगाकर, जीन बैंक स्थापित करके, भ्रूण संवर्धन द्वारा अनुकूल स्थान पर उन्हें प्राकृतिक अवस्था में उगाकर सुखाये हुए बीजों को कम तापमान 50 –100 वर्षों तक लम्बी अवधि (बेस संग्रह) तथा 10 – 20 वर्ष तक लघु अवधि (एक्टिव संग्रह) के लिए भंडारित करके बहुवर्षीय पौधों को जीन रिजर्व के रुप में प्राकृतिक दशाओं के अन्तर्गत उन स्थानों पर उगाकर संरक्षित किया जा सकता है, जहाँ वे बहुतायत से पाये जाते हैं। भारत में राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो ने इस कार्य के लिए जलवायु की विभिन्नता के आधार पर 10 क्षेत्रीय केन्द्र स्थापित किये हैं। ये केन्द्र हैं – अंकोला (महाराष्ट्र), कटक (उड़ीसा), जोधपुर (राजस्थान), रांची (झारखण्ड), उमीमाम शिलांग (मेघालय), फागली, शिमला (हिमाचल प्रदेश), त्रिचूर (केरल), हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश), रावलपुरा, श्रीनगर (जम्मू एवम् कश्मीर) एवं भवाली, नैनीताल (उत्तराखण्ड)। मध्य हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उत्तराखण्ड राज्य में जिला नैनीताल के भवाली के पास निगलाट में वर्ष 1986 में क्षेत्रीय केन्द्र स्थापित किया गया है। इसके अन्तर्गत स्थानीय पादप विविधता के संग्रह विदेशों से किस्मों का आयात संग्रहों की विभिन्न परिस्थितियों और उप केन्द्रों में जाँच, उनके गुणों का लेखा – जोखा तैयार कर कैटेलॉग बनाकर तथा वैज्ञानिक समुदाय में माँग के अनुसार बीज तैयार और वितरित करना जैसे कार्य किये जाते हैं। इसमें फसलों तथा अन्य कृषि उपयोगी पौधों की खेती योग्य और जंगली प्रजातियां, औषधीय एवं सुगन्ध युक्त पौंधों, फलों, सब्जियों चारा एवं ईंधन वाली फसलों का संग्रह सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रीय केन्द्रों के अतिरिक्त भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अन्तर्गत सम्बन्धित फसलों में कार्यरत संस्थान, विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय एवं गैर सरकारी संगठन पादप जननद्रव्य सामग्री तथा पारम्परिक बीजों को बचाने में प्रयासरत है।

प्रस्तुत आलेख में वर्ष 1986 से 2007 तक मध्य हिमालय तथा आसपास के पर्वतीय क्षेत्रों में किये गये पादप जननद्रव्यों का कृषि मूल्यांकन कर वांछनीय गुणों एंव कुछ उपयोगी जीन्स को किसानों के खेतों तक पहुँचाने एवं उपयुक्त जानकारी का वर्णन किया गया है।

परिचय

मध्य हिमालय तथा आसपास के पर्वतीय क्षेत्रों में ब्यूरो के निगलाट, भवाली केन्द्र, जिला नैनीताल उत्तराखण्ड द्वारा वर्ष 1985 से अब तक (2007) 142 अन्वेषण एवम् संग्रहण हेतु दौरा कर लगभग 15792 स्थानीय किस्में सुदूर पर्वतीय क्षेत्रों से संग्रहित की गई हैं, जिनमें से प्रमुख क्षेत्र हैं जिला चमोली के रुपकुण्ड (5000 मी), फूलों की घाटी (3000 –4000 मी.) नैनीताल व पौड़ी जिलों के थारु एवम् बुक्सा जनजाति बहूल क्षेत्र (100 –300 मी.) जिला उत्तरकाशी के हर – की – दून, चानसिल घार (4000 मी.) पिथोरागढ़ जिले के गर्ब्याल (4500 मी.) जिला बागेश्वर की सुंदरढुंगा, काफनी एवम् पिण्डारी ग्लेशियर (4500 मी.) प्रमुख दूर दराज व कम जाने पहचाने क्षेत्र हैं।

निष्कर्ष

कुछ समय पूर्व तक मध्य हिमालय क्षेत्र में कृषि के उपयोग में आने वाले पौधों में व्यापक विविधता पाई जाती थी। फलस्वरुप स्थानीय किस्में लम्बे समय से खेतों में बनी हुयी थी और प्रतिकूल परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना कर रही थी परन्तु नई किस्मों को विकसित करने की अंधी होड़ में हमने इस ओर ध्यान देना बन्द कर दिया, जिसके फलस्वरुप उन स्थानीय किस्मों की समाप्ति होने लगी जो वर्षों से पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाओं से संघर्ष कर लोगों का जीवन निर्वाह करा रही थी। नयी किस्में चूंकि संकीर्ण आनुवांशिक आधार वाली होती है, अतः वे प्रतिकूल दशाओं के सामने शीघ्र धराशाही हो जाती है। राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, निगलाट द्वारा स्थानीय किस्मों का नाम, आकार, रंग – रुप आदि गुणों के आधार पर पहचान करके उन्हें जमा किया जा रहा है। विभिन्न स्थानीय किस्मों की विभिन्नता जिन बातों पर निर्भर करती हैं वह है, बुआई का समय, पकने का समय, पौधों की ऊँचाई, कृषि जलवायु परिस्थिति, अलग – अलग प्रकार

की मिट्टी में उगने की क्षमता, भूमि की स्थलाकृति तथा मिट्टी की संरचना और जल धारण क्षमता आदि।

ये स्थानीय किस्में उपज व पकने में विकसित किस्मों से हल्की होती है। इनके पौधें भी अधिकतर लम्बे व अधिक जगह घेरते हैं। फिर उनके संग्रह की आवश्यकता क्यों ? स्थानीय किस्में सदियों से वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद, इतने लम्बे अर्से तक बनी हुई है, तथा इनमें प्रतिरोधी क्षमता भी उत्पन्न हो गयी है। दूसरी ओर विकसित किस्मों में यद्यपि उपज कई गुना अधिक होती है, वे जल्दी पकती है, कुछ बीमारियों के लिए उनमें प्रतिरोधी गुणों का समावेश भी किया जाता है तथापि उनकी अपनी सीमा है। वातावरण के अनुकूल ना होने पर भी बीमारियों की नई उपजातियां पैदा हो जाने पर कभी – कभी ये किस्में महामारी रोगों के समान समाप्त हो जाती है। इनमें सूखा सहन करने की क्षमता भी नहीं होती है।

तब क्या नई किस्मों को विकसित न किया जाये ? क्या बढ़ती हुई आबादी के लिए खाद्यानों की उपज बढ़ाने के लिए कोई उपाय न किया जाए? क्या अधिकतम खेती योग्य भूमि को ऋतु पर्यावरण सुधार अभियान के अन्तर्गत वृक्ष लगाकर वनों में परिवर्तित कर दिया जाये? क्या रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर केवल पशु खाद (गोबर) आदि ही उपयोग में लाई जाए ? इन सब बातों का समाधान है कि पर्यावरण के साथ सभी का सन्तुलन स्थापित रखा जाए। नई किस्मों को विकसित करने के लिए सुधार कार्य चलते रहें परन्तु पुरानी किस्मों का संग्रह भी जल्दी से जल्दी करके उपयोग में लाया जाये। वनों को कृषि के अयोग्य भूमि में ही विकसित किया जाए। रासायनिक उर्वरक एवम् गोबर खादों (जैविक खाद) के सन्दर्भ में भी संतुलन बनाये रखना आवश्यक है। विश्व में इतने पशु नहीं हैं जिनके गोबर से सारी भूमि उर्वरा बनाई जा सके। जहाँ उपलब्धता हो वहां गोबर की खाद के साथ – साथ उपज बढ़ाने के लिए रासायनिक उर्वरकों का उपयोग भी किया जाना आवश्यक है। सन् 1990 से अब तक आंकड़ों को देखा जाए तो इस अवैज्ञानिकता का स्वतः निराकरण हो जायेगा। अर्थशास्त्रियों व वैज्ञानिको द्वारा की गई भविष्यवाणी कि भविष्य में भारत अन्न के अभाव में समाप्त हो जायेगा। दो दशाब्दियों के अन्तर्गत ही यह सब हो चुका होता। परन्तु विचारवान वैज्ञानिकों द्वारा खाद्यानों व रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से आज भारत अनाज के मामले में आत्मनिर्भर है।

मध्य हिमालय से सुदूर, दूर – दराज पर्वतीय क्षेत्रों के किसानों एवम् उनकी महत्वपूर्ण स्थानीय किस्मों के सर्वेक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि विकास के अनाज (सुधरी किस्में) हर वर्ष सफलतापूर्वक नहीं चल पाते हैं। इनमें अधिक वर्षा एवं कम वर्षा से समस्यायें उत्पन्न होती हैं। आड़े समय में हमें भुखमरी से बचाने के लिए मडुवा एवम् मदिरा व अन्य मोटे अनाज ही काम आते हैं।

प्रस्तुत आलेख में सारणी 1 द्वारा क्षेत्रीय केन्द्र भवाली में मध्यम अवधि भंडारण में विभिन्न कृषि, बागवानी, औषधीय, संगधीय एवं अन्य आर्थिक उपयोगी वनस्पतियों की विस्तृत जननद्रव्य स्थिति (अगस्त 2007 तक) निर्दिष्ट किया गया है। सारणी 2 में रबी एवं खरीफ फसलों में कुछ वांछनीय एवं उचित गुणधर्मों वाले जननद्रव्यों की पहचान (वर्ष 1986 –2005) तथा सारणी 3 में कृषि मूल्यांकन द्वारा कुछ उदयग्रत परिग्रहणों की सूची संलग्न की गयी है। ताकि आने वाले समय में शोध अध्येताओं की जननद्रव्य भण्डार का आधार मिल सके।

जननद्रव्य भण्डार का आधार

प्रश्न उठता है कि जननद्रव्य सामग्री की आखिर उपादेयता क्या है? विश्व में इस समय भारत व चीन दो ही ऐसे देश हैं जहाँ पादप जैव विविधता अभी बची हुयी है। यही कारण है कि दुनियाभर के पादप वैज्ञानिक की नजर अपने 'जीन छेड़छाड़' कार्यक्रमों के संचालन के लिए भारत पर गड़ी हुई हैं। जननद्रव्य आधार जितना मजबूत तथा विविधतापूर्ण होगा, नई तकनीक द्वारा फसल सुधार के ये कार्यक्रम उतने ही सफल रहेंगे। अब समय आ गया है कि अपनी अमूल्य वानस्पतिक धरोहर का उपयोग हम भारतीय कृषि में 'दूसरी क्रांति' लाने के लिए खुद करें। उत्तराखण्ड उस चुनौती का सामना करने के लिए एक विराट, बृहद 'वांछित जीन' आधार उपलब्ध कराने में सक्षम है। इस दिशा में राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो के क्षेत्रीय केन्द्र निगलाट भवाली द्वारा निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है।

1. **मसूर** : 1200 जननद्रव्य नमूनों का संकलन एवं मूल्यांकन उत्तराखण्ड, हिमाचल, हरियाणा, पंजाब के अतिरिक्त टर्की, सीरिया आदि देशों से भी किया गया है और छः उत्तम वंशक्रमों की खेती के लिए उपलब्ध कराया गया है।
2. **नौरंगी दाल या राइस बीन** : 1240 नमूनों की जाँच पड़ताल के बाद छः सर्वोत्तम किस्मों को किसान के खेत तक पहुँचाया गया है।
3. **मटर** : इसमें सलेक्शन 18 व हरभजन प्रमुख किस्मों को किसानों के बीच बाटां गया है।

   निःसंदेह व्यापक जैव विविधता वाले इस जननद्रव्य संग्रह से उत्तराखण्ड व अन्य पर्वतीय क्षेत्रों में दलहन क्रान्ति के द्वार खुल सकते हैं।
4. **जड़ी – बूटी** : ब्यूरो का उद्देश्य सिर्फ संकलन आंकड़े बढ़ाना ही नहीं बल्कि विशम परिस्थितियों में खेती करने वाले पर्वतीय किसानों की आर्थिक दशा सुधारना तथा नये राज्य उत्तराखण्ड में खुशहाली लाना भी है।

लगभग 40 – 45 करोड़ रुपये वार्शिक आय की सम्भावना वाले सुगन्धित रोज – जिरेनियम की खेती और तेल निष्कर्षण की योजना का अब तक सफलतापूर्वक प्रदर्शन किया जा रहा है। सुगन्धित रोज जिरेनियम के अलावा रुपये 1000/– से 2,00,000/– प्रति किलो वाले सुगन्धित तेल मुहैया कराने वाले अन्य सुगन्धित पौधे जैसे राजमेरी, लैवेन्डर, मेरुअम,

जर्मन, कैमोमिला, बुल्गेरियन रोज, गार्डन सेज, क्लेरीसेज, शाही जीरा, जंगली गैंदा, आर्टीमिसिया की खेती के विस्तार हेतु प्रयास किये जा रहे हैं।

5. **बागवानी विकास:** नये आयाम गैर परम्परागत तथा बैमौसमी फसलों के विस्तार की बेहतर सम्भावनाओं पर बल देकर फल – फूल, सब्जियों के जननद्रव्य संग्रह पर प्रयास जारी है।

   स्ट्राबेरी : अमेरीकी किस्म ई. सी. 362602

   कीवी : हैवर्ड तथा एलिसन

केन्द्र द्वारा उपर्युक्त किस्मों को किसानों के खेतों तक पहुँचाया गया है।

अन्य पादप संसाधन : भोजपत्र, रुद्राक्ष, जिंको, थुनेर, अमेश, जम्बू, गन्द्रायणी आदि वन संसाधनों के बचाने व उपयोग में लाने के लिए विशेष प्रयास किये जा रहे हैं। जंगली कुलथी (प्रोटीन 40 प्रतिशत), सोयाबीन (प्रोटीन) इत्यादि पर विशेष गहन अनुसंधान व कृषि मूल्यांकन किया गया है। केन्द्र द्वारा गेहूँ की हाईब्रिड 420 का विकास कर पर्वतीय किसानों को मुहैया करवाया जा रहा है।

ऐसा महसूस होना लगा है कि स्थानीय काश्तकारों के भविष्य में सीढ़ीनुमा खेत ही उनके पर्याप्त आय के साधन प्राप्त कर सकते हैं, जिन्हें छोड़कर वे मैदानी क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। स्थानीय फसल प्रजातियों का संग्रहण, उनका मूल्यांकन कर उनके उपयोगी जीन्स को किसानों के खेतों तक पहुँचाने के कार्य में लगा है। ताकि उनका स्थानीय परिस्थिति में संरक्षण हो सके साथ ही साथ स्थानीय कृषक समुदाय की सामाजिक व आर्थिक विकास में इनका उपयोग हो सके।

सारणी 1 : राष्ट्रीय पादप आनुंवाशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र भवाली में मध्यम अवधि भंडारण में विभिन्न कृषि बागवानी, औषधीय, संगधीय एवं अन्य आर्थिक उपयोगी वनस्पतियों की विस्तृत जननद्रव्य स्थिति (अगस्त 2008 तक)

क्रम सं.	फसल वर्ग का नाम	फसलों का नाम	संग्रहित नमूनों की संख्या
1.	खाद्यान्न	....	**3708**
		जौं	647
		मक्का	301
		धान	670
		गेहूँ	2090
2.	छदम – खाद्यान्न कूट – खाद्यान्न	....	**604**
		श्रामदाना	559
		कूट / ओगल	45
3.	मोटे मोटे अनाज	....	**551**
		मदिरा	169
		मडुँवा	324
		काकुन / कौंणी	32
		चीना	24
		ज्वार	02

क्रम सं.	फसल वर्ग का नाम	फसलों का नाम	संग्रहित नमूनों की संख्या
4.	दलहने	....	**3505**
		एडजुकी बीन	08
		उड़द / मास	99
		लोबिया	83
		बकला / रैंयूचता	19
		फँच बीन / राजमा	1125
		चना	02
		मूँग	03
		कुलथी कुलथी / गहत	199
		खेसरी	11
		म्सूर	1237
		मेठ	06
		कौंच	04
		मटर	212
		टरहर	28
		राइसबीन / नौरंगी / गॅरुस / रयास	90
		सोयाबीन / भट	379
5.	तिलहन	....	**549**
		सरसों	412
		मूँगफली	81
		टलसी	01
		तिल	52
		सुरजमुखी	03
6.	सब्जियां	....	**317**
		पेठा	04
		लौकी	30
		बैंगन	01
		गजर	01
		बथुवा	06

क्रम सं.	फसल वर्ग का नाम	फसलों का नाम	संग्रहित नमूनों की संख्या
		भिण्डी	44
		मूली	118
		धारीदार तोरई	21
		सेम / छेमी	27
		पालक	27
		शलगम	01
		ककड़ी	17
		मुलायम तोरई	02
		मीठा करेला	10
		कद्दू	08
7.	मसाले व छोंक वाले पादप	....	**1556**
		चमसूड़/ चमसूर/ हालिंग	12
		मिर्च	1175
		धनिया	197
		मेथी	96
		भांग	22
		प्याज	10
		भंगजीरा	44
8.	औषधीय एवं संगध पादप	......	**181**
9.	फसलों की जंगली प्रजातियां	......	**374**
		ऐजीलोप्स	97
		ऐलियम प्रजातियां (प्याज एवं लहसुन)	62
		ओट प्रजातियां	32
		खीरा (जंगली)	31
		जौं प्रजाति	02
		भिंडी प्रजातियां	14
		गेहूँ प्रजातियां	135
		पेड़ वाला टमाटर	01
10.	साज – सज्जा वाले पौधे	....	22
		गेंदा हाजरी प्रजाति	22
	कुल योग		**11367**

सारणी 2: राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र भवाली में रबी एवं खरीफ फसलों में कुछ वांछनीय एवं उचित गुणधर्मों वाले जननद्रव्यों की पहचान (वर्ष 1996 – 2005)

क्रम सं.	फसल	लक्षण	परिग्रहण
		रबी	
1	गेहूँ (ट्रीटिकम ऐस्टीवम)	पहाड़ी बंट प्रतिरोधी	एचएस – 190, एचबी –501, एचडी–2329, सी–306, ईसी– 339610, ईसी–339622, ईसी–313718, ईसी–313729।
		पीली, भूरी व काली रतुवा रोधी	एचडी –2328, वीएल–616, ईसी–463403, ईसी–541853, ईसी– 514359, आईसी–279869, आईसी–319810।
		पीला, भूरा व काला रतुवा तथा चूर्णि ति फफूंद रोधी	ईसी–339626, ईसी–339630, ईसी–374931, ईसी–394939, ईसी–374915, ईसी–374959, ईसी–374969, ईसी–399766, ईसी–374933, आईसी–082401, आईसी–104577।
2	जौं (हार्डियम वुल्गेयर)	पीला रतुवा रोधी	ईसी–299356, ई.सी–492354, ईसी–492327, ईसी–492346, ईसी–450396, वीएलबी–64
	मसूर (लेंस क्यूलीनेरिस)	रतुवा एवं जड़ गलन रोधी	ईसी–267633, ईसी–223197, ईसी–267580, ईसी–223197ए, ईसी–267625
		चूर्णित फफूँद रोधी	एनआईसी–059902, एनआईसी–062516, एनआईसी–062517, एनआईसी–059902, एनआईसी–062516, एनआईसी–062517
		झुलसा व म्लानी रोग रोधी	एनआईसी–267541, ईसी–267577, ईसी–255497, ईसी–255500, ईसी–267526ए
		100 दानों का वनज (6.0 –7.5 ग्रा.)	ईसी–267545बी, ईसी–267623, ई.सी. 329164
		मोटा दाने वाले (0.66 –0.76 सेमी. व्यास)	ईसी–329163, ईसी–329161, ईसी–267623, ईसी–225452, ईसी–267526ए, ईसी–267632, ईसी–267536, ईसी–241480 ईसी–329168 सी. वी. क्रिम्सन
		म्लानि, रतुवा व चूर्णित फफूँद रोधी	ईसी–223197ए, ईसी–267625बी., ईसी–267633, ईसी–223197, ईसी–267569, ईसी–267631, ईसी–267642
		खरीफ	
3	मक्का (जिया मेस)	झूलसा राग रोधी	आईसी–077524, आईसी–077458, आईसी–077478, आईसी–077588, ईसी–232160, ईसी232164, ईसी–232171 ईसी–232176, ईसी–232228, ईसी–232188, ईसी–232164, ईसी–232173, ईसी–232178, ईसी–232179, आईसी–082054, एनआईसी–012212, एनआईसी–015828, एनआईसी–015838
		द्वि उद्देशीय (चारा एवं बीज)	आईसी–097883, आईसी–097896, ईसी–232187, ईसी–232195
4	मडॅवा (इल्यूसिन कोराकाना)	गर्दन व पत्ती का झोंका रोग रोधी	वीएल–212, वीएल–213, आईसी–096798
5	राजमा (फैंजियोलस वुल्गेयर)	पत्तियों का धब्बे रोग रोधी (सरकोस्पोरा)	ईसी–062161, आईसी–022607
		पीत नस विशाणु रोधी	एनआईसी–058298, आईसी–101714

क्रम सं.	फसल	लक्षण	परिग्रहण
6	मिर्च (कैप्सीकम अन्नूअम)	विभिन्न रोग रोधी	आईसी–099913, ईसी–362922, ईसी–362925, ईसी–362930, ईसी–362938, ईसी–339047, आईसी–119200, आईसी–353483, आईसी–353486, आईसी–355950, आईसी–356514, आईसी–355978, आईसी–356512, आईसी–356515, आईसी–355954, आईसी–393284, आईसी–356515, आईसी–341441, आईसी–356511, आईसी–281858, आईसी–382663, आईसी–278336, आईसी–266309, आईसी–266308, आईसी–266311, आईसी–371673, आईसी–266307, आईसी–392325, आईसी–398771, आईसी–469887, आईसी–278317, आईसी–385799, आईसी–317836, आईसी–383072
7	राइस बीन (विग्ना अम्बीलाटा)	अधिक फलियां युक्त	ईसी–037240, ईसी–097882ए
		सरकोस्पोरा रोधी	आईसी–025036, आईसी–100195, ईसी–108080
		उद्यानकीय पौधे	
8	स्ट्राबेरी (फ्रेगेरिया वेस्का)	फल बड़ा तथा लम्बे समय तक टिकाऊ	ईसी–362602
	ग्लेडियोलाई	फूलों की संख्या	आईसी–318987, आईसी–318992, आईसी–318994, आईसी–318998, आईसी–319000, आईसी–319002
9	कीवी (एक्टिनीडिया चाइनेंसिस)	फलों की संख्या, सुवास, अधिक उपज	ईसी–064093 सी. वी. हेवार्ड तथा ईसी–024672 सी. वी. एलिसन
10	नींबू (सिट्रस स्पीसीज)	फलों की गुणवत्ता व उपज	सिट्रस आरेन्टीफोलिया आईसी–319045 (कागजी नींबू– उत्तरांचली कागजी नींबू) आईसी–319071 (मद काकर), सि डिक्यूमना (आईसी–319044), सि जम्भीरी (आईसी–319059), सि. मेडिका (आईसी–319067) तथा सि. साईनेंसिस (आईसी–319066), आईसी–319044, आईसी–319065
		औषधीय एवं संगधीय पादप	
11	रोज जिरेनियम (पिलारगोनियम ग्रेव्योलेन्स)	शीतोश्ण हिमालय में अनुकुलनशीलता तेल की अधिक मात्रा तथा अच्छी गुणवत्ता वाल सुगंध	आईसी–296494 (जिरेनियोल–28.56 प्रतिशत, सिट्रोनिलोल–32.28 प्रतिशत तथा आईसी–553286 (सिट्रोनिलोल–62.03 प्रतिशत)
12	गार्डन सेज (साल्विया ऑफिसीनेलिस)	तेल की मात्रा 0.22–0.55: व अच्छी गुणवत्ता	ईसी–182901, ईसी–182903, ईसी–314221, ईसी–314226

मत्स्य स्वास्थ्य

मत्स्य पालन रेसवे में रेनबो ट्राउट (ओंकोरिकस माइकिस) की संक्रामक बीमारियों का अध्ययन

सुरेश चन्द्रा एवं *ममता जोशी

भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, चम्पावत केन्द्र एवं
*डी.एस.बी. कैम्पस, कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्रस्तावना

जलवायु एवं जीवन शैली के बदलते स्वरूप के साथ देश की बढ़ती विशाल जनसंख्या को सस्ते दाम में पौष्टिक प्रोटीनयुक्त भोजन उपलब्ध कराना वर्तमान की एक महत्वपूर्ण चुनौती है। कृषि, बागवानी, पशुपालन के साथ मछली पालन भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता हैं। देश के पर्वतीय क्षेत्रों की दुर्गम विषम भौगोलिक स्थितियों में खेती–बाड़ी का व्यवसाय अनेक तरह की कठिनाईयों से होकर गुजरता है, जिससे उत्पादन और उत्पादकता दोनों ही प्रभावित होते हैं। पहाड़ी अंचलों में मत्स्य पालन व्यवसाय प्रोटीन युक्त खाद्य की सरल उपलब्धता सुनिश्चित करने के साथ–साथ जल संरक्षण में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। पानी का कम तापमान एवं मछलियों की धीमी बढ़वार शीतजल मछली पालन की प्रमुख विशेषतायें हैं। हाल के दिनों में पालन गतिविधियों के सघनीकरण के फलस्वरूप अनेक समस्यायें प्रायः देखी जाती हैं। इसके पीछे मुख्यतः उपस्थित रोगाणु, प्रदूषित जलीय वातावरण तनाव एवं मछलियों की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है।

रेनबो ट्राउट (Oncorhynchus mykiss)

किसी भी प्रजाति की बीमारीयों को जानने से पूर्व इसकी आवश्यकतायें जैविकी एवं पालन तंत्र के बारे में जानकारी आवश्यक है। शीतजल मछली पालन में एक अभ्यागत मत्स्य प्रजाति अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसका सामान्य नाम रेनबो ट्राउट तथा वैज्ञानिक नाम ओंकोरिकस माइकिस (Oncorhynchus mykiss) है। सालमोनिडी वर्ग की यह रेनबो ट्राउट मूलतः उत्तर अटलांटिक एवं उत्तर पैसिफिक की है। यह शीतजल प्रजाति भारत में 19वी सदी के प्रारम्भ में स्पोर्ट गतिविधियों के लिये लायी गयी। शरीर के बीच में इन्द्रधनुषी रंग दिखाई देता है। इसी के चलते इसे रेन्बो ट्राउट के नाम से जाना जाता है। उच्च आक्सीजन युक्त बहता हुआ साफ जल जिसका तापमान 0-21° सें.ग्रे. तक रहता हो, में यह प्रजाती पाली जा सकती है। यह मछली मांसाहारी प्रकृति की है। अतः दिये जाने वाले आहार में प्रोटीन की 40–45 प्रतिशत तक मात्रा दी जाती है। इसकी बढ़वार सामान्य रूप में पहले वर्ष में 200–300 ग्राम तक द्वितीय वर्ष में 500–600 ग्राम तक तथा तृतीय वर्ष में 1000 ग्राम तक हो जाती है। नर दूसरे साल में परिपक्वता प्राप्त कर लेता है। जबकि मादा मछली तीन साल के बाद ही अण्डे देती है। अण्डे 3–5 मिमी आकार एवं 40–60 मि.ग्रा. वजन तक के पीलापन लिए होते हैं। एक मादा मछली से सामान्यतः लगभग 2000-2500 प्रति किग्रा की दर से अण्डे प्राप्त किये जा सकते हैं। निषेचित अण्डों से हैचरी में लार्वी निकलने के लिये कुल 310–370 डिग्री तापमान की जरूरत होती है। सामान्यतः चम्पावत केन्द्र की हैचरी में 4–12° सें.ग्रे पानी के तापमान के बीच हैचिंग में 35–48 दिन तक लग जाते हैं। चम्पावत (उत्तराखण्ड) की परिस्थितियों में जहां पानी का वर्ष भर तापमान 2–23° सें.ग्रे. के बीच देखा जाता है वहां इसका प्रजनन काल दिसम्बर – फरवरी तक होता है। इस दौरान अण्डे समान आकार एवं पीलापन लिए होते है। थोड़ा सा उदर में दबाव देने से अण्ड़े बाहर निकल जाते है।

मत्स्य पालन एवं हैचरी में बीज उत्पादन के दौरान ट्राउट में पायी जाने वाली विभिन्न तरह की स्वास्थ सम्बन्धी समस्याओं का एक बेसलाइन डेटाबेस विकसित करने एवं उनके उचित समाधान खोजने हेतु

प्रस्तुत अध्ययन वर्ष 2011–2014 के दौरान शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय (भाकृअनुप), के छीड़ापानी चम्पावत प्रक्षेत्र पर किया गया जो समुद्र तल से 1620 मीटर की ऊंचाई पर स्थित है। सैम्पल 1 मिलियन क्षमता वाले ट्राउट हैचरी, 30 से 150 वर्ग मीटर आकार के 8–10 नर्सरी एंव बड़ें रेसवे से प्राप्त किये गये। नर्सरी में 70–100 फ्राई/मी2 पाली गयी तथा पानी के बहाव 70–100 लीटर/मिनट रखा गया जबकि बड़ें रेसवे में संचय घनत्व 3–8 मछलियां (औसत 280–900 ग्राम)/वर्ग मीटर निर्धारित किया गया और इसमें 150–175 लीटर /मिनट पानी का बहाव उपलब्ध कराया गया। हैचरी में 45x45x21 सें0मी0 आकार के हैचिंग टबों में 2000–3500 अण्डे तक रखे जाते है जिसमें 5–7 लीटर/मीटर पानी का बहाव उपलब्ध कराया जाता है। हैचिंग अवधि तापमानुसार घटती–बढ़ती है। अध्ययन अवधि में मछलियों की संख्यानुसार हर माह जांच की गयी। मछलियों की लम्बाई वजन एंव अन्य व्यवहारिक एंव शाररिक परिवर्तनों को अंकित किया गया। बीमारी की पहचान हेतु निर्धारित प्रोटोकोल का अनुपालन किया गया। इसमें व्यवहारिक एंव शाररिक लक्षण, सैम्पल नम्बर, तारीख, एंव प्रतिशत संक्रमण, संक्रमण का प्रकार, अल्प/मध्यम/अधिक मछलियों की मृत्यु का लेखा जोखा एंव अन्य सम्बंधित जानकारियां एकत्रित की गयी। मुख्य संक्रामक बीमरियों में बडी ट्राउट (3 वर्ष के उपर) में आँख की बीमारी, जबड़ो एंव मुंह की लाल बीमारी, सफेद दाग की बीमारी, ट्राइकोडिना/चिलोडिनिला द्वारा संक्रमण, सिर के ऊपर घाव, बड़ी मछलियों में कवक संक्रमण एंव अण्डों मे कवक संक्रमण आदि प्रमुख है।

1. रेनबो ट्राउट में ऑख की बीमारी

ऑख की बीमारी मुख्य रूप से बड़ें आकार की मछलियों में पायी जाती है। प्रभावित मछलियों की ऑखों में आरम्भ में हल्की एक लाल लाइन दिखती है और फिर धीरे–धीरे पूरी ऑख सफेद हो जाती है जिसमें एक सफेद परत से चढ़ जाती है। पूरी ऑख का बाहर निकलना, ऑख के लेंन्स का सिकुड़ना, मछलियों का कमजोर दिखना, रंग अधिक काला हो जाना, पूरी तरह से मछलियों का अंधा हो जाना और अन्त में मछलियों की मृत्यु हो जाती है। छोटी 1–2 साल की रेनबो ट्राउट में यह बीमारी बहुत कम देखी गयी। ऐसा पाया गया है कि अधिक संक्रमण की अवस्था में लगभग 35–60 प्रतिशत तक ट्राउट मछलियों की जनसंख्या रेसवे में प्रभावित हो गयी। अंधेपन की वजह से मछलियाँ दिया हुआ खाद्य ठीक तरह से ग्रहण नहीं कर पाती हैं और धीरे–धीरे कमजोर होकर मरने लगती हैं। कमजोर अंधी मछलियों को बड़े जलीय पक्षी भी आसानी से अपना ग्रास बना लेते है। संक्रमित ट्राउट की मृत्यु दर 30 से 40 प्रतिशत तक देखी गयी है। गर्मियों में इसके प्रभाव से ज्यादा मृत्युदर देखी गयी जबकि जाड़ो में इन प्रभावित मछलियों की हानि बहुत कम रिकार्ड की गयी। चम्पावत प्रक्षेत्र पर विभिन्न उम्र की ट्राउट मछलियों पर कियें गये अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि प्रभावित तीन वर्ष के मादा ट्राउट प्रजनकों/ ब्रूडर में शाररिक वजन की औसत गिरावट लगभग 30 से 44 प्रतिशत तक एंव नर में यह गिरावट 43 से 55 प्रतिशत तक पायी गयी है। जहाँ स्वस्थ्य तीन वर्ष की मछलियों का औसत वजन 611 ग्राम था एंव अण्ड उत्पादन दर 0.159 ग्राम अण्डे/ ग्राम मछली के वजन के बराबर थी वहीं ऑख की बीमारी से ग्रस्त तीन वर्ष की मादा ट्राउट का औसत वजन लगभग 426 ग्राम एंव अण्ड उत्पादन दर 0.108 ग्राम अण्डे / ग्राम मछली के वजन के बराबर दर्ज किया गया। वर्ष 2014 में 4 वर्ष की सामान्य मादा मछलियों का औसत वजन 967 था जबकि ऑख संक्रमित मादा प्रजनकों का औसत वजन 631ग्राम दर्ज किया गया। इस प्रकार संक्रमित मछलियों में यह गिरावट लगभग 34 प्रतिशत जबकि अण्ड उत्पादन दर में 31 प्रतिशत तक की कमी देखी गयी। प्रभावित मादा मछलियों से प्राप्त अण्डों का आकार छोटा, एंव हैचरी में निषेचन दर एंव उत्तरजीविता भी अपेक्षाकृत कम पायी गयी। इस तरह यह इंगित करता है कि रेनबों ट्राउट मछलियों में ऑख का संक्रमण आर्थिक रूप से भी अत्यन्त नुकसानदायक है। ऑख संक्रमित मछलियों के बाजार भाव में भी कमी देखने को मिली। यद्यपि लम्बाई में विशेष गिरावट नही देखी गयी, परन्तु वजन में उल्लेखनीय गिरावट देखी जाती है। मछलियों की एक सामान्य स्वस्थ्यता कर स्तर जानने के लिए कंडिसन फैक्टर का अध्ययन किया गया और ज्ञात हुआ कि चम्पावत प्रक्षेत्र की पालन अवस्थाओं में बीमार मछलियों में यह 0.62 से 1.19 था जबकि स्वस्थ्य मछलियों में यह 1.2 से अधिक पाया गया। इसी तरह बीमार संक्रमित मछलियों में हिपैटोसोमेटिक इन्डेक्स 1.0 से कम या 1.55 से अधिक था। जबकि स्वस्थ्य मछलियों में यह 1.0 से 1.55 तक पाया गया। ऑखों का संक्रमण अनेक कारकों पर निर्भर रहता है। वर्तमान में इसके बुनियादी कारणों को जानने के लिए विभिन्न तरह के अध्ययन प्रगति पर है। अन्यत्र ऑख की बीमारी पर किये गये शोध कार्यो से यह ज्ञात होता है कि इसमें डाईजनिक ट्रिंमोटोड, डिप्लोस्टोमियम स्पैथिकम अथवा वैक्टिरिया में फ्लेवोवैक्टिरियम, विसिला या आवश्यक खाद्यों तत्वो की कमी या अत्यधिक यूवी रैडियेसन आदि से उत्पन्न होता है। इन समस्त कारकों एंव चम्पावत प्रक्षेत्र के स्थानीय परिवेश को दृष्टिगत रखते हुये ऑख की बीमारी पर शोध कार्य किया जा रहा है।

2. ट्राउट के जबड़ो एंव मुँह की लाल बीमारी

जब पालन रेसवे के पानी का तापमान 15 0ब से अधिक हो जाता है और यह लम्बी अवधि तक कायम रहे, तब इस बीमारी का प्रकोप रेनबो ट्राउट मछलियों में देखा गया। चम्पावत प्रक्षेत्र में परमई माह की शुरूवात में 2–3 दिन के अंतराल में 1–2 मछलियां मरी पायी गयी, लेकिन धीरे–धीरे इनकी संख्या बढ़ने लगी। मरी हुयी मछलियों का विस्तृत निरीक्षण करने से ज्ञात हुआ कि नीचे और ऊपर के जबड़ों और मुँह के अन्दर लालिमा लिये हुये सतही घाव पाये गये। गलफड़ों के ऊपर भी लाल एंव गम्भीर अवस्था में

गलफड़ें सड़े हुये दिखायी दिये। कुछ मरी हुई मछलियों के पश्च भाग में मल द्वार के पास बड़े–बड़े घाव पैदा हो गये, निरन्तर ट्राउट मछलियों की मृत्यु रेसवे में पायी गयी। वर्ष 2013 के मई से अगस्त के अन्तिम सप्ताह तक बहुत अधिक ट्राउट मरी हुयी पायी गयी। सभी तरह के संक्रमणों में इस रोग द्वारा लगभग 6 से 49 प्रतिशत ट्राउट मछलियों की हानि दर्ज की गई। अतः ऐसा कहा जा सकता है कि यह एक अत्यन्त घातक बीमारी हैं। पालन रेसवे की नियमित सफाई, सही जल आपूर्ति एंव बीमारी की दशा में दवा का प्रयोग लाभदायक होता है। वर्ष 2013 में चम्पावत प्रक्षेत्र पर कुल 126 मरी हुयी ट्राउट मछली में इस तरह के शाररिक लक्षण दर्ज किये गये।अन्य जगहों पर किये गयें शोध कार्यो से ज्ञात होता है कि यह संक्रमण मुख्यतः यारसिनिया वैक्टिरिया द्वारा होता है। जिसका अधिकतम फैलाव 15–180 ब के बीच होता है प्रस्तुत अध्ययन में भी इसी तरह के तापमान में यह सक्रंमण पैदा हुआ। गर्मियों के महिनों में पानी की उपलब्धना लगभग एक चौथाई से भी कम तक ही प्राप्त होती है। इसके साथ वातावरणीय तापमान भी बढ़ता है। जिनके चलते इस संक्रमण का फैलाव अधिक होता है। ऐसा पाया गया है कि वैक्टिरिया के कुछ महिनों तक बिना बीमारी के लक्षण पैदा किये रह सकता है जैसे ही वैक्टिरिया उपयुक्त वातावरण ट्राउट रेसवे में स्थापित होते ही इनकी संख्या बढ़ती है और लाल मुँह की बीमारी के लक्षण पैदा होते है। चम्पावत प्रक्षेत्र में क्लोरोटैट्रासाइक्लीन 70 मि0ग्रा/किग्रा मछलियों को 7 दिन तक खाने में देने से इस बीमारी पर पूर्ण रोकथाम पायी गई। इसके साथ पानी के तापमान में सितम्बर माह में गिरावट भी इसकी रोकथाम में सहायक सिद्ध हुयी। सितम्बर माह के बाद इस बीमारी का प्रकोप नही देखा गया।

3. सफेद दाग की बीमारी

यह रेनबो ट्राउट के फ्राई एवं अंगुलिकाओं की एक प्रमुख बीमारी है। मुख्यतः छोटी मछलियाँ (जीरा तथा अंगुलिकायें) इस रोग से अधिक संक्रमित होती हैं। चम्पावत प्रक्षेत्र पर यह बीमारी अगस्त– सितम्बर माह में अधिक पायी गयी। इन नर्सरीयों में 0.96 ग्राम/45 मिमि – 4.40 ग्राम/70मिमि की फ्राई 90 से 145 प्रतिवर्ग मीटर की संख्या में पाली जाती है। प्रतिदिन लगभग 8–10 ट्राउट फ्राई मरी हुयी पायी गयी। संक्रमित मछलियों के शरीर तथा गलफड़ों के ऊपर छोटे–छोटे सफेद धब्बे जैसे दिखाई दिए। बेचैनी, तालाब के किनारो की तरफ मछलियों का आना, शरीर को किसी चीज पर रगड़ना आदि प्रमुख लक्षण देखे गये। इसे खुजली की बीमारी के नाम से भी जाना जाता है। माईक्रोस्कोप मे देखने पर एक्थोपिथिरियस मल्टीफिलिस नामक परजीवी की उपस्थिति पायी गयी। इनमें सी आकार का केंन्द्रक साफ दिखाई देता है। यह एक प्रोटोजोन परजीवी है जो इस बीमारी का मुख्य कारण है। शीतजल मछलियों विशेषकर जीरे एवं अंगुलिकाओं का यह एक प्रमुख रोग है। बीमार मछलियों की त्वचा एवं पंखों के उपर 0.5–1.0 मि. मि. आकार के सफेद दाने जैसी अत्यन्त छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ दिखाई पड़ती हैं। इनकी जनसंख्या वृद्धि बहुत तेजी से होती है। यह 12 से 18 घंटे की अवधि में 1,000 तक नये परजीवियों को जन्म देता जो पूरे तालाब में परपोषी की तलाश में घूमते रहते हैं, और मौका मिलते ही मछली के शरीर पर चिपक कर लाल रक्त कणिकाओं को खाते हैं। इनके संक्रमण से मछलियों में रक्त एंव हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है। जिससे शरीर की श्वास लेने की शक्ति भी कम हो जाती है। मछली की त्वचा एवं रक्त कोशिकाओं को खाकर ये परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं तथा सफेद दाननुमा ग्रन्थियों से बाहर निकल जाते हैं। मछलियों को 2–3% नमक के घोल में 2–3 मिनट तक डुबाकर तालाब में छोड़ना काफी लाभप्रद पाया गया। यह क्रिया यदि एक सप्ताह तक की जाय तो इन परजीवियों से छुटकारा पाया जा सकता है। जलीय तापमान के बदलाव से भी इनके नियन्त्रण में मदद मिलती है।

4. ट्राइकोडिना/चिलोडिनिला द्वारा संक्रमण

गर्मियों में यह सक्रमण ट्राउट मछलियों में अधिक देखा जाता है। जब उनकी शाररिक क्रियायें पानी की गुणवत्ता गिरावट एंव तापमान वद्धि शिथिलता पड़ जाती है। यह भी जीरों, अंगुलिकाओं एंव जुबेनाइल में अधिक पायी गयी। ये सामान्यतः त्वचा, पंखों एवं गलफड़ों के ऊपर में रहते हैं। गलफड़ों का लाल दिखाई देना, छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देना आदि सामान्य लक्षण हैं। बीमार मछलियों में खुजली होने लगती हैं जिससे मछलियाँ शरीर को रगड़ने की कोशिश करती हैं। शरीर का रंग सामान्य से ज्यादा काला हो जाता है। शरीर का म्यूकस (ललसता द्रव्य) भी अधिक मात्रा में निकलता है। बीमार मछलियों का झुण्ड, सतह एवं किनारों पर अधिकतर आते रहते हैं।ट्राइकोडिना एंव चिलोडिनिला भी प्रोटोजोन परजीवी है, इसकी कई प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिनकी पहचान सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा आसानी से की जा सकती है। अधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, जलीय वातावरण के दूषण से उत्पन्न तनाव, बहुत अधिक संख्या में मछली का संचयन, अल्पाहार, इत्यादि इसके प्रमुख कारण पाये गये हैं। गर्मियों के महीनों में अधिक तापमान एंव जल की कमी से ट्राउट मछलियों में इनका संक्रमण बहुत अधिक देखा गया। ये परजीवी शरीर के जीवद्रव्य को चरते हैं। उचित प्रबंधन कार्यो द्वारा इनके संक्रमण को प्रभावी रूप से कम किया जा सकता है।

5. डैक्टाइलोगाइरस

सामान्यतः इस ट्रिमैटोड परजीवी की उपस्थिति रेनबो ट्राउट मछलियों में अप्रैल से जून तक अधिक देखी गयी। यह परजीवी फाइलम प्लेटीहैल्मैन्थिस के मोनोजिनिया वर्ग में आते हैं। इन कमियों के जीवन चक्र में एक ही होस्ट होता है। प्रभावित मछलियों के शरीर के ऊपर हल्के नीले रंग का म्यूकस बहुत अधिक देखा गया। मछलियों का रंग भी सामान्य से ज्यादा काला हो जाता है।

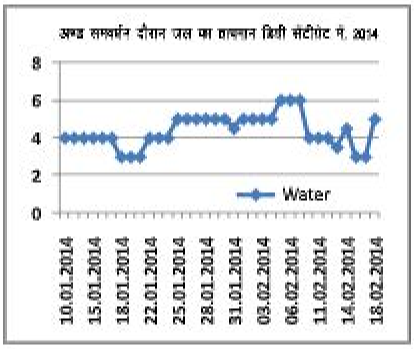

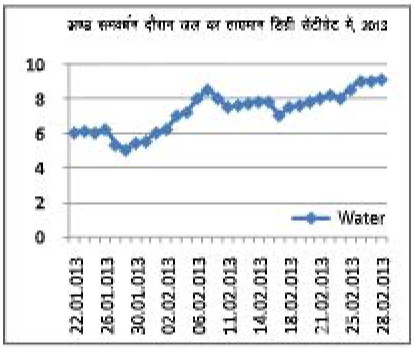

गलफड़ो के ऊपर हल्के सफेद पीले रंग की धारियाँ–सी दिखी हैं। गलफड़ों का रंग भी सामान्य रंग से अलग पीले लाल रंग का पाया गया। बहुत ज्यादा संक्रमण की अवस्था में गलफड़ों के ऊपर हल्के पीले रंग की रूई जैसी संरचना जिसमें मिट्‌टी इत्यादि भरी रहती है,देखी गयी। इनका प्रभाव विशेषकर गलफड़ों के ऊपर होता है। डैक्टाइलोगाइरस नामक कृमि से मछलियों में यह संक्रमण होता है। कृमियों की पहचान इसमें उपस्थित दो आँख के धब्बे एवं 14 किनारे के हुक (सात जोड़े) एवं दो बड़े हुक से होती है। ये अण्डे देती हैं। ऐसे तालाब जिसमें कार्बनिक पदार्थ ज्यादा हों, मछलियों की संख्या अधिक हो, ऑक्सीजन की मात्रा कम रहती हो, अमोनिया की मात्रा अधिक रहती हो, पानी का पी एच सामान्य से नीचे हो, तो इनके संक्रमण की आशंका बहुत अधिक रहती है। छोटी–बड़ी सभी मछलियाँ इससे प्रभावित होती हैं। ये मछली के गलफड़ों के तन्तुओं को खाकर नष्ट कर देते हैं जिससे मछलियों की श्वसन क्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है और मर जाती है। चम्पावत प्रक्षेत्र पर गलफड़ो से ट्राईकोडिना एंव डैक्टाईलोगाईरस साथ–साथ पाये गये। फॉर्मेल्डिहाइड 20–25 मिग्रा/लीटर की दर से तालाब के पानी में देने से काफी लाभ मिलता है लेकिन नर्सरी तालाबों के अलावा बड़े तालाबों में इसका प्रयोग महँगा होता है। मैलाथियॉन 0.25 मिग्रा/लीटर के हिसाब से देने से भी इसकी रोकथाम हो जाती है, लेकिन अधिक संक्रमण में दवाई का सेवन करना ही उपयोगी होता है।

6. बड़ी मछलियों में कवक संक्रमण

अक्टूबर से नवम्बर के बाद कुछ मछलियों के ऊपर सफेद दाग दिखाई देते है। कभी–कभी ब्रीडीग महिनों के पूर्व भी प्रजनकों में व्यवहार परिवर्तन के कारण एक दूसरे के पंख नोचने जैसी क्रियायें देखी जाती है। फिर इन में कवक के संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। इनकी व्यापकता जाड़ो के पूर्व महीनों अधिक पायी गयी।

वर्ष 2011.2014 के दौरान चम्पावत प्रक्षेत्र पर पायी गयी संक्रामक एंव असंक्रामक रोगग्रस्त रेनबो ट्राउट मछलियां

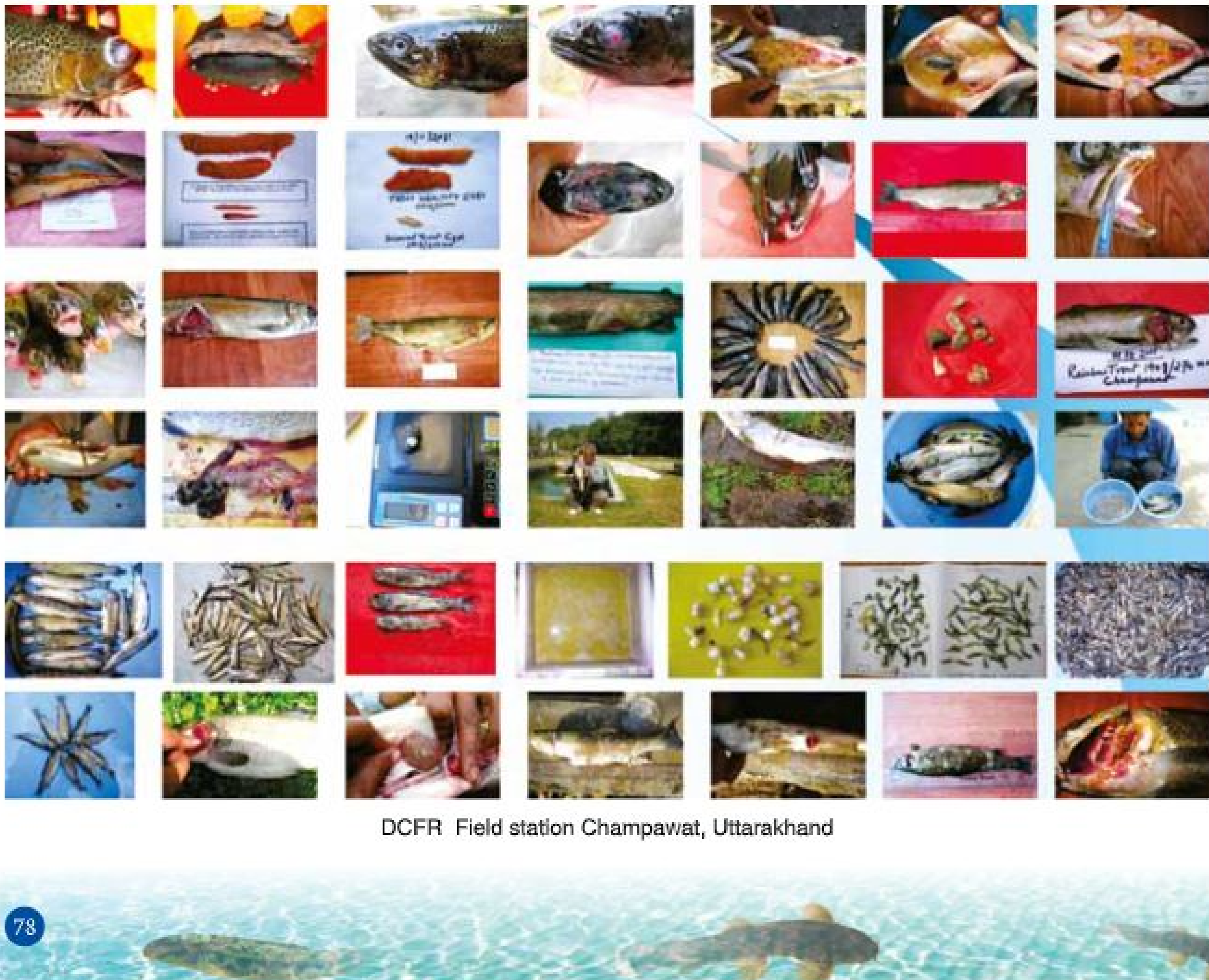

DCFR Field station Champawat, Uttarakhand

7. अण्डों मे कवक संक्रमण

निषेचित अण्डों में कवक संक्रमण से लगभग 16–22 प्रतिशत तक अण्डें खराब हो जाते है। अध्ययन में पाया गया कि हैचरी संमवर्धन के दौरान सबसे अधिक अण्डे खराब होने की दर पहले, तीसरे एंव पांचवे हफ्ते में अंकित की गयी। ऑइ स्पॉट विकसित होने एंव हैचिंग पूर्व भी अण्डें खराब होने की दर बढ़ जाती है। है, 10±1.50c जल का तापमान सामान्यतः रेनबो ट्राउट अण्डों के हैचिंग में सर्वाधिक उपयुक्त पाया गया है जिसमें कम फन्गल संक्रमण और अधिक उत्तरजीविता दर पायी जाती है। उत्तम अण्डें प्राप्त करने के लिए स्ट्रीपिंग हेतु स्वस्थ्य ट्राउट प्रजनकों का चयन, परिपक्व ट्राउट का सही समय पर स्ट्रिपिंग,स्टिपिंग के समय साफ सफाई का विशेष ध्यान रखने से इनका प्रभाव कम किया जा सकता है स्पेरोलैगनिया, नामक कवक के बारम्बार संक्रमण में यह देखा गया है। कि अण्डे वाली ट्रे नीचे कार्बनिक अवशेष जमा होते रहते है। जो पाइप लाइन द्वारा प्रवेश पाते है। फैन्गल हाइफी खराब अण्डों के ऊपर उत्पन्न हो जाते है, जो फिर अन्य स्वस्थ्य अण्डों को नुकसान पहुँचाने की क्षमता रखते है। अध्ययन में पाया गया कि आने वाले पानी के तापमान मे अधिक गिरावट एंव बढ़ना इस तरह के संक्रमण के फैलाव मे सहायक होते है। आईड ओवा (डिम्ब नेत्र) बनने के बाद यदि अण्डे ठीक तरह से फैलाये नही गये तो क्लोगिक हो जाती है एक दो सफेद अण्डों पर 5 से 9 स्वस्थ्य अण्डें चिपक जाते है। खराब अण्डें हैचिंग ट्रे मे रहने पर कवक फैलाव अधिक होता है।

उप महानिदेशक, भा0 कृ0 अनु0 परिषद, नई दिल्ली का भ्रमण

दिनांक 31 मई 2016 को उपमहानिदेशक (मात्स्यिकी) भा.कृ.अनु.परि. नई दिल्ली द्वारा निदेशालय में भ्रमण किया गया। इस दौरान उनके द्वारा निदेशालय की प्रयोगशालाओं, हैचरी, और निदेशालय द्वारा प्रदत्त सुविधाओं को देखा गया। उनके द्वारा निदेशालय के वैज्ञानिकों, तकनीकी अधिकारियों एवं प्रशासनिक वर्ग व शोध छात्र, छात्राओं के साथ एक बैठक भी की गयी। अपने भ्रमण के दौरान उपमहानिदेशक महोदय ने निदेशालय में नवस्थापित प्रयोगशाला–"न्यूट्रिश्नल फिजियोलौजी लैबोरेटरी" तथा "हिमानी एक्वेरियम" का भी अनावरण किया।

स्वस्थ जीवन में प्रोटीन का उपयोग

मनोज कुमार, ओम प्रकाश जोशी
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि भवन, नई दिल्ली

प्रोटीन हमारे शरीर के लिए सबसे जरूरी पोषक तत्वों में से एक है। पानी के बाद प्रोटीन सबसे ज्यादा मात्रा में हमारे शरीर में मौजूद होते हैं। प्रोटीन मुख्य रूप में हमारे शारीरिक विकास और वृद्धि में सहायक पोषक तत्व होते हैं। हमारे शरीर की सभी प्रक्रियाओं को अलग–अलग मात्रा में और अलग–अलग समय पर प्रोटीन की आवश्यकता होती है। शरीर हर समय प्रोटीन का इस्तेमाल करता रहता है। ये हमारे शरीर की हर कोशिका, मांसपेशी और टिशू में पाए जाते हैं। हमारे बाल, त्वचा, अंग और ग्रंथियां सभी प्रोटीन से ही बनी हैं। ये हमारे शरीर के सभी तरल पदार्थों में भी पाये जाते हैं। हमेशा इसकी आपूर्ति करना आवश्यक है। वसा और कार्बोहाइड्रेट्स की तरह हमारा शरीर प्रोटीन का भंडार नहीं कर पाता है। हमारे शरीर में प्रोटीन का कोई भंडार नहीं होता है। इसीलिए हर मनुष्य को स्वस्थ रहने और बीमारियों को दूर रखने के लिए अपने आहार में उचित मात्रा में प्रोटीन लेना जरूरी है।

हालांकि हमारा शरीर अधिकांश अमीनो ऐसिड्स या प्रोटीन का निर्माण कर लेता है लेकिन कुछ प्रोटीन हमारे आहार से प्राप्त होते हैं। शाकाहारी मनुष्यों के लिए दालें प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत हैं मांस, अण्डों और डेरी उत्पादों में भी काफी प्रोटीन होता है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए उसके आहार में 60 ग्रा0 प्रतिदिन प्रोटीन की मात्रा होनी आवश्यक है परन्तु अधिकांश भारतीयों में आहार के माध्यम से ली जाने वाली प्रोटीन की औसत मात्रा 47 ग्रा0 पायी गयी है। इससे यह स्पष्ट है कि भारतीयों के आहार में मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट्स और वसा होती है साथ ही मुख्य रूप से शाकाहारी भारतीय खाने में मात्रा और गुणवत्ता के आधार पर प्रोटीन की कमी होती है। ऐसी स्थिति में प्रोटीन सप्लिमेंट्स इस कमी को पूरा करने में सहायक हो सकते हैं। एक स्वस्थ आहार में, आपकी कुल कैलोरीज की मात्रा में से 12–20 प्रतिशत कैलोरीज प्रोटीन की होनी चाहिए।

प्रोटीन क्यों महत्वपूर्ण हैं ?

प्रोटीन शरीर के सबसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों में से एक है। जीवन की सभी महत्वपूर्ण संरचनाओं और प्रक्रियाओं के लिए इनकी आवश्यकता होती है। प्रोटीन के कई प्रकार होते हैं, जिनके कार्य अलग–अलग हैं। इसीलिए हमारे शरीर को रोज कई तरह के प्रोटीन्स की जरूरत पड़ती है। इसकी कमी को पूरा करने, अच्छी सेहत और सभी प्रक्रियाओं के उचित रूप से चलने के लिए अपने दैनिक आहार में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन्स को शामिल करना अति आवश्यक है।

- प्रोटीन हमारे शरीर के निर्माणकारी घटक हैं। विकास, मांसपेशियों की सेहत, नई कोशिकाओं के निर्माण और इनकी मरम्मत के लिए प्रोटीन की जरूरत पड़ती है। प्रोटीन हड्डियों को भी मजबूत और स्वस्थ रखते हैं, बालों को पोषण देते हैं, नाखूनों को मजबूत बनाते हैं और त्वचा की चमक को बनाए रखते हैं।
- कुछ प्रोटीन हॉर्मोन्स के निर्माण में, ब्लड शुगर के नियंत्रण में, गुर्दे और थायरॉइड की स्वस्थ गतिविधि, वजन के नियंत्रण में भी सहायक होते हैं।
- प्रोटीन ऐंटीबॉडीज का निर्माण करते हैं और कीटाणुओं, बैक्टीरिया (जीवाणुओं) और वायरसेज (विषाणुओं) से लड़ने में शरीर की रोग प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाते हैं।
- प्रोटीन शरीर में बड़े अणुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने में भी सहायक होते हैं।
- प्रोटीन ऊर्जा के उचित स्तर को बनाए रखने में मदद करते हैं।

प्रोटीन की आवश्यकता कब बढ़ जाती है

शरीर के सही तरीके से काम करने के लिए हम सभी को रोज प्रोटीन की उचित मात्रा की आवश्कता होती है। हमारी प्रोटीन की जरूरतें उम्र, शरीर के वजन, लिंग और गतिविधियों की मात्रा पर आधारित होती हैं।

- बच्चों ओर किशोरों को बड़ी मात्रा में प्रोटीन की जरूरत होती है। उनके विकास, नयी कोशिकाओं के निर्माण और हड्डियों तथा मांसपेशियों की मजबूती के लिए प्रोटीन आवश्यक होता है।
- गर्भवती और स्तनपान कराने वाली औरतों को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन लेना बेहद जरूरी है। ऐसा न करने पर बच्चे के पोषण और विकास पर असर पड़ सकता है।
- बच्चों की तरह ही बड़ों के शरीर को भी पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन की जरूरत होती है।
- बीमारी के दौरान, प्रोटीन का पाचन कम हो जाता है, इसीलिए रोज ज्यादा प्रोटीन की जरूरत पड़ती है। ताकत लाने और जल्दी ठीक होने के लिए प्रोटीन की जरूरत पड़ती है।
- एथलीट्स, खिलाड़ियों, वेटलिफटर्स, बॉडी बिल्डर्स और ऐसे अन्य लोगों को ताकत, मांसपेशियों और कोशिकाओं के निर्माण और मरम्मत के लिए प्रोटीन की जरूरत होती है।

कौन से आहार में सबसे ज्यादा प्रोटीन होते हैं

प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत हमारा आहार है। प्रोटीन कई तरह के खाने में पाये जाते हैं। मांस, मछली, अण्डें, डेरी उत्पाद प्रोटीन के जैविक स्त्रोत हैं। वनस्पति स्त्रोत में अनाज, दालों, बीज और सूखे मेवे, बीन्स

जैसी चीजों का समावेश होता है, जिनमें काफी प्रोटीन होता है। प्रोटीन के कुछ अच्छे स्त्रोत ये हैं :–

- **जैविक स्त्रोत** : मांस, मछली, अण्डे
- **वनस्पति स्त्रोत** : दालें, सोया के उत्पाद, फलियां (मटर, बींस, मूंगफली इत्यादि), सूखे मेवे, बीज, ब्रॉकली और अन्य
- डेरी उत्पाद, योगर्ट, दूध, चीज
- प्रोटीन सप्लिमेंट

इसीलिए यह जरूरी है कि एक स्वस्थ जीवन के लिए दिन में कम से कम दो बार प्रोटीन युक्त आहार लें। शरीर को सही मात्रा में आवश्यक प्रोटीन की पर्याप्त मात्रा में आपूर्ति होने से हमारा शरीर तंदुरूस्त और बीमारियों से लड़ने में सक्षम रहेगा।

निदेशालय के चम्पावत केन्द्र द्वारा "मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में भीतजल मत्स्य फार्म प्रबन्धन" पर प्रशिक्षण कार्यक्रम

दिनांक 24–31 जनवरी 2015 को निदेशालय के चम्पावत केन्द्र ने एन0 एफ0 डी0 बी0 द्वारा प्रायोजित "मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में शीतजल मत्स्य फार्म प्रबन्धन" पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया। इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में 30 मत्स्य पालकों ने भाग लिया, जिसका उद्घाटन निदेशालय के निदेशक डा0 ए0 के0 सिंह ने किया। प्रशिक्षण कार्यक्रम फार्म एंव हैचरी प्रबन्धन, तथा रेन्बोट्राउट के बीज उत्पादन एवं प्रजनन पर मुख्य रुप से केन्द्रित था। इस अवसर "मध्य पर्वतीय क्षेत्रों में शीतजल मत्स्य फार्म प्रबन्धन" पर एक प्रशिक्षण–पुस्तिका का भी विमोचन किया गया।

रेनबो ट्राउट (*ओंकोरिकस माइकिस*) में पालन के दौरान वातावरण तनाव जनित स्वास्थ्य समस्यायें

सुरेश चन्द्रा
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यकी अनुसंधान निदेशालय, चम्पावत केन्द्र

प्रस्तावना

मछलियों के शरीर में होने वाले विकार जिनमें जलीय परिवेश, आहार सम्बन्धित कारकों अथवा अकुशल प्रबन्धन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है को सामान्यतः असंक्रामक या वातावरण जनित व्याधियों के नाम से जाना जाता है। इनमें प्रायः प्राथमिक तौर पर परजीवी या जीवाणु की कोई भूमिका नही होती है। पिछले दो वर्ष (2011–2013) के किये गयें अध्ययन से ज्ञात हुआ कि चम्पावत प्रक्षेत्र पर ट्राउट मछली की समस्त अंकित की गयी बीमारियों में असंक्रामक रोगों की भागेदारी लगभग 84 प्रतिशत तक देखी गयी। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि जलीय परिवेश पर समुचित ध्यान दिया जाय एंव गुणवत्ता में सुधार किया जाय तो इस तरह के होने वाले संक्रमणों से रेनबों ट्राउट को काफी हद तक बचाया जा सकता है। पाये गयें संक्रमणों मेंय वातावरणीय तनाव जनित संक्रमण द्वारा सभी उम्र की ट्राउट मछलियों की कम पानी की उपलब्धता एवं अधिक तापमान के चलते गर्मी के महिनों में भारी संख्या में मृत्यु., इण्डोर रियरिंग में पोस्ट लारवल संक्रमण, प्रजनन तनाव जनित संक्रमण, गर्मी की शुरुवात में पक्षियों द्वारा उत्पन्न घाव, बिना चयनित अत्यधिक खादय ग्रहण करने की आदत से मछलियों की मृत्यु., बिना स्ट्रिप की हुई मादा मछलियों की पोस्ट प्रजनन महिनों में संक्रमण, प्रजनन पूर्व उछलने की आदत से ट्राउट की मृत्यु, आदि प्रमुख रूप से पाये गयें।

1. वातावरणीय तनाव जनित संक्रमण

अधिकतर रोंगों की उत्पत्ति जली की गुणवत्ता में गिरावट के कारण होती है। शीतजल मत्स्य प्रजातियां के पालन पोषण में विशेषकर रेनबो ट्राउट मछली में पानी के तापमान एंव साफ जल का विशेष महत्व हैं। वर्ष 2012 एंव 2013 के दो साल की अवधि में माह अप्रैल से जून तक इस तरह की समस्यायें अत्याधिक देखी गयी। वर्ष 2011 में अधिक बरसात एंव प्राकृतिक स्रोत से भरपूर जल आपूर्ति की वजह से इस तरह से संक्रमण नही पाये गये। तुलनात्मक रूप से छोटी 50 से 150 ग्राम तक की तरूण ट्राउट में बड़ी 400 से 500 ग्राम से अधिक वजन वाली ट्राउट की अपेक्षा अधिक मृत्युदर पायी गयी। इससे यह प्रतीत होता है कि तनाव का प्रभाव छोटी आकार एंव उम्र की मछलियों में अधिक होता है। शरीर का रंग काला पड़ना, सुबह के समय सतह पर आना, गलफड़ों एंव शरीर के ऊपर ट्राईकोडिना आदि एंव ट्रिमाटोड परजीवी का संक्रमण देखा गया। तापमान की कमी एंव सामान्य जल आपूर्ति बहाल होने पर इस तरह के संक्रमण घटने लगते हैं और कुछ दिनों में बची हुई मछलियां सामान्य व्यवहार करने लगती है। पिछले 2–3 सालों के अप्रैल, मई, जून तीन महीनों के तापमान के आकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि ट्राउट रेसवे में जलीय तापमान 24° सें.ग्रे. तक पहुँच जाता है जो रेनबो ट्राउट मछलियों की सामान्य शाररिक क्रियाओं के लिए बाधक बनते है। बड़ी रेनबो ट्राउट यद्यपि 14 से 16 0 सें.ग्रे. तापमान में ज्यादा बढ़वार प्राप्त करती है। किन्तु यह तापमान हैचरी एंव नवजात लार्वी के लिए उपयुक्त नही होता है। हैचरी में लगभग 13 0 सें.ग्रे. से अधिक तापमान पर पोस्ट लार्वी में अधिक मृत्यु पायी गयी।

ऑक्सीजन की कमी से मछली सतह पर आ जाती है। काफी बेचैनी वाले लक्षण मछलियों में प्रकट होते हैं। शरीर में ऑक्सीकृत खून की सप्लाई असमान्य हो जाती है जिससे मछलियाँ मरनी शुरू होती हैं। सामान्यतः मत्स्यपालन टैंकों एवं तालाबों में ऑक्सीजन की कमी एवं कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने पर ट्राउट मछलियॉ अधिक प्रभावित होती हैं। अत्यधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, तालाब में बहुत अधिक बायोमास (Biomass), नीली हरी शैवाल की अधिकता तथा तापमान में वृद्वि इत्यादि प्रमुख कारण है। यदि तालाब में 7–8 मिग्रा/ली ऑक्सीजन हो तो कार्बन डाइऑक्साइड की 24 मिग्रा/ली मात्रा भी हानिकारक नहीं होती है। इसके विपरीत यदि ऑक्सीजन बहुत कम हो तो थोड़ी सी मात्रा भी नुकसानदायक होती है। विषैली अमोनिया गैस सभी उम्र की मछलियों को प्रभावित करती है। इससे गलफड़े बहुत अधिक लाल हो जाते हैं। गलफड़ों का कुछ भाग टूटना, लाल–लाल घाव होना, रक्त निकलना इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। मछली के शरीर के अन्दर के अंगों जैसे यकृत, गुर्दा एवं आमाशय के आस–पास रक्त दिखाई देता है। इसे गलफड़े की बीमारी के नाम से जाना जाता है। रेसवे के तल पर आवश्यकता से अधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, बहुत अधिक संख्या में ट्राउट का संवर्धन, खाद्य का तालाब में जमा होना, पानी निष्कासन की अव्यवस्था आदि इसमें उत्प्रेरक होते हैं। अमोनिया तालाब में मछली की उपायचयी क्रियाओं एवं अन्य पदार्थों के सड़ने–गलने के फलस्वरूप बनती है। यह दो रूपों में पायी जाती है : आयनीकृत अमोनिया (NH_4+N) एवं अनायनीकृत अमोनिया (NH_3 N)। अनायनीकृत अमोनिया ही मछलियों के लिये अधिक मात्रा में घातक होती है। अधिक अमोनिया की उपस्थिति में मछली भोजन लेना बंद कर देती है; गलफड़े आवश्यकता से अधिक कार्य करने से बढ़ जाते हैं तथा शरीर में ऑक्सीकृत रक्त की कमी हो जाती है। पी–एच 7 पर 1.39 मिग्रा/लीटर अनायनीकृत अमोनिया

तालिका : चम्पावत प्रक्षेत्र में वातावरणीय तनाव जनित संक्रमण द्वारा ट्राउट की मृत्यु

क्र.स	दिनांक	हवा/पानी का तापमान डिग्री सेंन्टीग्रेट	मरी ट्राउट मछलियों की संख्या	वजन (ग्राम में)	शारीरिक लक्षण
1.	01.06.2012	29.5 / 20.7	14	80-130	त्वचा का रंग अधिक काला होना अथवा फिका पड़ना, अत्याधिक म्यूकस स्राव, गिल और शरीर के ऊपर छोटे–छोटे घाव एवं कूवक की उपस्थिति
2.	05.06.2012	30.5 / 20.6	23	80-130	
3.	10.06.2012	32.5 / 21.1	60	65-150	
4.	15.06.2012	35.0 / 24.0	130	65-150	
5.	20.06.2012	31.6 / 23.5	231	50-120	
6.	25.06.2012	29.6 / 22.1	982	50-130	
7.	30.06.2012	31.0 / 22.0	260	60-120	

विषाक्त होती है। इसकी विषाक्तता रेसवे के पी–एच एवं तापमान पर निर्भर करता है। अधिक पी एच एवं कम तापमान होने पर यह ज्यादा विषाक्त होती है। नाइट्राइट गैस द्वारा उत्पन्न बीमारी को भूरे रक्त की बीमारी के नाम से जाना जाता है। रेसवे जल में ऑक्सीजन प्रचुरता के बावजूद भी मछलियाँ तनावग्रस्त होकर पानी की सतह पर बैचेन होकर तैरती दिखाई देती हैं।रक्त में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। जब पानी में उपलब्ध नाइट्राइट रक्त में मिलता है तो रक्त के हीमोग्लोबिन का उपस्थित हीम लौह फेरस रूप से फेरिक में बदल जाता है जिसे मिथोमोग्लोबिन कहते हैं। इस परिवर्तित रक्त के रूप से मछलियों के रक्त की ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। फलतः ऑक्सीजन मछली के विभिन्न भागों में नही जा पाती है और धीरे–धीरे मछलियाँ मरने लगती हैं। रेसवे के तलछट (कीचड़) में मौजूद नाइट्रेट के अवकरण के फलस्वरूप नाइट्राइट बनता है। कभी–कभी नाइट्रीफिकेशन की प्रक्रिया में कुछ असन्तुलन हो जाने के कारण नाइट्राइट जमा होने लगता है और रेसवे में इसकी मात्रा बढ़ने लगती है। 4.6 मिग्रा/लीटर नाइट्राइट की मात्रा से मछलियाँ मर जाती हैं।

2. इण्डोर रियरिंग में पोस्ट लार्वल संक्रमण

योक सैक के अवशोषित होने के 15 से 20 दिन बाद चम्पावत की ट्राउट हैचरी में मार्च अप्रैल माह में ट्राउट लार्वी की बृह्द स्तर पर मृत्यु देखी गयी। मृत लार्वी में लगभग 10 से 48 प्रतिशत तक में डिफोरमिटी भी देखी गयी। ऐसा पाया गया है कि जब हैचरी का तापमान लगभग 12.5 से 13 डिग्री सेंण्टीग्रेट से अधिक होता है। तब इस तरह की मृत्यु होन की संभावना अधिक रहती है। वर्ष 2011 में पानी भरपूर मिलता रहा उस वर्ष इस तरह कि लार्वी मृत्यु नही पायी गयी, जबकि 2012 और 2013 में इससे बहुत अधिक लार्वी का नुकसान हुआ। ऐसा पाया गया

है कि प्राइमरी तौर पर अधिक जलीय तापमान, अति संवेदनशील छोटे ट्राउट लार्वी में अन्य तरह के बैक्टिरिया जनित संक्रमणों में भी वृद्धि करता है।

3. प्रजनन तनाव जनित संक्रमण

रेन्बो ट्राउट मछलियाँ पालन अवस्थाओं में लगभग 3 वर्ष में परिपक्वता प्राप्त करती हैं। ट्राउट प्रजनकों को पालन रेसवे से लगभग तीन चार हफ्ते पहले निकाल कर नर व मादा मछलियों को अलग–अलग रख देते हैं। इनकी पहचान लैंगिक आधार पर की जाती है। नर मछलियों की पहचान उनके गहरे भूरे रंग और निचले जबड़े पर विकसित हुक से की जाती है जबकि मादा मछलियों का उदर फुला हुआ एवं शरीर का रंग हल्का हरापन लिए रहता है। प्रजनन काल में मछलियों की त्वचा अत्यधिक मुलायम एवं रंग चमकीला हो जाता है। चमकीले रंग वाली ट्राउट अच्छी परिपक्व होती है। चम्पावत केन्द्र में पाली गयी रेन्बो ट्राउट मछलियों में लैंगिक परिपक्ता जनवरी माह से देखी जाती है और लगभग फरवरी तक रहती हैं। इस दौरान पानी का तापमान 2 डिग्री से 5 डिग्री तक रहता है। प्रजनक ट्राउट मछलियों को एकत्रित कर हैचरी में इनकी स्ट्रिपिंग कराई जाती हैं। यद्यपि नर को मिल्ट निकालने के लिय बहुत कम समय के लिये हैन्डल किया जाता है, जबकि मादा के उदर को बार–बार ऊपर से नीचे की तरफ दबाव देकर अण्डे बाहर निकाले जाते है। इस दौरान एक तो शरीर के ऊपर कर म्यूकस पूरा निकल जाता है दूसरा कुछ हल्के निशान आदि भी शरीर के बाहरी भाग में पकड़ने के समय बन जाते है। जो मछलियां पूर्णरूप से परिपक्व नही है व ओम्यूलेशन न के बराबर हो या अल्प मात्रा में ही अण्डे परिवक्व हुए है ऐसे ट्राउटों की स्ट्रिपिंग से अण्डों के साथ रक्त भी निकलता है। ऐसा पाया गया कि इन सब कारणों के चलते जब ये स्ट्रिप की गयी मछलियां पुनः रेसवे में छोड़ी जाती है तो धीरे –धीरे उपयोग की गयी 20 से 25 प्रतिशत मछलियों में घाव उत्पन्न हो जाते हैं हैं। इस तरह से कुल उपयोग किये गये मादा प्रजनको में से लगभग 13.5-22.0% प्रजनक इस तरह के तनाव जनित संक्रमणों के शिकार हो जाते है। वर्ष 2012 एंव 2013 में चम्पावत प्रक्षेत्र पर इस तरह के कुल 45 मछलियों की मृत्यु अंकित की गयी है।

वर्ष 2014 में इस तरह के नुकसान को कम करने के लिए मादा प्रजनकों को सावधानी पूर्वक एकत्रित किया गया, और स्ट्रिपिगं की गयी। स्ट्रिपिंग के पश्चात इन्हें पोटेशियम परमैगनेट का घोल दिया गया फिर पुनः बड़ें रेसवे में डाल दिया गया। उपयोग की गयी कुल 76 मादा प्रजनकों में से केवल 3(3.94%) मादा प्रजनकों की स्ट्रिपिंग के पश्चात् मृत्यु हुयी। अतः उपयुक्त ढंग से हैन्डिलिंग एंव आवश्यक उपचार विधियां अपनाकर इनमें उपरोक्त कमी लायी जा सकती है।

4. पक्षिओं द्वारा घाव उत्पन्न करना

ट्राउट रेसवे लगभग 1–1.5 मीटर गहरे होते है। चूंकि इनकी आदत साफ पानी में रहने की होती है अतः इनको हमेशा साफ पानी मुहैया करवाया जाता है। सैम्पलिंग के दौरान यह देखा गया है कि सिर और शरीर पर पक्षियों के चोंच के निशान थे। चम्पावत फार्म पर मार्च–अप्रैल माह में इस तरह का संक्रमण अधिक देखा गया, सैम्पलिंग के समय लगभग 2.0से 2.8 प्रतिशत मछलियों में निशान पाये गये। इनमें दूसरी तरह के संक्रमण तापमान बढ़ने के साथ–साथ बढ़ते है। अंगुलिकाओं और बड़ी मछलियों की मृत्यु होने लगती, कुछ मछलियां स्वयं ठीक हो जाती है। इसके बाबजूद संक्रमित मछलियों में 2–3 प्रतिशत तक मृत्यु दर अंकित की गयी है। रेसवे को जाल द्वारा ढकने से इस तरह के नुकसान से बचा जा सकता है। इसके अतिरिक्त निशान वाली मछलियों को किसी प्रभावित दवाई के घोल में डुबोने से संक्रमण का फैलाव रूक जाता है।

5. बिना चयनित आक्रामक खाद्य ग्रहण करने की आदत

रेनबो ट्राउट मछलियां रेसवे के नियन्त्रित परिवेश में एक निश्चित संख्या में पायी जाती है। ऐसा पाया गया है कि अन्य कार्प मछलियों के व्यवहार के विपरीत ट्राउट बिना सही चयन के खाद्य ग्रहण करने के व्यवहार से जो भी रेसवे में मिलता है उसको ग्रहण कर लेती है। यह प्रवृति कभी–कभी घातक भी हो जाती है और मछलियां मर जाती है। इस तरह की घटनायें मुख्य रूप से उस समय पैदा होती है। जब पानी के प्रवेश के साथ छोटी–2 लकड़ियों के टुकड़ें, सुतली, प्लास्टिक, पत्थर के टुकड़ें कंकरीट ब्लाक रेसवे में मिल जाते है। इस तरह के पदार्थ भोजन समझकर मछली ग्रहण कर लेती है और यह आमाशय तक पहुँच भी जाते है लेकिन इसके पश्चात इनकी न पचने एंव आकार में परिर्वतन न होने की वजह से बड़ी–छोटी आंतो में फंस जाते है। जब इन मछलियों को काटा गया तो पाया कि जहां पर इस तरह के पदार्थ फंसे है वहां पर खून की रक्त नलिकायें अत्यधिक फैली और काले–काले रंग की दिखाई देती है। इससे यह प्रतीत होता है कि ट्राउट इस दौरान अत्यधिक तनावग्रस्त होती है, और भरपूर कोशिश करती है कि फंसा हुआ कठोर पदार्थ आंतो से बाहर निकल जाय। फंसे रहने से वहां पर सड़न शुरू हो जाती है जिससे लीवर में भी दूसरे तरह के संक्रमण फैलने की संम्भावना रहती है। पेट के अन्दर पानी भरना, लिवर में भी संक्रमण इस तरह की मछलियों में देखा गया है। रेसवे को जाल द्वारा ढकना, आने वाले पानी की सही फिल्टरेशन आदि इस तरह की समस्याओं से छुटकारा पाने के मदद करता है। नियमित रूप से दिये जाने वाले खाद्य से तागा,प्लास्टिक, आदि के टुकडों को अलग करना भी आवश्यक है।

6. बिना स्ट्रीप की गयी ट्राउट मछलियों मे संक्रमण

ट्राउट मादा 3–4 साल में पालन प्रबन्धनुसार परिपक्व हो जाती है। स्थानीय जलवायु के अनुरूप प्रजनन का समय अक्टूबर–नवम्बर से जनवरी–फरवरी तक में होता है चम्पावत ट्राउट प्रक्षेत्र में जनवरी–फरवरी में अधिकतर मादा

प्रजनकों को बीज उत्पादन हेतु कृत्रिम रूप से स्ट्रिपिंग कर अण्डे उदर गुहा से बाहर कर लिये जाते है। लेकिन बिना स्ट्रिप की गई मछलियां रेसवे में पाली जाती है। ऐसा देखा गया है। बीच–बीच में बाहर से स्वस्थ दिखनें वाली मछलियां मरी हुयी देखी गयी। शाररिक जांच से पता चला कि उदर एंव जनन द्वार फुला हुआ रक्तरंजित दिखाई देता है। (4-5%) इनके उदर गुहा को काटकर देखने से पूरी उदर गुहा खराब अण्डों से भरी मिली। पेट में सड़े हुये अण्डों की उपस्थिति एवं धीमी अण्ड अवशोषण गति से बिना स्ट्रिप की हुई मादा मछलियों की पोस्ट प्रजनन महिनों में मृत्यु प्रायः दखी गयी। इस तरह की बीमार मछलियां मार्च से नंवम्बर माह के बीच देखी गयी। कुछ में तीन पीढ़ियों के अण्डे देखे गयें। इन मछलियों में स्ट्रिपिगं के समय अन्य के मुकाबले कम परिपक्व अण्डे प्राप्त होते है। जलवायु परिवर्तन एंव ट्राउट की सामान्य शाररिक क्रियाओं में बदलाव के चलते बिना स्ट्रीप की गई मछलियों के अण्डों की अवशोषित होने की अवधि लम्बी हो जाती है इससे मादा मछलियों के अण्डाशय में विकसित होते नवीन अण्डों का पूर्ण विकास भी नही हो पाता हैं। पालन की गयी मादा प्रजनकों को प्रजनन के समय स्ट्रिप करा देने से इस तरह की समस्या का समाधान पाया जा सकता है। अण्डा अवशोषित होने के लिए आवश्यक तापमान एंव जलीय अवस्थाओं मे अधिक परिर्वतन होने से संम्भवत् इस तरह की समस्या अधिक व्यापक स्तर पर देखने को मिल रही है।

7. प्रजनन के पूर्व उछलने की आदत से ट्राउट की मृत्यु

विशेषकर अक्टूबर – नवम्बर महिनों में ट्राउट रेसवे के किनारों पर सुबह के समय एक,दो मछलियां मरी हुयी पायी गयी।इन सभी का मुँह खुला देखा गया, संम्भवत रेनबों ट्राउट प्रजनन से पूर्व ज्यादा सक्रिय रहती हैं। दूसरा इनकी उड़ने वाले कीड़ों आदि को खाने की आदत से भी यह उछलती रहती है। उछलने के दौरान रेसवे के किनारों से बाहर निकल जाती है। ऑक्सीजन की शरीर में कमी से इनकी मृत्यु हो जाती है। रेसवे का पानी का ऊपरी स्तर 1 से 1.5 फिट तक कम रखना एंव जाल द्वारा अच्छे से ढकने से प्रजनकों का ट्राउट स्टॅाक बचाया जा सकता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रजनकों की पहली परिपक्वता 3 वर्ष में उछलने की आदत ज्यादा देखी गयी जबकि 4 वर्ष वाली बड़ी मछलियों में इस तरह की आदत अपेक्षाकृत कम पायी गयी। इसके दो कारण हो सकते है। परिपक्वता प्राप्त करने के समय हारमोनोंकी अधिकता एंव 400 –500 ग्राम का छोटा आकार।

वातावरण जनित रोगों में वातावरणीय तनाव जनित संक्रमण द्वारा सभी उम्र की ट्राउट मछलियों की कम पानी की उपलब्धता एवं अधिक तापमान के चलते गर्मी के महिनों में भारी संख्या में मृत्यु, इण्डोर रियरिंग में पोस्ट लार्वल मृत्यु, प्रजनन तनाव से ट्राउट की मृत्यु, गर्मी की शुरूवात में पक्षियों द्वारा उत्पन्न घाव, बिना चयनित अत्यधिक खाद्य ग्रहण करने की आदत से मछलियों की मृत्यु,, बिना स्ट्रिप की हुई मादा मछलियों की पोस्ट प्रजनन महिनों में संक्रमण एंव मृत्यु, प्रजनन पूर्व उछलने की आदत से ट्राउट की मृत्यु, आदि प्रमुख है। इनमें स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें जो वर्तमान अध्ययन में पायी गयी के लिए प्रबंधन एवं संसाधनों की कमी को उजागर होती है। आने वाले पानी का छनन, नियमित रूप से रेसवे की सफाई, ट्राउट स्टौक एवं उनके टैंकों को डिसइनफैक्ट करना, बिना उपयोग के मादा प्रजननों को भी स्ट्रिप करना, रेसवे को जाल से ढकना एवं बाहरी पदार्थो के प्रवेश पर रोक लगाना, सन्तुलित आहार प्रदान करना, ऑक्सीजन परिपूण पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करना, रेसवे में सही पानी की गहराई रखना एवं बीमारी उत्पन्न होने की दशा में तुरन्त उपचार हेतु कदम उठाना आदि इस तरह के कार्य स्वस्थ ट्राउट स्टौक को बनाए रखने एवं टिकाऊ उत्पादन प्राप्त करने के लिए अत्यन्त उपयोगी पाये गये हैं। समस्त प्रकार की बीमारीयों के लिए पहचाने गयें कारकों में वातावरण जनित एंव अकुशल प्रंबन्धन द्वारा 84 से 85 प्रतिशत तक की भागेदारी होती है। इन पायी गयी स्वास्थ सम्बन्धी समस्यायों पर और अधिक विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है एवं किसानों की सुविधा के लिए एक वार्षिक कलेंडर ट्राउट की स्वास्थ सम्बन्धी समस्याओं के लिए विकसित किया गया है साथ ही उत्तम प्रंबन्ध कार्यो द्वारा रोगों की रोकथाम हेतु मार्ग निर्देशन तैयार किये जा रहे है।

स्वास्थ्य वर्धक-मोटे अनाज

मनोज कुमार एवं ओम प्रकाश जोशी
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि भवन, नई दिल्ली

एक समय था जब गांवों की गरीब जनता जिनके घर में गेहूं और चावल नहीं होता था वे मडुवा और सांवा जैसे मोटे अनाज खाने के लिए विवश होते थे। उन्हें इन्हीं मोटे अनाजों से अपने पेट की आग शांत करनी पड़ती थी क्योंकि यह मोटे अनाज बगैर खाद और पानी के आसानी से उगाई जा सकती थी। विशेष रूप से पहाड़ी क्षेत्रों तथा मैदानी क्षेत्रों में जहां बहुत कम या ना के बराबर वर्षा होती है। वहां पर मडुवा, बाजरा और सांवा जैसे मोटे अनाज उगाकर गरीब लोग अपनी भूख शांत करते थे। उत्तराखण्ड में मडुवा और सांवा की खेती वैकल्पिक फसल के तौर पर होती थी। वहां पर वर्षा आधारित खेती में गेहूं और चावल का उत्पादन कुछ खास नहीं होता है, इस कारण लोग मडुवा और सांवा उगाते थे। जिन लोगों के पास गेहूं और चावल उगाने के लिए रकम नहीं हुआ करती थी वे इन्हीं मोटे अनाज की फसलों पर निर्भर रहा करते थे परन्तु अब समय बदल गया है। कई शोधों से यह पता चला है कि मडुवा और सांवा प्रोटीन, कैल्शियम और फाइबर के खजाने हैं। इनके फायदे उजागर हो चुके हैं। इनमें कई बिमारियों से लड़ने की क्षमता है तथा ये उन बीमारियों के लिए रामबाण साबित हो रही हैं। इनके लगातार सेवन से डायबिटीज, ब्लड प्रेशर और अपच जैसी बीमारियां दूर होती हैं। यह शोध का ही परिणाम है कि मडुवा और सांवा अब गरीबों के घर से उठकर अमीरों की थाली और बड़े–बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर तक पहुंच चुके हैं। ये अनाज पहाड़ से लेकर मैदानी भागों तक में उगाए जाने लगे हैं। पहाड़ी क्षेत्र के उत्पादों को बढ़ावा देने के लिए फसलों पर कराऐ गए शोध से पता चला है कि मडुवा और सांवा गेहूं और चावल से कहीं ज्यादा स्वास्थ्यकर हैं।

पहाड़ी क्षेत्र के मोटे अनाज

- **गौहत/कुलथी** : यह स्वास्थ्यवर्धक है तथा इस दाल का सेवन पथरी रोग में उपयोगी होता है।
- **भट** : इससे जौव (पिसी दाल और चावल) या दाल बनाई जाती है।
- **सोयाबीन** : प्रोटीन का खजाना है। इससे कई उत्पाद बनाए जाते हैं।

मैदानी क्षेत्र के मोटे अनाज

- **मकई** : इसके आटे की रोटी, दलिया और सत्तू खाया जाता है।
- **चना** : इसका भूंजा और सत्तू पेट के लिए उपयोग माना जाता है।
- **जौ** : इसका भी सत्तू खाया जाता है।
- **बाजरा** : इसके आटे की रोटी खाई जाती है।
- **कोदो, चीना** : इन अनाजों का भात बनाया जाता है।

छोटे दाने, बड़े गुण

- सांवा को झंगुर और मादिरा भी कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम बैनयार्ड मिलेट है। इसमें विटामिन बी1, कैल्शियम, प्रोटीन और आयरन समेत कई खनिज होते हैं। इसके सेवन से छोटे बच्चों का तेजी से विकास होता है।
- मडुवा का वैज्ञानिक नाम फिंगर मिलेट है। इसमें प्रोटीन, विटामिन बी, कैल्शियम, आयरन, जिंक समेत कई खनिज होते हैं।

इन्हीं फायदों को देखते हुए मडुवा, सांवा और अन्य मोटे अनाजों की मांग बढ़ने लगी है जिससे इसकी खेती करने वालों की जिंदगी में बदलाव आने लगा है। पहले इस फसल से दूर भागने वाले लोग इसकी खेती करने आगे आ रहे हैं। आज इन मोटे अनाजों के उत्पादों का करोड़ों रूपये में व्यापार हो रहा है तथा इसके नए–नए उत्पाद बड़े–बड़े डिपार्टमेंटल स्टोर तक पहुंच गए है जो अमीरों के लिए उनकी दवा के रूप में काम कर रहे हैं।

शीतजल मात्स्यिकी के महत्वपूर्ण विषाणु जनित रोग

डा. अमित पाण्डे एवं किरन बेलवाल
भा.कृ.अनु.परि.–शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल

शीतजल मातस्यिकी में हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में पाई जाने वाली मीठे जल की मछलियाँ शामिल हैं। शीतजल मछलियाँ प्रायः 20 डिग्री सें.ग्रे. से कम तापमान में जीवन निर्वाह करती हैं। भारत में शीतजल मातस्यिकी में उत्पादन की दृष्टि से उपलब्ध मछलियों में विदेशी मछलियाँ रेनबो ट्राउट, ब्राउन ट्राउट, एवं कॉमन कार्प तथा स्वदेशी मछलियों में माहशीर, स्नो ट्राउट (असेला) शामिल हैं। प्रायः अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मुख्यतया ट्राउट तथा मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मुख्य रूप से कार्प प्रजातियों का पालन किया जाता हैं। मछलियों में होने वाले रोग उनकी उत्पादन क्षमता को प्रभावित करते हैं। जिनमें की संक्रामक रोगों से गम्भीर समस्या उत्पन्न हो जाती है, मछली में संक्रामक रोगों के कारक परजीवी, कवक, जीवाणु अथवा विषाणु हो सकते हैं। कोई उपचार न होने की वजह से विषाणु जनित रोग अति महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि ये सामुहिक मृत्यु–कारक भी हो सकते हैं, जिससे मछली पालक को काफी क्षति हो सकती है। ठंडे पानी की मछलियों में मुख्य रूप से छः विषाणु जनित रोग हो सकते हैं। सामान्यतया ये रोग 20 डिग्री सें.ग्रे. से कम तापमान में होते हैं। मुख्य रूप से ये रोग हैं, इन्फेक्सियस हिमेटोपोईटिक नेकरोसिस (आई एच एन), इन्फेक्सियस पेनक्रिएटिक नेकरोसिस (आई पी एन)ए वायरल हिमेरेजिक सेप्टीसमिया (वी एच एस), इपिजूटिक हिमेटोपाईटिक नेकरोसिस (ई एच एन), कोई हरपीज वायरस डीजीज (के एच वी डी), एवं स्प्रिंग वायरेमिया ऑफ कार्प (एस वी सी), ये सभी विषाणु जनित रोग अत्यधिक संक्रामक तथा जानलेवा हैं। रेनबो ट्राउट प्रायः आई एच एन, आई पी एन, वी एच एस, एवं ई एच एन के लिए संवेदनशील होती है, तथा कार्प के एच वी डी एवं एस वी सी के लिए संवेदनशील पायी गयी है। विषाणु जनित रोगों की रोकथाम दवाओं से करना सम्भव नहीं है इसलिए विषाणु से बचाव ही रोकथाम का एकमात्र उपाय है। मछलियों की उचित देखरेख करना एक महत्वपूर्ण विकल्प है। जिसके लिए उत्तम गुणवत्ता युक्त पानी, और पोषण उपयोग में लाया जाना चाहिए एवं कालांतर में तालाब की साफ–सफाई पर उचित ध्यान तथा उपयोग में आने वाले साधनों का विसंक्रमण भी जरूरी है।

प्रस्तावना

शीतजल मात्स्यिकी का भारत में मीठे जल की मछलियों के वर्ग में एक महत्वपूर्ण स्थान है। शीतजल मछलियों में मछलियों की वो प्रजातियां वर्गीकृत हैं जो कि 20 डिग्री सें.ग्रे. से कम तापमान में जीवन निर्वाह करती हैं। ठंडे पानी की मछलियों में सालमोनिडी और साइप्रिनिडी फैमिली के सदस्य शामिल हैं। जिसमें भारत में ठंडे पानी की नदियों, झीलों तथा जलाशयों में मुख्यतया साइप्रिनिडी फैमिली के सदस्य बसते हैं। भारत में शीतजल मातस्यिकी में उपलब्ध विदेशी मछलियाँ रेनबो ट्राउट, ब्राउन ट्राउट, एवं कॉमन कार्प तथा स्वदेशी मछलियों में माहशीर, स्नो ट्राउट (असेला) शामिल हैं (सहगल 1989) । मछली पालन एक प्राचीन एवं उन्नत रोजगारपरक पद्यति है। इस व्यवसाय में अच्छी आमदनी की अपार संभावनाएं है। अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में ट्राउट मछली पालन रोजगार का एक उत्तम साधन है तथा मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में मुख्य रूप से कार्प प्रजातियों का पालन उपयुक्त हैं। मछलियों की उचित देखभाल तथा उनसे अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए, मछली पालक को कुछ सामान्य बातों की जानकारी होना आवश्यक है। मछली पालन

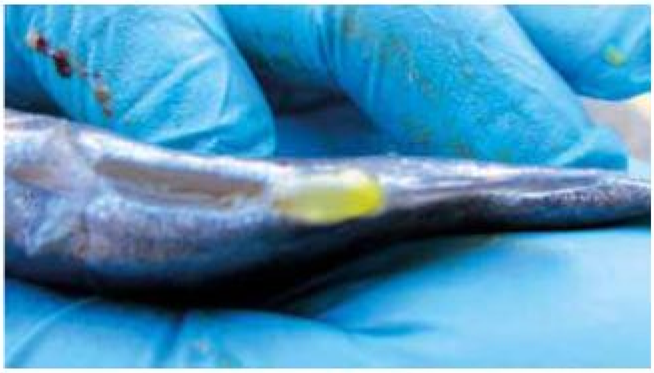

में उत्पादन क्षमता को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण कारक हैं, मछली में होने वाले रोग। मछलियों में होने वाले रोगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है जो कि पोषण सम्बन्धित, पर्यावरणीय कारकों की वजह से तथा संक्रामक रोग हो सकते हैं। संक्रामक रोगों में जीवाणु (Bacteria), कवक (fungus), परजीवी (parasites) व विषाणु (virus) जनित रोग वर्गीकृत हैं। संक्रामक रोग गम्भीर हो सकते हैं क्योंकि तालाब की किसी एक मछली के रोगी होने पर अन्य मछलियॉ भी बीमारी की चपेट में आ सकती हैं। विषाणु जनित रोगों में स्थिति और भी संवेदनशील हो जाती है क्योंकि संक्रमण के प्रसार से मछलियों की सामुहिक मृत्यु भी हो सकती है, जिससे मछली पालक को काफी क्षति हो सकती है। मछलियों में रोगों से होने वाली क्षती को कम करने के लिए रोगों की रोकथाम आवश्यक है। रोगों की रोकथाम के लिए उचित उपाय अपनाने हेतु रोग के विषय में जानकारी आवश्यक है अतः रोगों के सामान्य लक्षणों की जानकारी मछली पालक के हित में है। तांकि लक्षणों से आधार पर रोग का पता लगाया जा सके तथा रोग की रोकथाम के उपाय किये जा सकें। इस लेख में हम शीतजल मछलियों में होने वाले कुछ महत्वपूर्ण विषाणु जनित रोगों के विषय में चर्चा करेंगे।

ठंडे पानी की मछलियों में विषाणु जनित रोग

विषाणु एक सूक्ष्म संक्रामक परजीवी है जो कि केवल जीवित कोशिकाओं में ही वृद्धि कर सकता है। अन्य परजीवी सूक्ष्म जीवों जैसे कवक जीवाणु की तरह इसमें स्वयं के कोशिकांग उपस्थित नहीं है। कोशिकांग की अनुपस्थिति विषाणु को पूर्ण परजीवी बनाती है। ठंडे पानी की मछलियों में मुख्य रूप से 6 विषाणु जनित रोग हो सकते हैं। सामान्यतया ये रोग 20 डिग्री सें.ग्रे. से नीचे के तापमान में होते हैं। मुख्य रूप से ये रोग हैं, इन्फेक्सियस हिमेटोपोईटिक नेकरोसिस (आई एच एन), इन्फेक्सियस पेनक्रिएटिक नेकरोसिस (आई पी एन)ए वायरल हिमेरेजिक सेप्टीसमिया (वी एच एस), इपिजूटिक हिमेटोपाईटिक नेकरोसिस (ई एच एन), कोई हरपीज वायरस डीजीज (के एच वी डी), एवं स्प्रिंग वायरेमिया ऑफ कार्प (एस वी सी), ये सभी विषाणु जनित रोग अत्यधिक संक्रामक तथा जानलेवा हैं। रेनबो ट्राउट प्रायः आई एच एन, आई पी एन, वी एच एस, एवं ई एच एन के लिए संवेदनशील होती है, तथा कार्प के एच वी डी एवं एस वी सी के लिए संवेदनशील पायी गयी है।

विषाणु जनित रोगों के प्रसार का माध्यम

विषाणु जनित रोगों के प्रसार के दो माध्यम हो सकते है। एक माध्यम बड़ी संक्रमित मछलियों के अण्डों से उत्पन्न बच्चों को वंशानुगत फैल सकता है (Mulcahy and Pascho 1985)। विषाणु के प्रसार का दूसरा माध्यम क्षैतिज है जिसमें संक्रमित मछली से निकले हुए द्रव्य पानी में मिलकर अन्य मछलियों में भी विषाणु संक्रमण कर सकते हैं (Wing field and Chang 1970)। मछली या मछली के उत्पादों का यातायात भी विषाणु प्रसार का एक बहुत बड़ा कारक है (Winton 1991)। परिपक्व मछली में कभी–कभी रोग के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते है लेकिन वो रोग के संवाहक की तरह कार्य करती हैं। ऐसी संवाहक मछलियों से तालाब में संक्रमण का खतरा बना रहता है। इसलिए जरूरी है कि समय–समय पर ऐसी मछलियों में विषाणु की उपस्थिती की जाँच की जाए, ताकि संक्रमण फैलने से पहले ही रोकथाम के उपाय किये जा सके। बडी मछलियों से ज्यादा संक्रमण का खतरा छोटे बच्चों में रहता है, और मृत्यु–दर भी छोटी मछली में ही ज्यादा होती है। क्योंकि मछली में विषाणु जनित रोगों के बारे में बहुत कम जानकारी है इसलिए नई मछलियां पुराने तालाब में डालने से पहले उन्हें तीन–चार हफ्तों तक अलग रख कर परखना जरूरी है।

अ. रेनबो ट्राउट में मुख्य विषाणु जनित रोग

इन्फेक्शियस हिमेटोपोइटिक नेकरोसिस (आई एच एन)

इन्फेक्शियस हिमेटोपोइटिक नेकरोसिस (आई एच एन) रोग इन्फेक्शियस हिमेटोपोइटिक नेकरोसिस वायरस (आई एच एन वी) नामक विषाणु जनित रोग है, यह रोग मुख्य रूप से रेनबो ट्राउट, अटलांटिक सालमन, चिनूक सालमन, सोकाई सालमन में होता हैं (Pilcher and Fryer 1978)। आई एच एन रोग के लक्षण मछली में फूले हुए पेट, बाहर निकली हुई आंख की पुतलियों, गहरे रंग की त्वचा और रंग विहीन गलफड़ो के रूप में देखे जा सकते है। इसके अलावा मछली में थकावट और असामान्य गतिविधियां देखी जा सकती हैं। यह रोग सामान्यतः 8 से 15 डिग्री सें.ग्रे. के तापमान में होता है (Amend 1970)। 15 डिग्री सें.ग्रे. से ऊपर के तापमान पर यह रोग नहीं होता है। सूखे की परिस्थितियों में भी आई एच एन वी 4–10 डिग्री सें.ग्रे. के तापमान पर पॉच दिन तक जीवित रह सकता है। 4 डिग्री सें.ग्रे. के तापमान पर आई एच एन वी नौ महीने तक, 21 डिग्री सें.ग्रे. पर छः महिने तक, 32 सें.ग्रे. पर बारह घण्टे तक जीवित रह सकता है। इस रोग का प्रकोप बसन्त ऋतु और शुरूआती गर्मी के समय में बड़ता है। आई एच एन वी का संक्रमण मुख्यतया संक्रमित और संवाहक मछलियों द्वारा अन्य मछलियों को होता है। आई एच एन वी, संक्रमित मछली द्वारा विर्सजित मल, मूत्र और अन्य द्रव्यों से पानी में फैलता है। छोटी मछलियां मुख्य रूप से जीवन के पहले दो महीने में आई एच एन से ज्यादा प्रभावित होती हैं। छोटी मछलियों में मृत्यु दर 90.95ः तक पहुँच सकती है। बड़ी मछलियों में संक्रमण के लिए प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। इसलिए यह रोग बड़ी मछलियों में प्रायः नहीं होता है। जो मछलियां संक्रमण के बाद भी जीवित रह जाती हैं, उनकी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है और ये

प्रायः रोग की संवाहक बन जाती हैं। आई एच एन की रोकथाम के लिए मछली के अण्डों को आइडोफोर मिश्रण (उदाहरण के लिए पोवीडोन–आयोडीन, रिप्ला) से विषाणु रहित किया जा सकता है। आइडोफोर ऐसे मिश्रण हैं जिनमें आयोडीन के साथ एक विलायक (उदाहरण के लिए पोवीडोन–आयोडीन या आर्द्रक–आयोडिन) मिश्रित हैं, जो कि आयोडीन को पानी में घुलनशील बनाते हैं। इसके अलावा विषाणु रहित पानी ही अण्डों के उद्भव के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए।

इनफेक्शियस पेनक्रिएटिक नेकरोसिस (आई पी एन)

इनफेक्शियस पेनक्रिएटिक नेकरोसिस (आई पी एन) एक विषाणु जनित गम्भीर रोग है जो कि इनफेक्शियस पेनक्रिएटिक नेकरोसिस (आई पी एन वी) विषाणु से होता है। यह रोग ब्रूक ट्राउट, रेनबो ट्राउट, ब्राउन ट्राउट और अटलांटिक सालमन में होती है। ब्रूक ट्राउट आई पी एन वी के लिए अत्यधिक संवेदनशील है, जिसमें सभी उत्तरजीवी (Survivor) मछलियॉ रोग की संवाहक बन जाती हैं। ब्रूक ट्राउट के बाद रेनबो ट्राउट आई पी एन वी के लिए अत्यधिक संवेदनशील है। यह रोग मुख्यतया छः महीने से छोटी ट्राउट और सालमन में होता है, परिपक्व मछलियां रोग के कोई लक्षण दिखाए बिना ही रोग के संवाहक के रूप में कार्य कर सकती है। इस रोग के सामान्य लक्षण हैं– पेट का फूलना, त्वचा के रंग का गहराना और असामान्य तरीके से तैरना। आई पी एन वी का प्रसार वंशानुगत, संक्रमित मछली के अण्डों से हो सकता है या संक्रमित मछली के संपर्क में आने से स्वस्थ मछली को हो सकता है। आई पी एन वी विभिन्न संग्रहण परिस्थितियों में स्थिर रहता है। आई पी एन वी तापमान की विभिन्न सीमाओं में भी स्थिर रहता है, देखा गया है कि –80 डिग्री से.ग्रे. से 20 डिग्री डिग्री से.ग्रे. की तापमान सीमा तथा 0–40ः तक सान्द्रता सीमा में भी विषाणु स्थिर रहता है, सूखे की परिस्थितियों में आठ हफ्तों तक तथा कई वर्षों तक चारे में भी जीवित रह सकता है। यह रोग पूरे वर्ष भर 4 से 18 डिग्री डिग्री से.ग्रे. के तापमान में हो सकता है। मछली के छोटे बच्चे इस रोग से सबसे अधिक प्रभावित होते है। उम्र बढने के साथ इस रोग का प्रभाव मछली में कम हो जाता है। 4–6 मास के बच्चों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने लगती है। चार महीनों तक मछली के बच्चों का पालन 7 डिग्री से.ग्रे. नीचे के पानी में करने से, संक्रमण के बाद होने वाली मृत्यु दर को कम किया जा सकता है। 20 डिग्री से.ग्रे. से उपर के तापमान युक्त पानी में मछली की रोग के लिए प्रतिरोधक क्षमता तीव्र गति से बढ़ती है तथा विषाणु संक्रमण नही होता है।

वायरल हिमोरेजिक सेफ्टिसिमिया (वी एच एस)

वायरल हिमोरेजिक सेफ्टिसिमिया (वी एच एस) एक विषाणु जनित रोग है जो कि वायरल हिमोरेजिक सेफ्टिसिमिया वायरस (वी एच एस वी) से होता है। वी एच एस एक गम्भीर सर्वंगी (Systemic) रोग है, जिसमें मछली में अत्यधिक रक्तश्राव होता है, और रक्तश्राव से मछली मर सकती है। इसके मुख्य लक्षण है त्वचा में खून के थक्के बनना, सिर के आगे के हिस्से में और दोनो ओर खून के थक्के बनना, आंखो की पुतलियों का बाहर निकलना, पेट का फूलना, मछली का थका– थका होना, गहरे रंग की त्वचा, और असामान्य तरीके से तैरना। विषाणु का मुख्य रुप से क्षैतिज प्रसार होता है, जो संक्रमित अथवा संवाहक मछली द्वारा पानी में विर्सजित मल–मूत्र तथा अन्य द्रव्य से सीधे पानी से फैलता है। संक्रमित मछली के त्यागे हुए मल, मूत्र या अन्य द्रव्य के संपर्क में आने से अन्य मछलियां भी संक्रमित हो सकती हैं। इसके अलावा विषाणु का प्रसार किसी संक्रमित मछली के संपर्क में आए उपकरण से अथवा पक्षी जिसने संक्रमित मछली को ग्रहण किया हो, के त्यागे हुए मल से भी हो सकता है। छोटी मछलियॉ वी एच एस से ज्यादा प्रभावित होती है। प्रायोगिक तथ्यों में यह पाया गया है कि छः मास से बड़ी मछलियों में रोग के प्रकरण (cases) कम हो जाते हैं जबकी दो वर्ष से बड़ी मछलियॉ पूर्णतया प्रतिरोधक हो जाती हैं। वी एच एस रोग का प्रकोप 4 डिग्री से. ग्रे. के तापमान में अधिक देखा गया है तथा इसकी संक्रामकता 204 डिग्री से.ग्रे से ऊपर तपमान में बेहद घट जाती है। वी एच एस रोग का प्रकोप शीत व बसंत ऋतु के समय पर बड़ता है। यह रोग से 104 डिग्री से.ग्रे से कम तापमान पर तीव्र गति से फैलता है। मृत्यु दर 10–80% तक हो सकती है, यह रोग की अवस्था, पानी के तापमान, तथा मछली की उम्र पर निर्भर करती है। वी एच एस वी ताजे पानी में 14 दिन तक तथा समुद्र के पानी में केवल 4 दिन तक जीवित रह सकता है। तालाब में मछलियों का अधिक घनत्व, उन्हें अत्यधिक खाना खिलाना, या तापमान की पराकाष्ठा ऐसी परिस्थितियां हैं जिसमें मछली में तनाव बढ़ता है तथा रोगों के लिए प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। वी एच एस से बचाव ही रोकथाम का एक बेहतर विकल्प है जिस हेतु संक्रमित मछली के संपर्क में आए किसी भी उपकरण को अथवा उपयोग में लाए जाने वाले पानी को विसंक्रमित करना आवश्यक है तथा पानी के तापमान को 20 4 डिग्री से.ग्रे से अधिक बढ़ाने पर भी वी एच एस के संक्रमण को कम किया जा सकता है।

इपीजूटिक हीमेटोपोईटिक नेकरोसिस (ई एच एन)

इपीजूटिक हीमेटोपोईटिक नेकरोसिस (ई एच एन) एक विषाणु जनित रोग है जिसका कारक इपीजूटिक हीमेटोपोईटिक नेकरोसिस वायरस (ई एच एन वी) है, जो कि रेनबो ट्राउट, पर्च तथा कैटफिश में सर्वंगी संक्रमण करता है। इनके अलावा प्रायोगिक तौर पर संवेदनषील मछलियों में मैक्युरी पर्च, मोस्क्युटो फिश, सिल्वर पर्च, माउन्टेन गैलेक्सिअस तथा अटलांटिक सालमन शामिल हैं। इस रोग के सामान्य लक्षण हैं मछली का खना न खाना, असामान्य तरीके से तैरना, पेट फूलना, त्वचा के रंग का गहराना, मछली के पंख की तली में तथा गलफड़ो में रक्तश्राव। रेनबो ट्राउट में यह रोग प्राकृतिक रूप से 11–17 डिग्री से.ग्रे के तापमान पर देखा गया है तथा प्रायोगिक तौर पर 8–21 डिग्री से.ग्रे की तापमान सीमा में संक्रमित

किया जा सकता है। पर्च में यह रोग 12 से.ग्रे के नीचे के तापमान में नहीं होता है। यह रोग रेनबो ट्राउट में यह रोग उतना प्रभावकारी नहीं है लेकिन पर्च में मृत्युकारक हो सकता है। ई एच एन वी के संक्रमण वार्षिक हो सकते हैं, तथा रेनबो ट्राउट में भी इसके संक्रमण का कारण पर्च के संक्रमण के संग्रहालय, पानी की प्रवेशिका से जुड़े हो सकते हैं। इसके प्रसार का एक माध्यम पक्षी भी हो सकते हैं, जो की अपने पंखों, पैरों तथा चोंच के माध्यम से विषाणु का प्रसार कर सकते हैं। मछली पकड़ने के लिए उपयोग में लाए जाने वाले यंत्र भी विषाणु के प्रसार में निहित हो सकते हैं। ई एच एन वी पानी में एक महीने तक जीवित रह सकता है और यह सूखे के लिये भी अत्यधिक प्रतिरोधक है। यह मछली के उतकों में दो वर्ष तक तथा हिमीभूत मछली में एक वर्ष तक जीवित रह सकता है। इन कारणों से यह माना जाता है कि ई एच एन वी मछली के फार्म में पानी, तालाब के तल, पौधों, तथा उपकरणों में महीनों से वर्षो तक जीवित रह सकता है। अतः ई एच एन वी प्रभावित फार्म में नई मछली डालने से पहले उसे पूर्णतया विषाणु मुक्त कर लेना चाहिए। सभी उपकरणों की सूखी परतें रगड़ कर निकाल कर फिर उन्हें विसंक्रमित करना चाहिए। सूखी हुई सतहों पर ई एच एन वी को 70% एल्कोहल से दो घंटे तक उपचारित करने पर नष्ट किया जा सकता है। फार्म में पक्षियों की आवाजाही को कम करके विषाणु के अनावरण (exposure) और प्रसार को कम किया जा सकता है।

ब. कार्प में मुख्य विषाणु जनित रोग

कोई हरपीज वायरस डीजीज (के एच वी डी)

कोई हरपीज वायरस डीजीज (के एच वी डी) एक हरपीज विषाणु का संक्रमण है, जो कि कोई हरपीज वायरस (के एच वी) के नाम से जाना जाता है। इस रोग के कारक को गिल नेकरोसिस वायरस (सी एन जी वी) के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग जाती विशेष होता है, इससे संक्रमित होने वाली मछलियॉ कॉमन कार्प तथा कोई कॉर्प हैं। विषाणु के प्रकोप का सबसे महत्वपूर्ण समय बसन्त का है, इस समय मछली की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिससे संक्रमण तीव्र गति से फैलता है। इसका संक्रमण गर्मियों में पानी के 22–27 डिग्री से.ग्रे के तापमान पर ज्यादा फैलता है, जिसमें 80.100ः तक मृत्यु दर पहुँच सकती है। कम तापमान में संक्रमित मछली में विषाणु सुप्त अवस्था में रहता है जो कि बसन्त और गर्मियों में सक्रिय हो जाता है। यह मछली को किसी भी उम्र में प्रभावित कर सकता है लेकिन छोटी मछलियॉं परिपक्व मछलियों की अपेक्षा संक्रमण से अधिक प्रभावित होती है। के एच वी डी के सामान्य लक्षण है, मछली के गलफड़ो में चित्तीदार लाल और सफेद रंग के चकत्तों के जख्म, गलफड़ो से रक्तश्राव, आँखो का धसा हुआ होना, त्वचा में रंगहीन चकत्ते या फफोले होना। इसके साथ–साथ संक्रमित मछली में द्वितीय वर्ग के संक्रमण (जैसे कि, फ्लेवोबैक्टिरियम एवं एरोमोनास जाती द्वारा) भी के एच वी के साथ जुड़े हो सकते हैं। के एच वी डी के संक्रमण की से अन्य ताजे पानी की मछलियॉ जैसे की गोल्डफिश, ग्रासकार्प, सिल्वरकार्प, सिल्वरपर्च और तिलापिया में प्राकृतिक या प्रायोगिक रूप से नश्वरता नहीं देखी गई है। संक्रमित मछली का स्वस्थ मछली के सम्पर्क में आने पर या संक्रमित मछली से विसर्जित द्रव्य के सम्पर्क में स्वस्थ मछली के आने पर संक्रमण फैलता है। के एच वी डी के संक्रमण में तापमान की बहुत ही मुख्य भूमिका है, यदि मछली को ठंडे पानी से गर्म पानी में स्थानान्तरित किया जाए तो इस रोग के संक्रमण का खतरा अधिक रहता है। के एच वी पानी में कम से कम चार घंटे कम लिए जीवित रहता है। यह देखा गया है कि कार्प को 23 डिग्री से.ग्रे के तापमान में संक्रमित कर, तत्पश्चात् 30 डिग्री से.ग्रे के तापमान में स्थानान्तरित कर दिया जाए तो कार्प में प्राकृतिक प्रतिरोधक क्षमता को विकसित किया जा सकता है।

स्प्रिंग वायरेमिया ऑफ कार्प (एस वी सी)

स्प्रिंग वायरेमिया ऑफ कार्प (एस वी सी) एक विषाणुजनित संक्रामक रोग है जिसका कारक स्प्रिंग वायरेनिया ऑफ कार्प वायरस (एस वी सी वी) है, यह कार्प और सम्बधित प्रजातियों को संक्रमित करता है। पेट फूलना, आँख की पुतलियों का बाहर को निकलना, गुदा में सूजन, त्वचा, गलफड़ों तथा आँखों में खून के चकत्ते दिखना, त्वचा के रंग का गहराना तथा गलफड़ो का रंगहीन हो जाना ये सभी एस वी सी रोग के सामान्य लक्षण हैं। संक्रमित मछली के सांस लेने की तथा तैरने की गति सामान्य से धीमी हो जाती है, तथा संक्रमित मछलियां तालाब के पानी के प्रवेश मार्ग में या तालाब के छोरों पर इकट्ठा हो जाती हैं। इसका संक्रमण मुख्यतया 10–17 डिग्री से.ग्रे. के तापमान में होता है, लेकिन मछली के छोटे बच्चे 22–23 डिग्री से.ग्रे के तापमान में भी संक्रमित हो सकते हैं। बसन्त के मौसम में इस रोग से होने वाली मृत्यु–दर बढ़ जाती है। एस वी सी का प्रकोप मछली की उम्र और उसकी अवस्था, जनसंख्या घनत्व, तापमान, तथा अन्य तनाव उत्पन्न करने वाली स्थितियों पर निर्भर करता है। एस वी सी मछली के बच्चों में घातक हो सकता है, जिसमें मृत्यु दर 90ः तक पहुँच सकती है। अन्य रोगों की तरह एस वी सी भी संक्रमित मछली से स्वस्थ मछली में सीधे सम्बन्ध में आने पर तथा संक्रमित मछली द्वारा विर्सजित द्रव्य से स्वस्थ मछली को हो सकता है। जोंक, उभयचर तथा मछली खाने वाले पक्षी, एस वी सी वी के सम्भावित संवाहक हो सकते हैं। एक वर्ष की उम्र तक की मछलियों के संक्रमित होने की संभावना ज्यादा होती है, लेकिन परिपक्व मछलियाँ भी रोग से प्रभावित हो सकती हैं।

विषाणु जनित रोगों की रोकथाम के उपाय

विषाणु जनित रोग मछली पालन के हर पहलू में गम्भीर समस्याएं उत्पन्न कर

देते हैं। विषाणु से बचाव के उपाय न किये जाने की स्थिति में गम्भीर आर्थिक हानि उठानी पड़ सकती है। विषाणु अति सूक्ष्म होते हैं जिसकी वजह से इनकी पहचान कर पाना मुश्किल होता है, अन्य परजीवी, जीवाणु और कवक को आसानी से पहचाना जा सकता है। विषाणु जनित रोगों की रोकथाम दवाओं से करना सम्भव नहीं है क्योंकि ये संक्रमित मछली (Host) की कोशिकाओं को अपनी वृद्धि और जीवन निर्वाह (survival) के लिए उपयोग करते हैं। इसलिए विषाणु से बचाव ही रोकथाम का एकमात्र उपाय है। मछलियों की उचित देखरेख करना हो एक उचित विकल्प है। जिसके लिए उत्तम गुणवत्ता युक्त पानी, और उपयुक्त पोषण (diet) उपयोग में लाया जाना चाहिए एवं तालाब की साफ–सफाई पर भी उचित ध्यान देना जरूरी है। बीमार और कमजोर मछलियों को तालाब से अलग कर देना चाहिए जिससे की कोई भी सम्भावित संक्रमण ना फैले। किसी भी संक्रमित मछली के संपर्क में आने के बाद और स्वस्थ मछलियों से संपर्क से पहले हाथों को तथा उपकरणों को अच्छी तरह से रोगाणु रहित कर देना चाहिए (TORGERSEN and HÅSTEIN 1995)। अण्ड उत्पत्ति के लिए स्वास्थ्य स्थिति की देखरेख करना बहुत आवश्यक है क्योंकि कुछ विषाणु सीधे वंशानुगत वयस्क मछली से बच्चों में अण्डों या शुक्राणु से फैलता है। ऐसी परिस्थितियों में संक्रमण को रोकने के लिए निषेचित अण्डों की सतह का विसंक्रमण, संक्रमण चक्र को भंग करने में कारगर सिद्ध होता है (TORGERSEN and HÅSTEIN 1995)। विसंक्रमण (disinfection) वह प्रक्रिया है जिसमें किसी रसायन की मदद से या किसी भौतिक प्रक्रिया से रोगाणुओं को खत्म किया जाता है। परिपक्व मछलियों में भी संक्रमण मुक्तता को सिद्ध करने के लिए स्वास्थ्य परिक्षण जरूरी है (TORGERSEN and HÅSTEIN 1995)।

बीज उत्पत्ती के लिए उपयोग में लाए जाने वाले पानी के स्रोत संक्रामक रोगों को प्रस्तावित तथा प्रसारित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। मछली पालन में सफलता प्राप्त करने के लिए रोगाणु रहित पानी का उपयोग आवश्यक है। मछली पालन में उपयोग किया जाने वाला पानी सामान्यतया नदियों से आता है, यह मछली में रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणु भी ला सकता है। अतः पानी विसंक्रमण के बाद ही उपयोग किया जाना चाहिए तथा निष्काशन से पहले भी विसंक्रमण जरुरी है। मछली पालन की ईकाइयों में स्वचछता के तरिकों को मछली के लिए रासायनिक विषाक्तता, पानी के तापमान के प्रभाव तथा उनके उपयोग की पुनरावृति को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। सख्ती से सफाई के पश्चात् सभी सुविधाओं, उपकरणों तथा पानी की आपूर्ति के स्रोतों का भी विसंक्रमण कर देना चाहिए। किसी भी उपकरण को एक टैंक से दूसरे टैंक में ले जाने में विशेष ध्यान देना है, तथा सभी कुछ उपयोग में आने के बाद विसंक्रमित करना जरुरी है। यह याद रखना चाहिए की काम करने वाला व्यक्ति भी संक्रमण के एक प्रमुख संवाहक के रुप में कार्य कर सकता है इसलिए उचित तरिके से हाथों पैरों तथा जूतों को विसंक्रमित किया जाना चाहिए।

क्लोरीन ब्लीच (Chlorine Bleach) एक अति उत्तम विषाणुनाशक है जिसे उपकरणों को विषाणुरहित बनाने के लिए उपयोग किया जा सकता है, 10 मिली ग्राम प्रति लीटर की मात्रा में ब्लीच एक घंटे में अधिकतम संक्रामक विषाणुओं को खत्म कर सकता है। लेकिन ब्लीच उपयोग में लाने से पाहले यह ध्यान में रखना चाहिए कि ब्लीच मछलियों के लिए जहरीला पदार्थ है, जिससे मछलियों की मृत्यु भी हो सकती है। अतः इसके उपयोग से बचना चाहिए तथा क्लोरीन ब्लीच से विषाणु रहित किया हुआ कोइ भी उपकरण मछली के संर्पक में लाने से पहले अच्छे से धो लेना चाहिए। ब्लीच का एक विकल्प अमोनियम पदार्थ (Ammonium Compounds) है। अमोनियम पदार्थ (उदाहरण के लिए, बायोनैक्स) कारगर विषाणुनाशक है जो कि उपकरणों को विषाणुरहित बनाने के लिए उपयोग में लाए जा सकते है, और इन्हें पैर धोने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। हालांकि अमोनियम पदार्थ ब्लीच जितने जहरीले नहीं है, लेकिन अमोनियम पदार्थ से विषाणु रहित किया हुआ कोइ भी उपकरण मछली के संर्पक में लाने से पहले अच्छे से धो लेना चाहिए। आइडोफोर भी अच्छे विसंक्रामक सिद्ध होते हैं। आइडोफोर ऐसे मिश्रण हैं जिनमें आयोडीन के साथ एक विलायक (उदाहरण के लिए पोवीडोन–आयोडीन या आर्द्रक–आयोडिन) मिश्रित हैं, जो कि आयोडीन को पानी में घुलनशील बनाते हैं। आइडोफोर जिसमें आयोडिन की मात्रा 50–100 मिली ग्राम प्रति लीटर हो, विषाणु को पूर्णतया नष्ट करने में कारगर है। मछली के सभी अण्डे, बाहर भेजे जाने वाले अथवा बाहर से प्राप्त किये हुए, को 50–100 मिली ग्राम प्रति लीटर की आयोडीन की मात्रा में विसंक्रमित किया जा सकता है। अण्डों से निकले हुए बच्चे आयडोफोर के लिए अत्यधिक संवेदनशील हैं, अतः इन्हें आयडोफोर से संपर्क से बचाना चाहिए। तालाब में उपयोग में आने वाले पानी को यदि उक्त आयोडीन की मात्रा से उपचारित किया जाए तो जलजनित विषाणु संक्रमण को रोका जा सकता है।

NOTE

NOTE

NOTE

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agresearch with a human touch

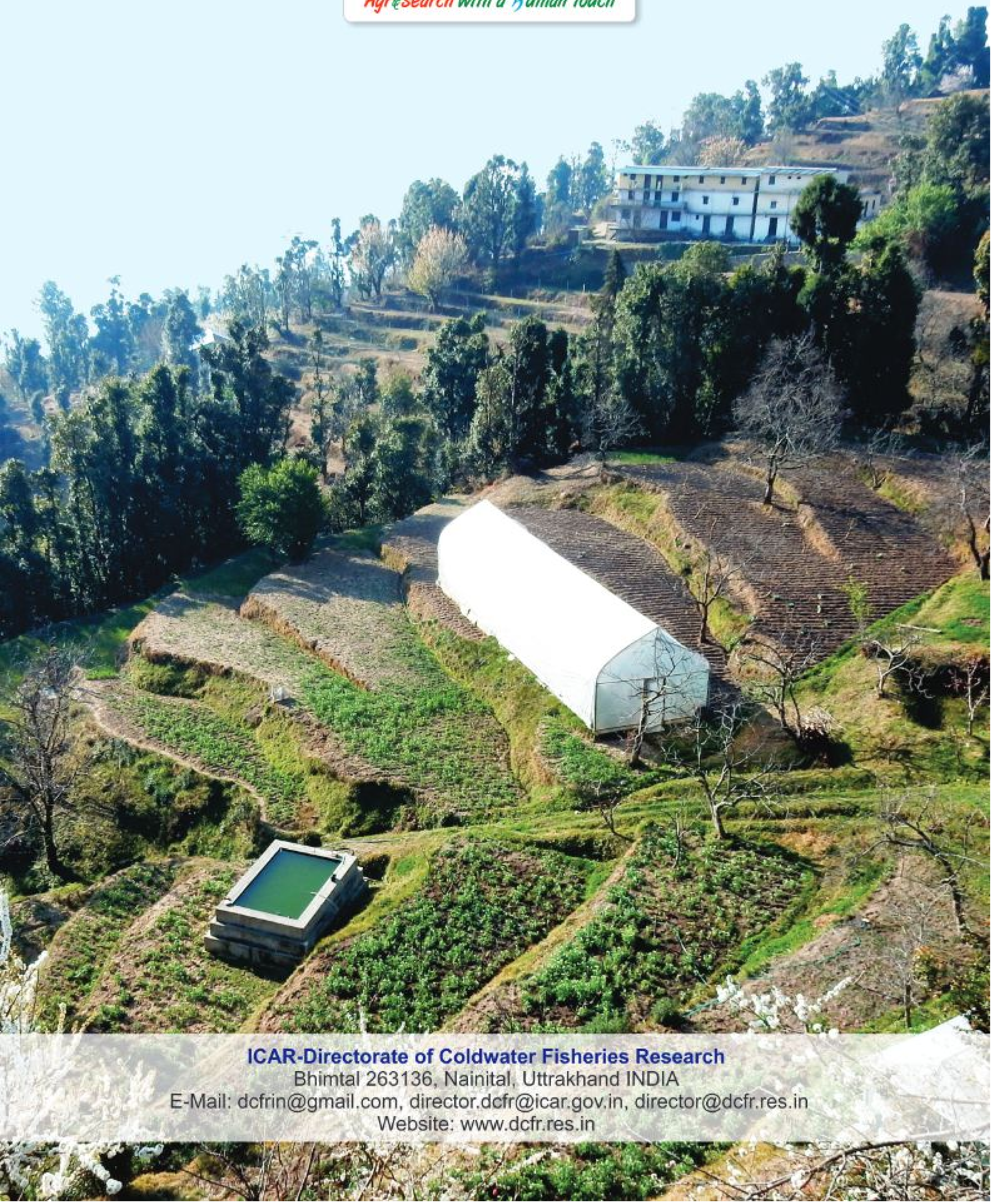

ICAR-Directorate of Coldwater Fisheries Research
Bhimtal 263136, Nainital, Uttrakhand INDIA
E-Mail: dcfrin@gmail.com, director.dcfr@icar.gov.in, director@dcfr.res.in
Website: www.dcfr.res.in